गगनांचल

नवंबर-दिसंबर, 2013

प्रकाशक
सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

परामर्श मंडल
प्रो. अशोक चक्रधर, रत्नाकर पांडेय
रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी, दिनेश मिश्र, ममता कालिया, हरीश नवल, अनामिका

संपादक
अनवर हलीम

उप संपादक
अशोक कुमार जाजोरिया
ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
यू.एस.		$	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
यू.एस.		$	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafnearts.com

विषय-सूची

लेख

संपादन कला के पुरोधा — 5
डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल

नव नवता दी हिंदी को (कविता) — 8
डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के प्रणेता — 9
डॉ. भवानी सिंह

हिंदी के इतिहास पुरुष — 13
बद्रीनारायण तिवारी

महावीरप्रसाद द्विवेदी नवविषय प्रवर्त्तक 'संपत्ति शास्त्र एवम् औद्योगिकी' : नव रंग — 16
डॉ. गोपाल कमल

महावीर प्रसाद द्विवेदी और ज्ञान की बुनियाद — 22
डॉ. बागेश्री चक्रधर

महान लेखक ही नहीं महामानव भी थे द्विवेदी जी — 24
डॉ. पुष्पा सक्सेना

युगांतकारी हरफनामों के लेखक — 27
डॉ. सुश्री सुशील गुप्ता

हिंदी साहित्य के सृजनकर्ता और पालनकर्ता — 30
डॉ. राजेश चंद्र आदर्श

आधुनिक हिंदी वाङ्मय के संस्थापक — 33
डॉ. किशोरीशरण शर्मा

आचार्य को नमन — 35
डॉ. मालती

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान: हिंदी और मलयालम के दो युग निर्माता साहित्यकार — 38
प्रो. एस. तंकमणि अम्मा

हिंदी के चिंतक उन्नायक (कविता) — 40
डॉ. किशोरीशरण शर्मा

खड़ी बोली के पुनर्प्रतिष्ठापक एवं राष्ट्रीय चेतना के ध्वज वाहक 41
प्रो. डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

आचार्य द्विवेदी और उनकी कविता 43
ऋचा मिश्र

'संपत्ति शास्त्र' प्रणेता महावीर प्रसाद द्विवेदी 45
डॉ. रीता श्रीवास्तव

महावीर प्रसाद द्विवेदी और सरस्वती प्रत्रिका 47
डॉ. चित्रा

युग प्रवर्तक और प्रखर हिंदी सेवी / 49
डॉ. प्रीति

लोकहित प्रधान साहित्य के रचयिता/ हिंदी जगत के सूर्य 51
रामेश्वर प्रसाद गुप्ता

प्राचीनता एवं नवीनता के केंद्र बिंदु 52
डॉ. आरती स्मित

द्विवेदी जी की कविता में यथार्थ चित्रण 55
डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

हिंदी के युग प्रर्वतक साहित्यकार-संपादक 61
डॉ. भावना शुक्ल

एक संपूर्ण साहित्यिक आत्मा 63
डॉ. सारिका कालरा

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व / भाषाविद् महावीर प्रसाद 66
डॉ. सुनीति रावत

दूरदर्शी और कठोर परिश्रमी 68
अवतार कृष्ण राजदान

व्यवस्थापक से सर्जक तक 70
पराक्रम सिंह

आचार्य ने रचा एक इतिहास (कविता) 71
डॉ. बीना बुदकी

नए युग का सूत्रपात—द्विवेदी युग 72
सुरेंद्र कुमार

नवयुग के संवाहक / हिंदी के गौरव तिलक 79
साधना श्रीवास्तव 'कल्याणी'

द्विवेदी की कविता में बोध के आयाम 81
डॉ. अलका चमोला

हिंदी साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत 84
शिल्पी श्रीवास्तव

आधुनिक कविता और जागरूक नारी का हिमायती साहित्यकार 85
कविता मालवीय

पुस्तक-समीक्षा

संकल्पों के गीत पत्र 87
सुविधा शर्मा

शाश्वत भावों का सुन्दर समावेश 88
डॉ. विवेक गौतम

नई उम्मीद जगाती कविताएं 89
अश्विनी कुमार

समाचार

डॉ. एम.एस.स्वामीनाथन 28वें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार से सम्मानित 90
के. सरीन

45वां जवाहरलाल नेहरू स्मृति व्याख्यान 91
के. सरीन

आराध्या सम्मान समारोह का आयोजन 92
अश्विनी कुमार

उद्भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह 93
डॉ. विवेक गौतम

21वां अ.भा. हिंदी साहित्य सम्मेलन संपन्न 94
विकास मिश्र

प्रकाशक की ओर से

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का आविर्भाव उस समय हुआ, जब भारत राजनीतिक रूप से परतंत्र ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी प्राचीन कुरीतियों में जकड़ा हुआ था। लोगों में प्राचीन और नवीन मान्यताओं को लेकर ऊहापोह की स्थिति थी। ऐसे समय में महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन ने लोगों को एक नई सोच एवं दिशा दी।

उस दौर में यूरोप की औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप देश में रहन-सहन के आधुनिक साधनों का आवागमन तो हो रहा था, लेकिन देश अब भी अपनी सदियों पुरानी कुरीतियों—बाल विवाह, विधवा दुर्दशा, छुआछूत से बुरी तरह ग्रसित था। समाज में इन कुप्रथाओं का महिमा मंडन द्विवेदी जी को बुरी तरह कचोटता था, इसलिए उन्होंने सरस्वती पत्रिका और अपने साहित्य के माध्यम से इनके खिलाफ मुखर आवाज उठाई। उन्होंने लोगों को समझाया कि केवल राजनीतिक आजादी ही सच्ची आजादी नहीं होती है, बल्कि इन कुप्रथाओं से मुक्ति के बाद ही देश में नवजागरण का उदय होगा, जहां सभी को बराबर हक मिलेगा। उस दौर की विषम परिस्थितियों में उनकी सोच एवं कार्य निसंदेह प्रशंसा के योग्य है।

आजादी के बाद आज हम जिस हिंदी में अपने विचारों का आदान-प्रदान कर रहे हैं, उसे समाज में मानकीकृत एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी को जाता है। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से न केवल हिंदी भाषा का परिष्कार किया, बल्कि अनेक प्रबुद्ध लेखकों को भी इसमें लिखने के लिए प्रेरित किया। ऐसी ही महान विभूति महावीर प्रसाद द्विवेदी के जीवन एवं कार्यों पर 'गगनांचल' पत्रिका अपना यह अंक उनको समर्पित कर रही है। आशा है हमारा यह प्रयास हमारे सुधी पाठकों को अवश्य पसंद आएगा। हमें आशा है कि इस अंक में उपलब्ध सामग्री से हमारे प्रबुद्ध पाठकों को द्विवेदी जी को जानने और समझने की एक नई दृष्टि मिलेगी।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

समय चलायमान होता है। इसकी गति को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता, लेकिन हर युग में कोई-न-कोई ऐसा महापुरुष अवश्य जन्म लेता है, जो समय की धारा को मोड़कर आने वाली पीढ़ी के लिए रास्ता तैयार करता है और एक नए युग का निर्माण करता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का कृतित्व और व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही था। उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से पराधीन भारत में लोगों को हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रति जागृति पैदा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वस्तुतः आज हम हिंदी भाषा में विचारों का जो आदान-प्रदान कर रहे हैं, उस आधुनिक परिष्कृत हिंदी की हिंदुस्तान में नींव महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ही डाली थी। फारसी-उर्दू और ब्रज भाषा के उस दौर में हिंदी को साहित्य और आम लोगों की भाषा बनाना कोई आसान कार्य नहीं था। लेकिन उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से उस असंभव से दिखने वाले दुष्कर कार्य को भी संभव करके दिखाया। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि उन्होंने अपने युग के साहित्य में आदर्शों के मापदंड स्थापित ही नहीं किए, बल्कि उन पर खुद चलकर भी दिखाया। अपनी लेखनी और खासतौर से पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने न केवल साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया, बल्कि उस युग के रचनाकारों को हिंदी भाषा में साहित्य लिखने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया। यही वजह है कि आधुनिक हिंदी साहित्य का द्वितीय युग द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है।

ऐसे ही मनस्वी ऋषि और हिंदी भाषा के पितामह महावीर प्रसाद द्विवेदी को आई.सी.सी.आर. की प्रतिष्ठित पत्रिका 'गगनांचल' ने अपना यह अंक समर्पित किया है। इस अंक में पाठक उनके साहित्य से ही नहीं, बल्कि निजी जीवन के अनछुए पहलुओं से भी रू-ब-रू होंगे। साथ ही उस समय के पराधीन भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी पाठकों को इस अंक में पढ़ने को मिलेगा। हताशा और निराशा के उस दौर में द्विवेदी जी के आगमन ने हिंदी और भारत दोनों के लिए ही संजीवनी बूटी का काम किया। इसकी जानकारी आपको पत्रिका में प्रकाशित लेखों को पढ़कर मिलेगी।

गगनांचल पत्रिका का यह प्रयास महावीर प्रसाद द्विवेदी के संबंध में आपकी ज्ञान पिपासा को शांत करने में सक्षम होगा तथा उनके साहित्यिक जीवन और विचारों को समझने की नई दृष्टि देगा। इसी उम्मीद के साथ हम यह अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

(अनवर हलीम)

संपादन कला के पुरोधा

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल

बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को उनकी विभिन्न साहित्यिक प्रतिभाओं के लिए जाना जाता है। हिंदी के प्रतिष्ठित गद्यकार के रूप में उनका स्थान कोई नहीं ले सकता है।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी ने जो उच्च प्रतिमान स्थापित किए थे, वे आज भी प्रासंगिक व अनुकरणीय हैं। वस्तुतः द्विवेदी जी को पत्रकारिता और संपादन का जितना विशद् अनुभव था, वह बिरले ही साहित्यकारों को होता है।

द्विवेदी जी की संपादन कला का प्रमाण इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सरस्वती' है। आज से एक शताब्दी पूर्व जब भारत पर अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेज भारत पर पूरी तरह अंग्रेजी थोप रहे थे। उस जमाने में हिंदी की स्तरीय पत्रिका निकालना कितना चुनौती भरा कार्य रहा होगा, यह हम आज कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। क्योंकि आज स्वतंत्र भारत में जहां हिंदी 'जन भाषा' ही नहीं 'विश्व भाषा' बनने की ओर अग्रसर है; इन अनुकूल स्थितियों में भी स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएं बंद हो रही हैं, तो कल्पना कीजिए कि उस समय स्तरीय हिंदी पत्रिका प्रकाशित करना कितना चुनौती भरा कार्य रहा होगा।

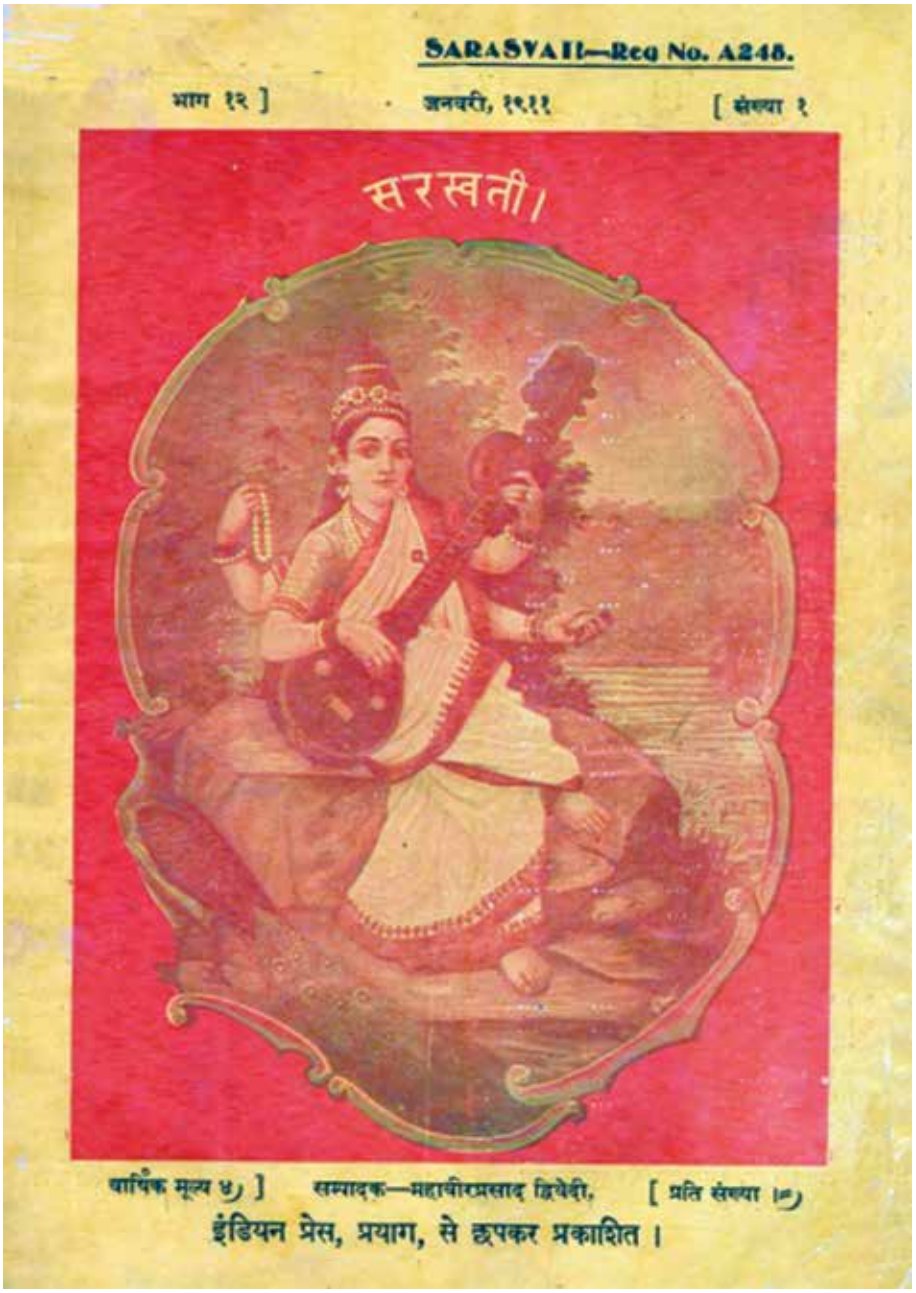

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा

सूची ।

(१) सर विलियम वेडरबर्न—[ले० पण्डित नर्म्मदानारायण शर्म्मा, एम० ए० ... १
(२) प्रह्लाद—[ले० बाबू मैथिलीशरण गुप्त... ५
(३) कालिदास की निरंकुशता ७
(४) प्रयाग—[ले० पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए० ... ... १४
(५) पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र २१
(६) अन्योक्ति-सप्तक—[ले० बाबू मैथिलीशरण गुप्त २३
(७) प्रदर्शिनी से लाभ—[ले० पण्डित जनार्दन मिश्र २४
(८) हेग का राष्ट्रीय न्यायालय २६
(९) भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी—[ले० पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए० ... २९
(१०) सूर्य्यग्रहण पर अन्योक्ति—[ले० पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ३२
(११) प्रयाग की प्रदर्शिनी—[ले० पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ३३
(१२) योरप के और हमारे विचार [२]—[ले० बाबू काशीप्रसाद जायसवाल बी० ए० (आक्सफ़र्ड), बैरिस्टर-एट-ला ३६
(१३) कवि का कर्तव्य—[ले० विद्यानाथ ... ३७
(१४) साधुशिरोमणि तुकारामजी महाराज—[ले० पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ... ४०
(१५) क्रप का कारखाना-[ले० बाबू सीताराम ४५
(१६) सती की प्रथा—[ले० बाबू त्रिलोकचन्द्र ४८
(१७) आख्यायिका-खानखाना और सुमेरु पर्वत ४९
(१८) विविध-विषय ४९
(१९) चित्र-परिचय ५२

चित्रावली ।

(१) प्रह्लाद (रंगीन) १
(२) सर विलियम वेडरबर्न बार्ट ४
(३-१४) प्रयाग के लेख से सम्बन्ध रखनेवाले १२ चित्र ५-२०
(१५) पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र २०
(१६-२७) प्रयाग की प्रदर्शिनी-सम्बन्धी १२ चित्र २८-३६
(२८) महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ४८
(२९) रायबहादुर, माननीय, पं० सुन्दरलाल, सी० आई० ई० ... ... ४९

सरस्वती के नियम ।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है ।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ४) है । प्रति संख्या का मूल्य ।=) है । बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती । पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं । जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ॥) प्रति से कम नहीं लिया जाता ।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए । जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ न हो ।

४—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से इसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो इसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए ।

५—सरस्वती की बड़ी मेले भाले सब जगह है । हमारे पास बहुधा पत्र आया करते हैं कि अमुक मास की पत्रिका नहीं पहुँची । परन्तु, यहाँ दो बार अच्छी तरह जाँच कर दी जाती है । इससे ग्राहकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिए ।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ । मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ । ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलिएगा ।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, तथा उसे लौटाने या न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है । लेखों के घटाने बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है । जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी खर्च लेखक के ज़िम्मे होगा । बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा ।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते । स्थान के अनुसार लेख एक या अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं ।

९—इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक या धर्मसम्बन्धी लेख न छापे जायँगे जिनका सम्बन्ध वर्तमानकाल से होगा ।

१०—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे । यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा, तो उसे प्रकाशक देंगे ।

११—यदि लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार करेंगे, तो सरस्वती के नियमों के अनुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता-पूर्वक दिया जायगा ।

❋ ❋ ❋ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❋ ❋ ❋

अर्थशास्त्रप्रवेशिका।

सम्पत्तिशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के समझने के लिए इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ना चाहिए। ज़रूर लीजिए, बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ।)

युगलांगुलीय

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के नाम से सभी शिक्षित जन परिचित हैं। उन्हीं के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

हिन्दी शिक्षावली।

बालकों को हिंदी पढ़ना लिखना सीखने के लिए ये पुस्तकें बड़े काम की हैं। इनकी लाखों कापियाँ बिकनाही इनकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। मूल्य इस प्रकार है:—

पहला भाग—	-)
दूसरा भाग—	-)॥
तीसरा भाग—	=)
चौथा भाग—	≡)॥
पाँचवाँ भाग—	।)॥

दुर्गा सप्तशती।

हमने यह दुर्गा की पोथी बड़ी सुन्दर छापी है। कागज़ भी इसका मोटा और अक्षर भी बड़े मोटे हैं। चश्मा लगानेवाले बिना चश्मा लगाये ही इसका पाठ कर सकते हैं। बड़ी शुद्ध छपी है। कीलक, कवच, षडङ्गन्यास, करन्यास, रहस्य और विनियोग आदि सब बातें इसमें मौजूद हैं। इसमें यह भी लिखा गया है कि किस काम के लिए किस मन्त्र का संपुट लगाना चाहिए। ऐसी अत्युत्तम पोथी का दाम केवल ॥=)

राजर्षि।

हिन्दी के अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुक्त बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बँगला राजर्षि उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में छप गया और अब वह अपने प्रेमी पाठकों की प्रतीक्षा कर रहा है। इस उपन्यास के पढ़ने से हृदय की आँखें खुल जाती हैं, बुरी वासना चित्त से दूर होती है। प्रेम का निश्चल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है, हिंसा, द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है, ऊँचे ऊँचे ख़यालों से दिमाग़ भर जाता है, और मनुष्य का कर्तव्य क्या है यह भली भाँति समझ में आजाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके गम्भीर विषयों पर विचार कर ग्रन्थकर्ता के लोकोपकारी उद्देश का मर्म समझ सकते हैं। हिन्दी के समस्त पाठक और पाठिकाओं से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि वे इस उपन्यास को एक बार अवश्य पढ़ें। उपन्यास पढ़ने पर जो हर्ष होगा, जो शिक्षा मिलेगी और हृदय में जो पवित्र भाव का संचार होगा उसके आगे इस २६५ पृष्ठ के ओजस्वी उपन्यास का चौदह आना मूल्य कुछ नहीं के बराबर ही समझना चाहिए।

मुकुट।

यह भी पूर्वोक्त ग्रन्थकर्ता के बँगला उपन्यास का अनुवाद है। भाई भाई में परस्पर वैमनस्य होने से उसका परिणाम अन्त में क्या होता है—यही इस छोटे से उपन्यास में बड़ी विलक्षणता के साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग वैमनस्य के बीज को दग्ध कर सकते हैं। मूल्य ।)

मिलने का पता—**मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।**

'सरस्वती' का संपादन ही इसकी सफलता और लोकप्रियता का कारण था। 'सरस्वती' के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। 'सरस्वती' पत्रिका ने हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया।

आज जिन्हें हम हिंदी के अमर साहित्यकारों के रूप में जानते हैं, उन्हें 'सरस्वती' के माध्यम से पहचान मिली। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने उन्हें तराशा और साहित्य सृजन की ओर प्रोत्साहित किया।

संपादन कला के वे अग्रदूत थे, इसलिए उन्हें संपादन कला का पुरोधा कहा जाता है। 'सरस्वती' में प्रकाशित सामग्री, इसमें प्रकाशित विज्ञापन एवं तत्कालीन समाज की रुचि के अनुरूप साहित्य का चयन और संपादन सभी उत्कृष्ट कोटि का है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की संपादन कला का प्रमाण 'सरस्वती' का प्रत्येक पृष्ठ है। पाठकों की जानकारी के लिए हम 'सरस्वती' के जनवरी 1911 के अंक के तीन पृष्ठ यहां दे रहे हैं। इन पृष्ठों को दिए जाने का औचित्य इस प्रकार है—

पृष्ठ 1, मुखपृष्ठ—यह पृष्ठ पाठकों को सरस्वती के कलेवर से परिचित कराने हेतु है। मां 'सरस्वती' को चित्र व अन्य विवरण देखे जा सकते हैं।

पृष्ठ 2, आंतरिक मुखपृष्ठ—यह मुख पृष्ठ का अंदर का भाग है, जिसमें अनुक्रमिका के साथ-साथ 'सरस्वती' के नियम दिए गए हैं। इनसे संपादकीय नैतिकता और पत्रिका की ईमानदारी झलकती है।

पृष्ठ 1, विज्ञापन—विज्ञापन पत्रिका के लिए अनिवार्य होते हैं। अतः उस समय भी पत्रिका में विज्ञापन दिए जाते थे। 'सरस्वती' पत्रिका में विज्ञापन आरंभ में ही दिए जाते थे ताकि अंदर की सामग्री की पठनीयता में व्यवधान न हो।

आज से 102 वर्ष पूर्व छपे इस पहले विज्ञापन पर ध्यान दें। यह अर्थशास्त्र की पुस्तक का विज्ञापन है। हम आज यह कहते हैं कि तकनीकी विषयों पर हिंदी में पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं, यह धारणा इससे निर्मूल सिद्ध होती है। तकनीकी विषयों पर सौ साल पहले ही हिंदी में पुस्तकें उपलब्ध थीं। अंग्रेजी मानसिकता के कारण वे कहीं कूड़े-कचरे में या पुराने कबाड़ में पड़ी हुई हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन पुरानी रचनाओं को पुनः प्रकाशित किया जाए और इनका समुचित परिरक्षण हो।

सहायक महाप्रबंधक, कार्पोरेशन बैंक,
कार्पोरेट कार्यालय, पांडेश्वर,
मंगलूर-575001 (कर्नाटक)

कविता

नव नवता दी हिंदी को

डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

हे हिंदी के महावीर
युग प्रवर्तक आचार्य!
रायबरेली के वर प्रसाद
युवा कवियों की प्रेरक शक्ति
हे खड़ी बोली के परिष्कर्ता
शत बार नमन तव चरणों में।
बन संपादक 'सरस्वती' के
नव नवता दी हिंदी को
भरा उत्साह नव चैतन्यों में
भरा आत्मविश्वास नव लेखक में
हे नव विचार-सुधार प्रेरक
शत बार नमन तव चरणों में।
गीत ही नहीं गद्य को भी
संवारा, दी प्रौढ़ता प्रांजलता
प्रसाद, गुप्त, निराला, प्रेमचंद
हरिऔध, गुलेरी जाने कितने
हुए रोशन इस युग में।
फूल श्रद्धा के चढ़ाते तव चरणों में।
केवल नहीं थे लेखक अनुवादक
थे कवि भी मंजुल वाग्विलास
हे 'कुमार संभवसार' रचैता
कैसे बने रेलवे के अधिकारी
युग प्रवर्तक आचार्य हिंदी के
एक अचंभा! हिंदी जगत का!

'प्रभु प्रिय' 391, 6 मेन, 3 ब्लॉक, 3 स्टेज,
बासावेस्वर नगर, बैंगलोर-560079

हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के प्रणेता

डॉ. भवानी सिंह

महावीर प्रसाद द्विवेदी युग प्रेरक साहित्यकार, संपादक और पत्रकार थे। वे अपने काल की भावनाओं एवं विचारों के मूर्तिमान रूप तथा पथ-प्रदर्शक रहे। नए-नए साहित्यकारों को प्रोत्साहित कर, उनके पथ-प्रदर्शन के लिए काव्य तथा लेखन, विषय और शैली के संबंधों में दिशा-संकेतों द्वारा उन्होंने युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को नई दिशा में मोड़ा। साहित्य सृजन को एक नई दिशा दिखाने तथा भाषा को व्यवस्थित रूप देने के लिए उन्होंने परंपरागत रूढ़ियों और मान्यताओं में सुधार करते हुए सामयिक सिद्धांतों की स्थापना की, जिनमें द्विवेदी जी के साहित्यादर्श भी परिलक्षित होते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की समग्र साहित्य-साधना और चेतना के मूल में यही साहित्यादर्श प्रेरक रहे हैं। अपने साहित्यिक आदर्शों को उन्होंने 'रसज्ञ-रंजन', 'समालोचना-समुच्चय', 'विचार-विमर्श', 'नाट्य-शास्त्र', 'कालिदास की निरंकुशता', 'प्राचीन पंडित और कवि' आदि ग्रंथों एवं 'सरस्वती' पत्रिका की संपादकीय टिप्पणियों एवं लेखों द्वारा अभिव्यक्त किया है। अपने जीवन में महावीर प्रसाद द्विवेदी की दृढ़ता, निर्भीकता, कार्य-कुशलता, कर्तव्यपरायणता, आदर्श सेवाभाव आदि जिन गुणों का प्रस्तुतीकरण हुआ है, वे सब 'देव महावीर' के ही प्रसाद स्वरूप समझे जा सकते हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म दौलतपुर गांव, जिला रायबरेली, उत्तर प्रदेश में 1864 में हुआ। पिता श्री रामसहाय द्विवेदी ब्रिटिश सेना में थे। कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा समुचित रूप से न हो सकी। हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी का घर पर ही अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने पहले कुछ समय टेलीग्राफ विभाग में और फिर जी.आर.पी. में नौकरी की। इस दौरान उन्होंने 'गुजराती', 'मराठी' आदि प्रादेशिक भाषाओं का भी अध्ययन किया। 1880 से झांसी में रेलवे की नौकरी करते हुए वे एक साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध होने लगे। 1903 में रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देकर वे साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के संपादन में लग गए और 1920 तक इसके संपादक रहे। उनके कार्यकाल के दौरान 'सरस्वती' सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली पत्रिका के रूप में उभरी। 'सरस्वती' का संपादन करते हुए वे निरंतर हिंदी में लिखने के लिए रचनाकारों को प्रोत्साहित और उनकी भाषा को परिमार्जित करते रहे। उनके प्रयास का ही परिणाम था कि धीरे-धीरे हिंदी एक साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज, अवधी आदि का स्थान लेने लगी। उनकी साहित्य सेवा को देखते हुए 1931 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने उन्हें 'आचार्य' और 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' ने 'वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया। 1938 में हिंदी साहित्य की इस महान् विभूति का देहांत हो गया।

प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु जी की मृत्यु के पश्चात् हिंदी जगत के नेतृत्व विहीन साहित्य क्षेत्र में अराजकता का साम्राज्य था। साहित्य शून्यता की ऐसी स्थिति में महावीर प्रसाद ने हिंदी साहित्य को अवनति से उन्नति का मार्ग दिखाया। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन कार्य द्वारा उन्होंने युगीन साहित्य व साहित्यकारों दोनों का ही नेतृत्व किया। डॉ. उदय भानु सिंह के वक्तव्यानुसार, "सरस्वती पत्रिका के अंग-अंग में उनके संपादन की झलक दिखाई पड़ी। विषयों की अनेकरूपता, वस्तुयोजना, संपादकीय टिप्पणियां, पुस्तक-समीक्षा, चित्र-परिचय, साहित्य समाचारों के व्यंग्य चित्र, मनोरंजन सामग्री, बालोपयोगी साहित्य, प्रूफ संशोधनों और पर्यावेक्षणों में सर्वत्र संपादन कला विशारद द्विवेदी जी का व्यक्तित्व चमक उठा।"

हिंदी का आधुनिक काल सही अर्थ में नवजागरण से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार से भक्ति आंदोलन समूचे देश में धीरे-धीरे फैला था, उसी प्रकार नवजागरण भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचारित हुआ। इस नवजागरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी की विशिष्ट भूमिका रही है। जिन पत्रिकाओं ने इस नवजागरण को गति और शक्ति प्रदान की है, उनमें 'मर्यादा', 'प्रभा' और 'सरस्वती' पत्रिकाओं के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 में आरंभ हुआ था और 1903 में आचार्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन कार्यभार संभाला। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से न केवल द्विवेदी जी ने ऐसे बहुत से लेख लिखे जो नवजागरण की लहर को फैलाने में सहायक सिद्ध हुए। अपितु उनकी प्रेरणा से और लेखकों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया। वस्तुतः कितने ही ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें 'सरस्वती' का योगदान आज तक अविस्मरणीय है। यह तो निश्चित है कि नवजागरण केवल 'सरस्वती' और द्विवेदी जी के लेखों तक ही सीमित नहीं था, फिर भी इसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने नवजागरण को महत्त्व देते हुए सामाजिक सुधारों, मर्यादावादी दृष्टिकोण और संस्कृति से संबंधित लेख लिखे। इतना ही नहीं उन्होंने भाषा के परिष्कार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का बहुत बड़ा योगदान था। 'सरस्वती' पत्रिका ने द्विवेदी जी के संरक्षण में भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में नवजागरण को फैलाया और नए युग के निर्माण का कार्य किया। एक प्रकार से यह पत्रिका द्विवेदी जी के युग की साहित्यिक गुणवत्ता और श्रेष्ठता का प्रतिमान बन गई थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने समय के मनस्वी चिंतक और सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्हीं के प्रयत्नों से हिंदी कविता का यह युग परिष्कार और नवजागरण की दिशा में सक्रिय हुआ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली को परिष्कृत किया तथा उसके रूप सौंदर्य को सजाया, संवारा और भाषिक शुद्धता पर ध्यान देते हुए खड़ी बोली में जैसे नवजीवन का संचार किया। इस कार्य के लिए उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका को आधार बनाया। उनके प्रयत्नों से ही खड़ी बोली हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित हुई और उन्हीं के निर्देशन में अनेक साहित्यकार खड़ी बोली का प्रयोग करने लगे। हिंदी भाषा से प्रेरित होकर महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सन् 1903 में जब 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का कार्यभार संभाला, उस समय उनके पास अनेक प्रसिद्ध लोकप्रिय साहित्यकारों की ऐसी रचनाएं आने लगीं, जिनकी भाषा व्याकरणिक दृष्टि से दोषपूर्ण होती थीं। इस तरह के कवियों और लेखकों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और रामचंद्र शुक्ल के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद के अनुसार, "आज हिंदी में ऐसा कौन विद्वान् संपादक है, जो अपने काम को यथार्थ बुद्धि से करता हो, जो हरेक लेख को आद्योपांत पढ़ता हो, उसकी भाषा का परिष्कार करता हो, एक चतुर कलाकार की भांति, पत्थर के एक टुकड़े को बोलती हुई मूर्ति बना देता हो। हमारी कई कहानियां 'सरस्वती' में द्विवेदी जी के संपादन-काल में निकलीं। जब वे छप जाती थीं और मैं असल से मिलाता था, तो मालूम होता था, उनका कितना रूपांतर हुआ है। मेरी एक कहानी 'पंच-परमेश्वर' है। मैंने जिस समय उसे द्विवेदी जी की सेवा में भेजा था, उसका नाम 'पंचों में ईश्वर' था। छपने पर देखा तो 'पंच-परमेश्वर' हो गया था। जरा-से परिवर्तन से वह नाम कैसा चमक उठा।"

भाषा के अतिरिक्त वे साहित्य में नए विषयों का समावेश करने और साहित्य को आम जन के अधिकाधिक निकट लाने के पक्षधर थे। इस संदर्भ में अपने एक लेख में वे कहते हैं, "कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिए। चींटी से लेकर हाथी पर्यंत मनुष्य; बिंदु से लेकर समुद्र पर्यंत जल; अनंत आकाश; अनंत पृथ्वी; अनंत पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है।"

वृंदावनलाल वर्मा के शब्दानुसार, "जिस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने समकालीन खड़ी बोली गद्य को सशक्त बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की थी, उसी प्रकार पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली की परुष कही जाने वाली शब्दावली में कविता की पंक्तियां लिखकर उसमें संगीत की शक्ति प्रेरित की। गद्य और पद्य में नवीन उन्मेष उत्पन्न करने वाले भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के दो कर्मयोगी थे, जिन्होंने परिश्रम और अध्यवसाय से खड़ी बोली साहित्य को शक्ति-संपन्न बनाया। खड़ी बोली कविता में उन्मेष द्विवेदी जी के कार्यकाल से ही प्रारंभ होता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता और उनकी संपादन शैली के बारे में जानने के लिए बाबूराव विष्णु पराड़कर की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं, "सन् 1906 से प्रतिमास 'सरस्वती' का अध्ययन मेरा एक कर्तव्य हो गया। मैं 'सरस्वती' देखा करता था। संपादन सीखने के लिए। द्विवेदी जी ने हिंदी पत्रकारिता में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, वे सदैव नवोदित पत्रकारों को मार्गदर्शन देते रहे। हिंदी पत्रकारिता और हिंदी भाषा की प्रगति को लेकर आचार्य द्विवेदी जी जीवन पर्यंत प्रयास करते रहे। हिंदी के पत्रों की कम होती संख्या पर चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है— ''हमारे प्रांत की मातृभाषा हिंदी ही है। परंतु स्वदेश और स्वभाषा के शत्रु उसे अस्पृश्य और अपाठ्य समझते हैं। इसी से उर्दू के पत्रों की अपेक्षा हिंदी के पत्रों की संख्या आधे से भी कम रही। मातृभाषा के इन द्रोहियों की बुद्धि भगवान् ठिकाने लाए, इनमें से पांच फीसदी अंग्रेजी के धुरंधर पंडित जरूर होंगे। इन्हें रोज पायनियर और इंग्लिशमैन पढ़े बिना कल नहीं पड़ती। इनकी शिकायत है कि हिंदी में कोई अच्छा पत्र है ही नहीं, पढ़ें क्या? पर इनको

यह नहीं सूझता कि अच्छे हिंदी पत्र निकालने वाले क्या किसी और लोक से आएंगे। या तो तुम खुद निकालो या औरों के पत्र लेकर उन्हें प्रोत्साहित करो या अच्छे पत्र निकालने वालों की मदद करो। सिर्फ प्रलाप करने से हिंदी के अच्छे पत्र पैदा नहीं हो सकते।''

'सरस्वती' पत्रिका से ही हिंदी पत्रकारिता में शीर्ष स्थान रखने वाले संपादकों का द्विवेदी जी सदा ही प्रोत्साहन करते थे। उनका मानना था कि हमें सर्वज्ञता का घमंड नहीं होना चाहिए और हमें अपने लिखे हुए में परिशोधन एवं संशोधन को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। लेखों के पुनर्शोधन में उनका स्पष्ट मत था कि—"अपना लिखा सभी को अच्छा लगता है, परंतु उसके अच्छे-बुरे का विचार दूसरे ही कर सकते हैं। जो लेख हमने लौटाए, वे समझ-बूझकर ही लौटाए, किसी और कारण से नहीं। अतएव यदि उसमें किसी को बुरा लगा तो हमको खेद है। यदि हमारी बुद्धि के अनुसार लेख हमारे पास आवें तो हम उन्हें क्यों लौटाएं? उनको हम सादर स्वीकार करें, भेजने वाले को भी धन्यवाद दें और उसके साथ ही यदि हो सके तो कुछ पुरस्कार भी दें। यदि किसी को सर्वज्ञता का घमंड नहीं है, तो वह अपने लेख में दूसरे के किए हुए परिशोधन को देखकर कदापि रुष्ट नहीं होगा। लेखक अपने लेख का प्रूफ स्वयं शोध सकता है और संशोधन के समय हमारे किए परिवर्तन यदि उसे ठीक न जान पड़े, तो हमको सूचना देकर, वह उनको अपने मनोनुकूल बना सकता है।" वस्तुतः आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में जो मानदंड स्थापित किए, वे आज भी प्रासंगिक और अनुकरणीय हैं। पत्रकारिता के वर्तमान दौर में जब साहित्यिक पत्रकारिता का स्थान पत्रकारिता के क्षेत्र में सिमटता जा रहा है, ऐसे में आचार्य जी की स्मृतियां जीवंत हो उठती हैं।

समाचार पत्र जनसूचना का ही नहीं बल्कि जनशिक्षण और जनजागरण का भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। समाचार पत्रों की संख्या में बढ़ोतरी के संदर्भ में उनका कहना था, "समाचार पत्र शिक्षा प्रचार का प्रधान साधन है। जिस देश में जितने ही अधिक पत्र हों, उसको उतने ही अधिक जागृत अवस्था में समझना चाहिए।" आचार्य द्विवेदी जी ने हिंदी पत्रकारिता को साहित्य के सरोकारों से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके संपादन में निकलने वाली 'सरस्वती' पत्रिका का हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी देश और जाति की उन्नति के बारे में यदि जानना हो तो उस देश का साहित्य वहां की स्थिति को बयान करता है। इस संदर्भ में दिसंबर 1917 के अंक में द्विवेदी जी ने लिखा है, "साहित्य ही ज्ञान और बोध का भंडार है। जिस जाति का साहित्य नहीं उस जाति की उन्नति नहीं हो सकती, क्योंकि जहां साहित्य नहीं, वहां पूर्व प्राप्त ज्ञान भी नहीं और जहां पूर्व प्राप्त ज्ञान नहीं वहां उन्नति कैसी।"

आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से हिंदी साहित्य को अनेक ऐसे रचनाकार प्रदान किए, जिनके साहित्य ने स्वाधीनता आंदोलन में रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य किया। मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद जैसे हिंदी के पुरोधा महावीर प्रसाद द्विवेदी की अनुपम देन है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय जनमानस में अपनी अस्मिता व स्वाभिमान का बोध कराकर उन्हें हीन भाव से मुक्त किया। वहीं प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन के जो चित्र साकार हुए, वह द्विवेदी जी की ही प्रेरणा के परिणाम थे। दूसरी तरफ स्वाधीनता आंदोलन में विशेष भूमिका निभाने वाले हिंदी पत्रकारिता जगत के नींव के पत्थर 'आज' व 'प्रताप' जैसे पत्रों के संपादक क्रमशः बाबूराव विष्णु पराड़कर व गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा पाकर पत्रकारिता जगत में प्रवेश किया। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने स्वयं स्वीकार किया है कि जब सन् 1906 से मैंने स्वयं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, तब प्रतिमास 'सरस्वती' का अध्ययन मेरा एक कर्तव्य हो गया। मैं सरस्वती देखा करता था संपादन सीखने के लिए।' गणेश शंकर विद्यार्थी ने तो अपना साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' के सहायक संपादक की हैसियत से प्रारंभ किया था। विद्यार्थी जी ने जब कानपुर में 'प्रताप' की स्थापना की, तब द्विवेदी जी से ही वह मूलमंत्र लिया जो 'प्रताप' पर छपता रहा—

''जिसको न निज गौरव तथा
निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं पशु निरा है
और मृतक समान है।''

महावीर प्रसाद द्विवेदी अंग्रेजों की कुटिल व विभाजनकारी नीतियों को अच्छी तरह जानते-समझते थे। अंग्रेजी को शिक्षा की भाषा बनाने का उन्होंने विरोध किया, वहीं अंग्रेजों द्वारा हिंदी को आधुनिक शिक्षा के अयोग्य कहने के प्रश्न पर भी उन्होंने अनेक तर्कों से यह सिद्ध किया कि हिंदी में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा न केवल संभव है अपितु बेहतर तरीके से हो सकती है। हिंदुओं और मुसलमानों को बांटने के लिए अंग्रेजों द्वारा लागू की जा रही नीतियों की भी उन्होंने जमकर भर्त्सना की। स्वदेशी आंदोलन का भी द्विवेदी जी ने खुलकर समर्थन किया। जुलाई 1903 की 'सरस्वती' में 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' शीर्षक से अपनी कविता में उन्होंने स्वदेशी आंदोलन पर बल देते हुए लिखा है—

''विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं।
न सूझे है अरे भारत भिखारी
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी।''

द्विवेदी जी मुसलमानों, अछूतों और स्त्रियों सभी में शिक्षा प्रसार के समर्थक थे। 'सरस्वती' में अनेक लेख इस संदर्भ में छपते रहते थे। स्त्रियों और अछूतों की तरह भारतीय समाज के एक अभिन्न व उपेक्षित अंग—आदिवासियों से संबंधित अनेक लेख 'सरस्वती' में उन्होंने प्रकाशित किए। वे जानते थे कि प्राचीन संस्कृति पर गर्व राष्ट्रीय आत्मसम्मान का अभिन्न अंग है। स्वाधीनता आंदोलन के लिए यह आत्मसम्मान की भावना अत्यंत मूल्यवान है।

परिणामतः महावीर प्रसाद द्विवेदी का समग्र जीवन हिंदी भाषा तथा साहित्य के विकास में लगा। उनका महत्त्व न केवल इस मायने में सराहनीय है कि उन्होंने भारत की भाषा समस्या को हल किया, बल्कि उसे दरबारी संस्कृति से मुक्त कर लोक जागरण परंपरा से जोड़ा। 'सरस्वती' पत्रिका का कार्यभार ग्रहण कर लगभग 18 वर्ष तक द्विवेदी जी ने उसका उत्तम ढंग से संपादन ही नहीं किया, अपितु उस कार्य के साथ ही उन्होंने हिंदी को विशिष्ट परिमार्जित शैली में ढालकर उसे एकरूपता प्रदान करने का भी स्थायी कार्य किया। हिंदी को स्थिरता प्रदान करने में उन्होंने जो अभूतपूर्व कार्य किया सो तो किया ही, इसके सिवाय सबसे बड़ा कार्य उन्होंने गद्य-पद्य की एक भाषा करने का किया। इसके साथ इस बात का भी उल्लेख होगा कि उन्होंने अपनी प्रेरणा और प्रोत्साहन से कितने ही नवयुवकों को सुलेखक बना दिया, जिनमें कोई बड़े-बड़े आलोचक, साहित्यकार, पत्रकार व संपादक तक हो गए।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से जो कार्य किया वह हिंदी साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है। जिस आस्था और विश्वास के साथ 18 वर्षों तक वे 'सरस्वती' का संपादन करते रहे वह उनके धैर्य, आत्मविश्वास, कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी का सबसे बड़ा सबूत है। विश्व-साहित्य के इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे, जब एक व्यक्ति अकेले एक पत्रिका के माध्यम से इतनी लंबी अवधि तक पूरे साहित्य पर छाया हुआ हो और शासन करता रहा हो। यह सत्य है कि द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के संबंध में जो लक्ष्य रखे थे, उनका पालन अपने संपादन के अंतिम क्षण तक वे करते रहे। चाहे पूरा का पूरा अंक उन्हें ही क्यों न लिखना पड़ा हो, 'सरस्वती' को समय से निकालते रहे। अपने लाभ और हानि की चिंता न कर उन्होंने बराबर पाठकों का ख्याल रखा। अपनी आत्मा का हनन कभी भी नहीं किया और न ही किसी प्रलोभन के सामने विचलित हुए।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' को अपने हाथ में लेकर उन्होंने उसमें समय-समय पर देश-कालानुसार जो उपयुक्त परिवर्तन किए हैं, उन सबका—उनकी पत्रकार एवं संपादन कला का परिचय देना अत्यंत कठिन कार्य है। इस संबंध में तो यहां इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि 'सरस्वती' हिंदी की एक आदरणीय और लोकप्रिय पत्रिका रही है और द्विवेदी जी की जिस संपादन संबंधी प्रतिभा की बदौलत 'सरस्वती' ने यह उच्च स्थिति प्राप्त की है, वह प्रारंभ से ही उनकी एक विशेष वस्तु रही है। 'सरस्वती' का यह काम प्रचार की दृष्टि से बड़े महत्त्व का नहीं था, बल्कि इससे व्यवहार में बहुत लाभ हुआ। प्रायः दो दशकों तक 'सरस्वती' का संपादन ही द्विवेदी जी ने नहीं किया बल्कि इस सारे समय में साहित्यिक भाषा निर्माण के काम में उन्होंने चतुर माली की तरह काम किया। आगे आने वाली पीढ़ी 'सरस्वती' और द्विवेदी जी के इस निर्माण कार्य को शायद भूल जाएं। किसी भाषा के बारे में किसी एक व्यक्ति और पत्रिका ने उतना काम नहीं किया जितना हिंदी के बारे में इन दोनों ने किया।

अनुसंधान अधिकारी,
एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

हिंदी के इतिहास पुरुष

बद्रीनारायण तिवारी

''जिस युग में फिल्मी अभिनेता–अभिनेत्रियों के इस्तेमाल किए हुए जूते और दुपट्टे सार्वजनिक नीलामी में बिकने का फैशन उपज आया हो, उसमें किसे यह जाकर देखने का समय अथवा उत्साह होगा कि कालजयी साहित्य के रचयिताओं की जन्मस्थली कहां और किस दिशा में है? क्या अभी भी वहां कहीं ऐसे लोग हैं, जो उस रचनाकार के बारे में सहज मानवीय स्मृतियां संजोए हुए हैं? हमारी दिग्गज साहित्य-अकादमियों और भाषा-परिषदों को फूहड़ राजनीति खेलने से फुर्सत नहीं, राजकीय भाषा समितियां लगभग रबर स्टैंप बन चुकी हैं। ऐसे माहौल में श्री शर्मा ने बहुत निःस्वार्थ प्रेम और सरोकार के साथ वह काम किया है, जो हमारे तमाम बड़े-बड़े संस्थान साधन संपन्न होते हुए भी नहीं कर सकते हैं।'' इस यथार्थ चित्रण को लिखा है विदुषी संपादक सुश्री मृणाल पाण्डे ने यायावरी–साहित्य, रेखाचित्र एवं यात्रा वृत्तांतों के क्षेत्र में विशेष पहचान बनाने वाले डॉ. चंद्रिका प्रसाद शर्मा की कृति–''साहित्य निर्माताओं के गांव'' की प्रस्तावना में।

सुश्री मृणाल पांडे ने सर्वप्रथम डॉ. शर्मा के इन लेखों को अपने साप्ताहिक 'हिंदुस्तान' के संपादक रूप में पर्याप्त साज-सज्जा के साथ प्रकाशित भी किया था। गांव के धूल भरे लेखनी के पहरूओं की स्मृतियों को जीवंतता प्रदान की। इस कृति में पंद्रह साहित्य मनीषियों के स्थानों में मुंशी प्रेमचंद्र के 'लमही', हरिऔध के 'निजामाबाद', आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'अगौना', पं. प्रताप नारायण मिश्र के 'बैजेगांव', पं. रामनरेश त्रिपाठी के 'कोइरीपुर', आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'जन्मस्थान दौलतपुर', सुकवि सम्राट गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के 'हड़हा', महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के गांव 'गढ़ाकोला', आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के गांव 'सफीपुर', महापंडित राहुल सांकृत्यायन के ग्राम 'पंदहा', अज्ञेय की जन्मभूमि 'कुशीनगर', कविवर नरोत्तमदास के 'बाड़ी', मलिक मोहम्मद जायसी के 'जायस' और हल्दीघाटी के रचयिता श्याम नारायण पांडेय के गांव 'डुमराव' पर वहां जाकर अपनी लेखनी चलाई है।

इस समय विश्व में हिंदी जानने और बोलने वालों की संख्या प्रथम स्थान पर मानी जाती है। इसका सबसे बड़ा श्रेय दूर द्रष्टा हिंदी के युग पुरुष कहे जाने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही है। आचार्य द्विवेदी ने समझ लिया था कि वे हिंदी की विभिन्न क्षेत्रों में बोली जानी वाली बोलियां एक क्षेत्र विशेष में कहीं सीमित होकर न रह जाए। हिंदी का विकास तभी होगा जब एक सामान्य रूप से बोली जानी वाली भाषा का स्वरूप होगा। रायबरेली जनपद के दौलतपुर गांव का एक युवा सामान्य शिक्षा ग्रहण कर जी.आर.पी. रेलवे में 'सिग्नेलर' का पद प्राप्त कर लेता है किंतु अपने अंग्रेज अधिकारी के सम्मुख उसका स्वाभिमान उसे झुकने से रोकता है। किंतु यह यथार्थ घटना है कि रेलवे का उच्च पदाधिकारी अच्छे वेतन की नौकरी छोड़ कर बीस रुपए मासिक पर इलाहाबाद के 'इंडियन प्रेस' द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के संपादन का शुभारंभ करते हैं। आचार्य द्विवेदी की हिंदी साहित्य साधना का श्री गणेश होता है। बंगाल से आकर हिंदी प्रेमी हरीकेश घोष ने 'इंडियन प्रेस' की स्थापना कर सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। सर्वप्रथम प्रारंभिक दस वर्षों तक 'नागरिक प्रचारिणी सभा' काशी का संपादन उनके पदाधिकारियों के अंतर्गत रहा। इसके पश्चात् आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संपादन का भार ग्रहण किया।

वस्तुतः भारतेंदुकाल तक हिंदी गद्य लेखन तथा काव्य रचना हेतु अलग-अलग मानक अपनाए जाते थे। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में–''हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार का और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा का उपयोग होता है।'' उनके अनुसार जहां गद्य लेखन खड़ी बोली में होता है, वहीं काव्य हेतु ब्रज भाषा का प्रयोग ही उपयुक्त समझा जाता रहा। आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' से इस दुविधा को समाप्त करते हुए खड़ी बोली में लिखने हेतु रचनाकारों को काव्य कृतियां भेजने पर प्रोत्साहित करते थे। इसी के फलस्वरूप हिंदी का विशाल समुदाय खड़ी बोली में सशक्त काव्य रचना करने लगा। आचार्य द्विवेदी के प्रभा मंडल से संबद्ध कवियों में खड़ी बोली के कवियों में

प्रथम स्थान माना गया किंतु अन्य कवियों में लोचनप्रसाद पांडेय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' रामचरित उपाध्याय, ठाकुर गोपाल शरण सिंह आदि की गणना प्रभामंडल से अलग होकर पूर्व से ही अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिओध' तथा जय शंकर प्रसाद जैसे प्रसिद्ध कवि पहले से ही खड़ी बोली के रचनाकारों का नेतृत्व कर रहे थे।

आचार्य द्विवेदी का 'सरस्वती' संपादन काल लगभग दो दशक तक चला। संपादन भार लेते ही द्विवेदी जी ने गद्य को परिष्कार कर उसे व्याकरण सम्मत बनाने तथा हिंदी को प्रौढ़ तथा परिपक्व रूप देने हेतु कटिबद्ध हो उसका परिवर्तित व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। आचार्य द्विवेदी को हिंदी के साथ ही संस्कृत का ज्ञान पारिवारिक परंपरा से प्राप्त हुआ। इससे संस्कृत की कालजयी कृतियों की विस्तृत व्याख्या करने में समर्थ हुए। ऐसी रचनाओं में 'नैषध चरित', 'कुमार संभव सार', 'विक्रमांदेव चरित चर्चा', 'कालिदास की निरंकुशता' जैसे ग्रंथ लिखने में समर्थ हुए। 'मेघदूत' तथा 'किरातार्जुनीय' के पद्यानुवाद भी किए। रेलवे नौकरी के मध्य महाराष्ट्र तथा गुजरात के अनेक स्थानों पर रहने से उनको अधिकारिक मराठी तथा गुजराती भाषा का ज्ञान हो चुका था।

आचार्य द्विवेदी अंग्रेजी ज्ञान से परिपक्व पहले से ही थे फलतः उन्होंने तत्कालीन योरोप के दार्शनिकों तथा चिंतकों के चर्चित ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद 'स्वाधीनता', हर्बर्ट स्पेंसर की कृति—'एजुकेशन का अनुवाद' शिक्षा, फ्रासिंस बेकन के निबंधों का अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' आदि इस श्रेणी के ग्रंथ हैं। आचार्य द्विवेदी बड़े स्पष्टवादी खुले विचारक भी थे। उन्होंने आत्म वृतांत के अपने लेखन में आए उस घटना का उल्लेख करना नहीं भूलते, जब उन्होंने किसी प्रकाशक द्वारा अच्छा पारिश्रमिक पाए जाने के लालच में लार्ड वायरन के यौन शिक्षा विषयक ग्रंथ 'ब्राइडल नाइट' का सार संक्षेप 'सोहागरात' नाम से लिखा। परंतु आचार्य द्विवेदी की पत्नी के विरोध के कारण वे तैयार पांडुलिपि होते हुए भी प्रकाशित नहीं करा सके।

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद्र के पत्र 'हंस' के 'आत्मकथा विशेषांक' के लिए भेजे गए अपनी आत्मकथा के आचार्य द्विवेदी के लेख में अपने संघर्षमय जीवन तथा अपने ज्ञानोपार्जन विषयक बातें रोमांचकारी ढंग से कितनी स्पष्ट लिखी हैं—''मैं एक ऐसे देहाती का एकमात्र आत्मज हूं, जिसका मासिक वेतन मात्र दस रुपए था। अपने गांव के देहाती मदरसे में थोड़ी सी उर्दू और घर पर थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर 13 वर्ष की आयु में मैं 36 मील दूर रायबरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने लगा। आटा, दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। दाल ही में आटे के पेड़े या टिकिया पकाकर पेट पूजा किया करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही नहीं था। दो आने फीस देता था। संस्कृत भाषा उस समय उस स्कूल में वैसी ही अछूत समझी जाती थी, जैसे कि मद्रास के नम्बूदिरी ब्राह्मणों में वहां की शूद्र जाति समझी जाती है। विवश होकर अंग्रेजी के साथ फारसी पढ़ता था। एक वर्ष वहां किसी तरह काटा। फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुखावस्था के कारण मैं उससे आगे न पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।''

इस वर्ष (2013 ई.) आचार्य द्विवेदी का 150 वां वर्ष होने पर युवा पत्रकार गौरव अवस्थी ने उनकी स्मृति में 'आचार्य पथ' शीर्षक एक अविस्मरणीय पत्रिका प्रकाशित की है। इसमें प्रकाशित चयनित सामग्री संग्रहणीय है। एक संतोष की बात यह है कि युग निर्माता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन तथा लेखन क्षेत्र में उनके मूल्यांकन को उनके जीवनकाल में हो सका। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने 1931 ई. में उन्हें साहित्य सेवा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हेतु आचार्य शिवपूजन सहाय के संपादन में 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' उन्हें समर्पित किया गया। बाबू श्यामसुंद दास द्वारा लिखित उस अभिनंदन पत्र को साहित्यिक धरोहर में पुनः 'आचार्य पथ' पत्रिका में प्रकाशित भी किया गया। इसी पत्रिका में एक लेख गौरव अवस्थी की कलम से—''गांधी परिवार और दौलतपुर'' शीर्षक में दौलतपुर और द्विवेदी जी की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने वाला है। उस लेख में दिया है—''गांधी परिवार और हिंदी के युग प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की जन्मस्थली दौलतपुर का रिश्ता 31 साल पुराना है। विदेश में आचार्य श्री की ख्याति सुनकर प्रधानमंत्री रहते हुए स्व. इंदिरा गांधी 7 अप्रैल, 1973 को दौलतपुर थीं। उनके आगमन को लेकर सराय बैरिहा खेड़ा से भोजपुर होते हुए दौलतपुर तक 19 किमी. लंबी सड़क रातों रात बनाई गई थी। 'आचार्य द्विवेदी मार्ग' का पत्थर आज भी लगा है। रायबरेली के वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी पं. गया प्रसाद शुक्ल जिन्हें जिला भर तथा इंदिरा जी भी आदरपर्वूक 'गुरु जी' कहकर संबोधित करती थी—बताया करते थे कि दंदिरा जी को विदेश प्रवास के दौरान एक लाइब्रेरी में आचार्य जी द्वारा अनुवाद की गई एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक मिली। लेखक के अपने संसदीय क्षेत्र के होने से अवगत होते ही वह अभिभूत हो गईं और अपने अगले रायबरेली दौरे में ही उन्होंने दौलतपुर जाने का कार्यक्रम तय कर दिया। जब दौलतपुर तक पक्की सड़क नहीं थी। गुरु जी बताया करते थे कि सरांय बैरिहा खेड़ा—भोजपुर-दौलतपुर (आचार्य द्विवेदी मार्ग) का उद्घाटन माननीय इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री भारत सरकार के कर कमलों द्वारा 7 अप्रैल, 1973 को संपन्न हुआ। वह सड़क दिन-रात पेट्रोमैक्स की रोशनी जलाकर मेहनत से बनाई गई। इंदिरा जी के

तब जिले में ही नहीं देश भर के लोग कायल हुए थे।

गांधी परिवार और दौलतपुर के बीच रिश्ते की इस कड़ी को और मजबूत किया। स्व. इंदिरा जी की बहू सोनिया गांधी ने 30 नवंबर, 2010 को इसी दिन सोनिया जी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय स्मारक अभियान समिति रायबरेली द्वारा जन सहयोग से आचार्य जी के जन्म स्थान के सामने स्मृति मंदिर के बगल में आचार्य जी की आवक्ष प्रतिमा का अनावरण समारोहपूर्वक किया। आचार्य जी द्वारा पत्नी की स्मृति में निर्मित किए गए। 'स्मृति मंदिर' में देवी लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्तियों के बीच कई दशक पहले पत्नी की मूर्ति स्थापित किए जाने के इतिहास से अवगत होते ही सोनिया गांधी अभिभूत हो गईं। हालांकि इसके पूर्व गांधी परिवार के 'हनुमान' कहे जाने वाले कैप्टन सतीश शर्मा ने सांसद निधि से पुस्कालय–वाचनालय भवन दौलतपुर में संचालित भी हो रहा है। प्रतिमा अनावरण के समय उनके मुख से पहला वाक्य निकला था–''आप लोग भी ऐसा सम्मान अपनी पत्नियों का किया करिए।''

इसी अनावरण के अवसर पर हिंदी सेवियों में पं. कमलाशंकर अवस्थी तथा खुमान खेड़ा (दौलतपुर के निकट) गांव के निवासी मुंबई 'नवनीत' के पूर्व संपादक डॉ. गिरिजा शंकर त्रिवेदी को सम्मानित करते हुए सोनिया गांधी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि ''अंग्रेजी में जो स्थान 'जानसन' का है वही स्थान हिंदी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का है। यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे संसदीय क्षेत्र में ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ है।''

संसार के हर क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी की खड़ी हिंदी बोली ने परस्पर एकता के सूत्र से संबद्ध कर दिया–इसीलिए यह राजभाषा भी देश की बन सकी। वह संतों की प्रेम वाणी तथा स्वाधीनता संघर्ष में लड़ने की वीरता से परिपूर्ण हिंदी पांचजन्य की शंख ध्वनि होकर हुंकार भरती रही। तभी भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी ने साहित्य के संबंध में उचित ही कहा–''साहित्य का काम यही नहीं है कि हमेशा मधुर ध्वनि ही निकाला करें।

जीवन को हम एक रामायण मान लें। रामायण केवल जीवन के आरंभ का मनोरम बालकांड ही नहीं है, अपितु करुण रस में ओत-प्रोत अरण्य कांड भी है और धधकती हुई युद्धग्नि से प्रज्ज्वलित लंका कांड भी है तो अध्यात्म की ऊंचाइयों को छूने वाला उत्तर कांड भी है।''

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कानपुर 'जूही' मुहल्ले में लगभग बीस वर्ष रहते हुए ऐतिहासिक पत्रिका 'सरस्वती' का संपादन भी किया। श्री गौरव अवस्थी का फोन आया कि आचार्य श्री के 150 वें वर्ष पर द्विवेदी जी की फिल्म बनने की यूनिट आएगी। उनके जूही मुहल्ले के प्रवास पर किसी को सहायता हेतु सहयोग करा दें। मेरे निवेदन पर साहित्य सेवी डॉ. विनोद त्रिपाठी फिल्म यूनिट के साथ गए–काफी लोगों से संपर्क करने पर मुहल्ले के एक बुजुर्ग मात्र ने यह बताया कि बहुत पहले रेलवे के एक तार बाबू रहते थे। वह भी कोई जानकारी महापुरुष के विषय में नहीं बता सके–यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। जबकि विश्व के कोने-कोने में करोड़ों व्यक्ति आचार्य द्विवेदी की खड़ी हिंदी देश-विदेश में प्रयोग कर रहे हैं। बालीवुड फिल्मों का स्थान संसार में दूसरे स्थान पर है, जिससे भारत को अरबों रुपए का लाभ प्रतिवर्ष हो रहा है।

अंततः यह सत्य है–महावीर प्रसाद द्विवेदी! एक व्यक्ति–पर–एक युग, अपने आप में एक संस्थान, जिससे होकर गुजरना भारत के एक गौरवशाली इतिहास के अध्याय से परिचित होना है।

मानस संगम,
महाराज प्रयाग नारायण मंदिर,
शिवाला, कानपुर–208001 (उ.प्र.)

महावीर प्रसाद द्विवेदी नवविषय प्रवर्त्तक 'संपत्ति शास्त्र एवम् औद्योगिकी' : नव रंग

डॉ. गोपाल कमल

''विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं? वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं?
न सूझे है अरे भारत भिखारी!
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी!
हजारों लोग भूखों मर रहे हैं
पड़े वे आज या कल कर रहे हैं
महा अन्याय हा हा हो रहा है;
कहें क्या कुछ नहीं जाता कहा है।
मरें असगर, बिसेसर और काली;
भरें घर ग्रांट, ग्राहम और राली।''
(स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार, 1903 'सरस्वती')

हिंदी की अनस्थिरता : एक ऐतिहासिक बहस[1] में तीन हिंदी प्रेमियों की, सर्वश्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाल मुकुंद गुप्त, गोविंद नारायण मिश्र का एक शब्द अनस्थिरता के बहाने वाद-विवाद-संवाद है। भाषा और व्याकरण के पक्ष-प्रतिपक्ष रखे गए हैं[2]। बीसवीं सदी की शुरुआत में ये बहसें हिंदी भाषा तथा व्याकरण को स्थिर करने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। उनकी पत्नी का कथन, ''थूक के चाटोगे, क्या?'' इस संदर्भ में उल्लेख्य है (देखें आत्मकथा) अस्थिरता शब्द पर 'जनसत्ता' में आज कल जैसी छपी बहस चली थी।

सत्रह वर्ष तक 'सरस्वती' का संपादन कर उन्होंने हिंदी साहित्य की अद्वितीय सेवा की। उन्होंने कविता में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा कराकर काव्य और गद्य की भाषा के अंतर को दूर किया।

रचनाएं–उन्होनें मेघदूत 'कुमारसंभव', 'महाभारत', किरातार्जुनीयम्, वेणीसंहार नैषधाचरितर्या, 'स्वाधीनता', 'रघुवंश', 'शिक्षा', 'बेकन विचारत्नावली' आदि ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया और 'संपत्तिशास्त्र', 'काव्य मंजूषा', 'आलोचनांजलि', 'रसज्ञ रंजन', 'विदेशी विद्वान्', 'सुकवि संकीर्तन', 'साहित्य संदर्भ', 'साहित्य सीकर' आदि ग्रंथों की रचना की।

द्विवेदी जी के कार्य–भारतेंदु काल में भाषा व्याकरणसम्मत नहीं थी। इस युग के लेखकों को एक ही शब्द के अनेक प्रयोग करने में कोई हिचक नहीं होती थी। शब्दों पर प्रांतीयता की मुहर अधिक लगी हुई थी। द्विवेदीजी ने भाषा को व्याकरणसम्मत बनाकर विरामचिह्नों की एकरूपता स्थापित की। उन्होंने भाषा की शुद्धता और एकरूपता पर बल दिया और विषयों की संकुचितता समाप्त कर अनेक नए विषयों पर निबंध लिखे तथा पुरातन संदर्भों से निबंध साहित्य को पुष्ट किया। उदाहरण के लिए रचनावली में दो निबंधकारों की कृतियों पर आचार्य की छुरी कैसे पैने ढंग से चली है– वह संपादक के कर्त्तव्य के निर्वाह का अनूठा प्रसंग है। देखें श्री देवीदत्त शुक्ल तथा पांडुरंग खानखोजे के निबंध तथा उनका सुधारा गया स्वरूप।

आलोचना-क्षेत्र में उन्होंने गंभीरता का समावेश किया। व्रजभाषा के प्रेम और शृंगार से कविता को निकालकर उसे राष्ट्र और समाज के क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया।

भारतेंदु युग में आलोचना का काम था कवि या लेखक के गुण-दोष देखना। उसके पीछे कोई साहित्यिक सिद्धांत नहीं था। द्विवेदी युग में आकर सिद्धांतों की स्थापना हुई और श्रेष्ठ समालोचनाएं होने लगीं। सरस्वती के संपादन काल में उन्होंने कविता, गद्य, आलोचना, निबंध, अनुवाद, संपादन सबके मानक तैयार किए।

निबंधकार द्विवेदी–आपने परिचयात्मक, गवेषणात्मक और आलोचनात्मक निबंध लिखे। परिचयात्मक निबंधों में वर्णनात्मकता है और पाठकों का मनोरंजन भी होता है। इनकी भाषा चलती, मुहावरेदार और व्यावहारिक है। पुस्तकाकार अनुवादों में रोजर बेकन (विज्ञानवाद के आदि प्रणेता), मिल लिवर्टी (स्वतंत्रता) और स्पेंसर एजुकेशन (शिक्षा) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

गवेषणात्मक निबंधों का विषय सामान्य रूप से अतीत से संबद्ध रहा है। 'आर्यों का निवास-स्थान' जैसे खोजपूर्ण निबंध लिखे। इनमें संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। आध्यात्मिक निबंधों में आत्मा, ईश्वर, कुण्डलिनी इत्यादि अनेकानेक विषय लिए गए हैं।

आलोचनात्मक निबंध साहित्यिक विषयों पर लिखे गए हैं। इन निबंधों में उनका सिद्धांत प्रतिपादक रूप उभरकर सामने आया है। 'हिंदी कालिदास की आलोचना' ऐसे ही निबंधों में आती है। भारत यायावर के छठे

खण्ड की भूमिका में यूं लिखा है–

''द्विवेदी जी ने 'संपत्ति शास्त्र' के अलावा अर्थशास्त्रीय कई निबंध भी लिखे, जो उनकी 'औद्योगिकी' नामक पुस्तक में संकलित हैं। 'औद्योगिकी' पुस्तक में उन्होंने कानपुर के ही अपने मित्र शिवनारायण के तीन निबंध भी संकलित कर लिए हैं, जिन्हें उन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। इन निबंधों की रचना में शिवनारायण जी के साथ अवश्य ही द्विवेदी जी का भी सहयोग होगा, इसीलिए उन्होंने 'बैंक' 'दलाली' और 'हुंडी-पुरजे का व्यवहार' को अपनी पुस्तक में शामिल कर लिया। शिवनारायण जी के निबंधों की कई मुख्य बातें, उनके प्रकाशन के कई वर्ष पूर्व ही द्विवेदीजी 'संपत्ति शास्त्र' में लिख चुके थे।

''औद्योगिकी' पुस्तक 1921 ई. में जबलपुर के राष्ट्रीय हिंदी-मंदिर द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इसमें कुल बारह निबंध हैं, जिनमें प्रारंभिक छह निबंध ये हैं–भारतवर्ष का चलन-बाजार सिक्का, साथ, कागजी रुपया, बैंक, दलाली और हुण्डी-पुरजे का व्यवहार। इन निबंधों में इन विषयों की वर्तमान दशा को दर्शाने के साथ अतीत में इनका व्यवहार किस तरह होता था, इस पर विस्तार से विचार किया गया है। पांच निबंधों में भारत के तत्कालीन कई आर्थिक मुद्दों पर लेख हैं, जैसे भारत वर्ष में औद्योगिक शिक्षा, भारतवर्ष की कारीगरी, भारतवर्ष में कांच के कारखाने, भारतवर्ष में खेती की बुरी दशा एवं चुकंदर की चीनी। 'कृषि-विद्या में अद्‌भुत आविष्कार' निबंध में इस संबंध में हुए आविष्कार से परिचिति करवाई गई है। ये सभी निबंध विभिन्न विषयों के एवं बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। अपनी शोधपरकता के कारण इन निबंधों में बतायी गई कई बातें बिल्कुल नई हैं।''

समालोचक द्विवेदी–समालोचना क्षेत्र में उनका स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने निष्पक्ष एवं सिद्धांतवादी समीक्षा की है। समीक्षा के व्यावहारिक और निर्णयात्मक दो रूप हैं। वस्तुतः हिंदी भाषा के निर्माता के रूप में उनका कृतित्व सर्वोच्च है। उनके किसी अन्य रूप से यह रूप अत्यधिक समृद्ध और श्रेष्ठ है।

'अनस्थिरता' की व्याख्या करना जरूरी क्यों है–यह द्विवेदी जी के सैद्धांतिक वाद को प्रतीकात्मक रूप से स्थापित करने की कोशिश भी है। आचार्यवर कभी हंसी-मजाक का इस्तेमाल करते हुए घर में चोरी के प्रसंग को पत्रों में वर्णित करते हैं, कभी द्विरेफ के हस्ताक्षर से छपते हैं कभी श्रीयुत 'ज्ञ' नाम से/कभी 'गवीश' तो कभी वैष्णव के नाम से, पर चोरी की अनकथ-अकथ कथा का सूत्र छोड़ जाते हैं संपादक के रूप में सरस्वती को उन्होंने पाठकों को परखने का, उनकी पसंद-नापसंद को परिमार्जित करने का तथा सर्वोत्कृट सामग्री परोसने का बहुत बड़ा बीड़ा उठाया। संपत्ति शास्त्र के कुछ लेख, जनवरी-अप्रैल में आरा नागरी प्रचारिणी सभा तथा फरवरी 1907 में सरस्वती में छपे थे। पर पुस्तकाकार रूप में अनेकानेक बंगाल, उर्दू, मराठी, गुजराती के ग्रंथों के अनुशीलन के पश्चात्, दो भागों में, पूर्वार्द्ध (7 खंड) तथा उत्तरार्द्ध (8 खण्ड) पूर्ण हुआ। भारत यायावर के शब्दों में–

''संपत्ति शास्त्र' पुस्तक लिखने का उद्देश्य द्विवेदी जी का अर्थशास्त्र के सार्वभौम सिद्धांतों का सिर्फ वर्णन करने का नहीं है, अपितु भारतीय अर्थव्यवस्था की गहरी जांच-पड़ताल करने के लिए उन सिद्धांतों का सहारा लेना है एवं हिंदी-जनता को देश की आर्थिक परिस्थितियों की यथार्थ दशा का सज्ञांन कराना है, जो तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक दशा के मूल में है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस पुस्तक के संदर्भ में सही लिखा है कि अभी तक हिंदी में कोई ऐसा लेखक नहीं हुआ जो साहित्यकार हो, साथ ही जिसे अर्थशास्त्र का ऐसा ज्ञान हो (द्विवेदी जी जैसा)। यह ग्रंथ (यानी 'संपत्ति शास्त्र') अर्थशास्त्र की नई-पुरानी पाठ्य-पुस्तकों से भिन्न है। इसका उद्देश्य है समकालीन भारत के अर्थतंत्र का अध्ययन करना। इसका महत्त्व तब ज्ञात होगा जब इसे रजनी पामदत्त की पुस्तक 'आज का भारत' के साथ मिलाकर पढ़ा जाएगा। पामदत्त की पुस्तक 1940 में प्रकाशित हुई। जो लोग भारत में अंगरेजी राज की भूमिका समझना चाहते हैं, उनके लिए द्विवेदी जी की पुस्तक में महत्त्वपूर्ण सामग्री हैं । अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण द्विवेदी जी बहुत-से विषयों पर ऐसी टिप्पणियां लिख सके जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएं लांघ जाती हैं।''

यह पुस्तक तभी लिखी गई है जब गांधी जी 'हिंद स्वराज' की कल्पना कर रहे थे, बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। दोनों तकरीबन एक ही साल में लिखे-छपे हैं। समानता का दावा करने के लिए हिंदी भाषी होना आवश्यक नहीं । हर देशवासी गुजराती/अंग्रेजी तथा बाद में प्राप्य 'हिंद स्वराज' से परिचित है। उसकी सौंवी जयंती पर काफी विमर्श नए अर्थशास्त्र/संपत्ति शास्त्र पर विद्वानों में हुआ है।

आचार्य के ही शब्दों में संपत्ति शास्त्र में क्या है, देखते हैं।

''इस पुस्तक को पहले हमने पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नामक दो खंडों में विभक्त किया है। फिर प्रत्येक खंड को विषय अनुसार कई भागों में बांटकर, एक एक विषयांश का विवेचन अलग अलग परिच्छेदों में किया है। पूर्वार्द्ध के सात भाग किए हैं, उत्तरार्द्ध के पांच। पूर्वार्द्ध में सत्ताईस परिच्छेद हैं, उत्तरार्द्ध में बीस। इस प्रकार समग्र पुस्तक बारह भागों और सैंतालीस परिच्छेदों में समाप्त हुई है। प्रथमार्द्ध में संपत्ति की उत्पत्ति, वृद्धि, विनिमय और वितरण आदि का विवेचन करके संपत्ति के उपभोग और आर्थिक व्यवस्था की तुलना की

जाती है। पुस्तकारंभ में इस बात का विचार किया है कि इस देश में संपत्ति शास्त्र के अभाव का कारण क्या है, और इस शास्त्र को शास्त्रत्व की पदवी दी जा सकती है या नहीं। द्वितीयार्द्ध में साथ, बैंकिग, बीमा, व्यापार, कर और देशांतर-गमन का विचार करके संभूय-समुत्थान, हड़ताल और द्वारावरोध आदि पर भी एक एक परिच्छेद लिखा है। व्यापार-विषय को हमने अधिक विस्तार के साथ लिखना आवश्यक समझा है; क्योंकि यह विषय बड़े महत्त्व का है। इसे सात परिच्छेदों में बांटकर व्यापार-विषयक नीति और बंधनरहित तथा बंधनविहित व्यापार पर एक-एक परिच्छेद अलग लिखा है।''

यह पुस्तक तब लिखी गई थी जब कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रकट हुआ था। संस्कृत में अप्राप्य ग्रंथ श्याम शास्त्री में छपवाया था। बाद में लाला कन्नौजमल ने 1920 में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र भी छपवाया था। आचार्य ने पंजाब संस्कृत पुस्तकालय लाहौर से निकली 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' पर आलोचनात्मक समीक्षा भी 'सरस्वती' में छापी थी।

अब जब कि काफी पानी बह चला है। गंगा, बूढ़ी गंगा सब में। यमुना मृतप्राय हो चली है। संसाधनों के अद्भुत दोहन से देश त्रस्त है। नए अर्थशास्त्र में खनिजों-वनस्पतियों को कोई 'मूल्य-निर्धारण' का अवकाश नहीं है, तलपट। बैलेंसशीट के अनेकानेक 'इनटैंजिबल/मुंह बाए अर्थशास्त्र में जगह मांगते हैं। कराधान की अंतर्राष्ट्रीयता पेटेंट तथा रायल्टी के समीकरणों में उलझ जाती है, विदेशी पूंजी के आने-लगने-खपने-निकलने का क्या रास्ता हो यह जाने-समझे बिना एफडीआई/सीआइआई की मुखालफत आम हो गई है—नया अर्थशास्त्र किसी शास्त्री को संपत्ति शास्त्र सम लिखना होगा।

भारत के वाणिज्य व्यापार को सभा समितियां, गोष्ठी कॉन्फ्रेंस पुस्तकाकार छाप समझाने की कोशिश करते हैं। हाड इंडिया क्लौथ्ड द वर्ल्ड, द स्पिनिंग वर्ल्ड (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस 2009) में कोशिशें जारी हैं। 'सूत की अंतरंग कहानी' से नौंवी से सत्रहवीं सदी के इतिहास की नई बानगी देने की कोशिश करता हूं। इतिहास के चरण शतपद हो चले हैं। अंधकार के युगों की रौशनियां चौंधिया भी दे सकती हैं अगर सभी पैरों पर खड़े हो सकें।

1907-1908 से ले कर संपत्ति शास्त्र अब पुनः अर्थशास्त्र के नाम से ही प्रतिष्ठित हो गया है। पर इस पुस्तक में आर सी दत्त की दो किताबें भूमिका में उद्धृत हैं। किताब सरल भाषा में है, ज्ञानवर्द्धक है, तथा बिल्कुल व्यापारियों के हित की बात बताती हैं। एक परिच्छेद में हिंदुस्तान की अवस्था का दिग्दर्शन है। साख, सिक्का, करों, महसूलों, लगानों, दलाली, हुंडी-पुरजों तथा अत्याचारों का विवरण है। देश के भीतर तथा बाहर आव्रजन, माइग्रेशन की समस्या पर शोध है। द्विवेदीजी ने सभी क्षेत्रों में, इतिहास पुरातत्त्व, दर्शन सब पर गंभीर रूप से सादी भाषा में खूब लिखा।

आज सौ साल बाद 2013-14 में क्या समस्याएं हैं। गांधी जी की सोच के पहले द्विवेदी जी ने जो पौध लगा दी थी जो गांधी जी के काम आई। देखिए।

''साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाले प्रेमचंद, मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला, शिवपूजन सहाय, गणेशशंकर विद्यार्थी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि पर गांधी से ज्यादा महावीरप्रसाद द्विवेदी का प्रभाव था, इसीलिए ये सभी साहित्य गांधी से विचारों में प्रखर एवं दूरगामी दिखलाई देते हैं।''

आज की समस्याए क्या हैं? द्विवेदी आज किनके बातों पर कलम उठाते। यह बानगी भी देना मैं आवश्यक समझता हूं। किसानी की समस्या कहें या मजदूर की, क्या कपड़े का काम करने वाले मजदूर की कहें? तो कैसे कहें? - मेरा अपना क्या कर्त्तव्य हो सकता है, बताता हूं। द्विवेदी जी की राह अगर आज मैं चलूं तो कैसे।

एक आर्थिक इतिहास कह सकता हूं। पूर्व-मध्य काल का या जरूरत हुई तो मध्यकाल से। कपड़े का इतिहास कहूं तो उन्हें, रेशम क्यों, सूत का कहूंगा। कैसे कहूं?

सातवीं-नौवीं सदी से कपड़ा—भारत का मशहूर रहा है। पहले से रहा होगा। नवीं से सतरहवीं सदी का कपड़े का टुकड़ा देता हूं तथा इतिहासकारों की मदद के लिए संसाधन जुटाता हूं। देखिए!

नौवीं से सतरहवीं सदी का व्यापार—''कैसे जानेंगे कि क्या क्या जाता था? कहां जाता था? कौन पहिरता था? कौन थे वापरने वाले? कैसे पहनते थे? सिलकर? बिना सिले? ओढ़ने-बिछाने को? सजाने को? पर्व-त्योहार में, जन्म-मरण में, शादी-ब्याह में? कनात सजा या बरात में खपता? कब्र पर चढ़ाया गया या नए जातक को नामकरण के वक्त पहनाया गया? कपड़ों के साथ रंगने का सामान भी जाता था? महंगा या? सस्ता था? सूत ही रंगते थे या जूट, फ्लैक्स, रेशम, सिल्क सब? वहीं के बाजार के लिए या बाहर भी बेचेंगे? प्रश्नों से पता चलेगा कि व्यापार को व्याकरण की जरूरत क्यों हैं? देखते हैं? विश्वजनीन व्यापार, इतिहास, कला, स्थापत्य की नजर से! साक्ष्य में क्या होगा? सच्चाई कैसे महसूस करवाऊंगा आपको?

''एक-दो-तीन गिना देते हैं। फिर व्यास वृत्ति में जाएंगे। यानी कि कथा को विस्तार देंगे। पहले सूत्रवत् कहते हैं।

''9वीं से 14-15वीं तक के रेडियो धर्मी डेटिंग के, रेडियो तिथियों के साक्ष्य हैं। कपड़ों के टुकड़ों के? हां, कहां पे मिले?

इंडोनेशिया तथा मिस्र में भारतीय कपड़ों का रेडियोधर्मी साक्ष्य

(वोवन कार्गो लेखक ''जॉन गाई'' के सौजन्य से पृ.सं. 186)

	मिस्र		इंडोनेशिया	
	रेडियो तिथियां	टुकड़े (फुस्टाट)	रेडियो तिथियां	टुकड़े (विविध द्वीप)
9वीं-10वीं	895±75		–	–
10वीं-11वीं	–		–	–
12वीं-13वीं	1265±40 1255±55	 	–	–
13वीं-14वीं	1325±40 1340±40	 	1340±40	
14वीं-15वीं		–	1411±65	
15वीं-16वीं	1555±55		1510±40 1605±40	
16वीं-17वीं	1690±90		1655±55	
17वी-18वीं	–	–	1720±40 1750±45	

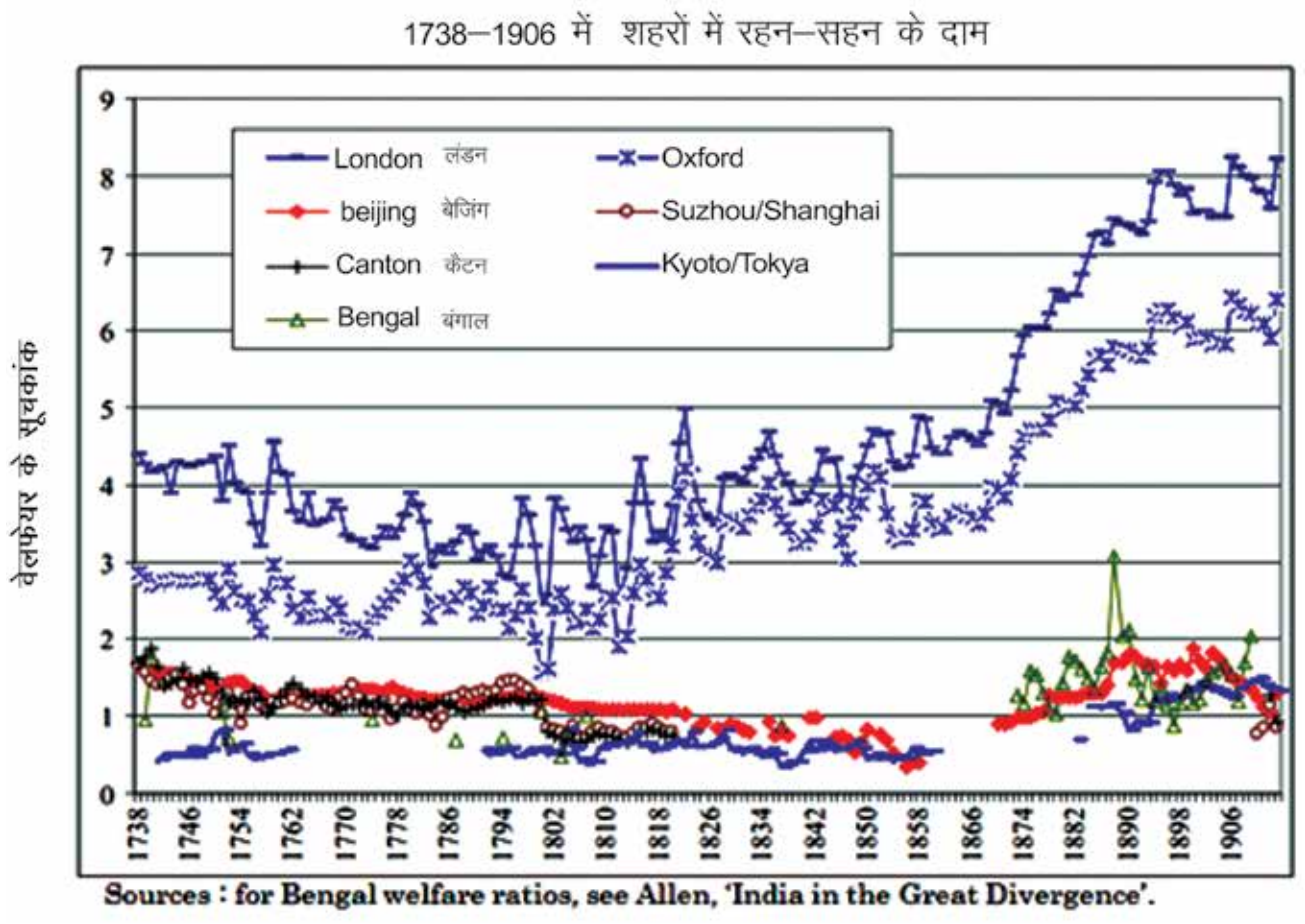

इंडोनेशिया तथा मिस्र में भारतीय कपड़ों का रेडियोधर्मी साक्ष्य–(वोवन कार्गो, लेखक ''जॉन गाई'' के द्वीप समूहों से, कैसर- अल-कादिम से। तापी कलेक्शन के दक्षिण पूर्व एशिया एवं दूसरी जगहों से प्राप्त कपड़े, कपड़ों के टुकड़ों की रेडियो डेटिंग का साक्ष्य व्यापार का पूरा व्याकरण कह देगा।

1. उस काल के कागजात, खत-खतूत, गिरिजाघरों, सिनेगॉगों, गेनिजा के रेकर्ड। पढ़ने की कोशिशें जारी हैं। भूमध्य सागर से लाल सागर हो कर हिंद महासागर तक फैले व्यापारियों के लिखे पत्र। ''चंद तस्वीरे बुतां '' वाला खंड।

2. टेक्स्टाइल पर के बिंबों, चित्रों, मोटिफों से अलंकृत,

(1) पत्थर का काम (कब्र) गोर किस दिलजले की है यह फलक। लकड़ी का काम (हवेलियां)। (2) पत्थर पर गर्भगृह (प्रांबनम्, इंडोनेशिया) पर खुदी आकृतियां। (3) पुस्तकों, पोथियों के चित्र। (4) ग्रंथों में विवरण, संस्कृत, प्राकृत के श्शास्त्रों में विवरण (अभिधान दर्पण इत्यादि)। (5) दर्शन में उदाहरणों के रूप में चर्चाएं (एक झरोखा दर्शन का खंड)। (6) टेक्सटाइल से संबंधित प्राविधियों के बारे में चर्चा। (7) अरबी के पुस्तकों में चर्चा। (8) बाहर की पुस्तकों के पुट्ठों में लगे कपड़ों के टुकड़े हिंदुस्तानी ग्रंथों के विवरण। (9) चित्रकला में प्राप्त मोटिफों के विवरण (10) दूसरी भाषाओं में लिखित प्रस्तरोकीर्ण अभिलेख यथा 1082 ई. का तमिल में, लुबो तुओ (बारूस) सुमात्रा में प्राप्त।

''विजया रामस्वामी ने काराशिमा के हवाले से 1082 ए.डी. में बरुस को सुमात्रा में प्राप्त तमिल में मिला लेख एक खास तरह के ट्रेड गिल्ड को बयान करता है।

3. दूसरे काल के लिए जैसे 1600-1900 के लिए तो वायवीय तत्त्व भी प्राप्त हो जाते हैं। बानगी के लिए–

(11) इंटरनेट पर चोरी के मामलों में निर्णय देशों पर विवरणों की तालिका (12) अंग्रेजों, फ्रेंचों के कानून में भारत के सूत के उपयोग के विरूद्ध प्रस्ताव तथा पारित नियम। (13) ट्रेड सोर्सेज। कंपनी के कागजात। (14) मुगल काल के हलफनामे, फरमान इत्यादि। (15) विल्स तथा टेस्टामेंट। (16) शिपिंग के डाटासेट से प्राइवेट ट्रेडिंग के साक्ष्य, नेटवर्किंग सिद्धांत की मदद से प्राप्त। (17) कपड़ों के सेंपल की किताबों के कपड़ों के टुकड़े। (18) विदेशियों के पत्राचार। कंपनी के अंदरूनी भी! (19) पेंटिंग में इस्तेमाल

व्यापार के लिए आमने-सामने इंडोनेशिया

नौवीं सदी में गर्भगृह–बर्मा

किए गए कालीनों के बैकग्राउंड की चर्चा। पर्सपेक्टिव पर अरबी से फिबोनाची को प्राप्त। (20) इस्लामी कपड़ों के तिराजी टुकड़े। (21) प्रस्तर मूर्तियों, टेराकोटा पर स्त्रीपुरूषों के पहने वस्त्रों का वर्णन, चित्रण। (22) नए फैशनों के चित्रणों के लिए काव्य के साथ बनाए गए चित्र (चौर पंचाशिका)। पूरी वर्णावली खत्म हो जाएगी। उदाहरणों में विभिन्न कविता के खंडों की बानगी है।

''तकरीबन हर कविता के साथ बिंब है, प्राविधि में नवीनता है। विषयगत नयापन है, नई विधाओं के प्रणयन की कोशिशों को दिखाने-समझाने का प्रयास है।

4. पूरे भारत खंड की विविधताएं कपड़ों, में, बुनावट में, रंग में, सजावट में, बारीकियों में–सबमें प्रकट होती है। वह वैविध्य भी दिखाना उद्देश्य है। पूरे भारत को ही गाना चाहता हूं। विविधताएं हैं भी ऐसी कि आंखें चौंधिया जाएं। इतिहास देखने-लिखने की एक अलग दृष्टि कपड़ों के माध्यम से मिलने लगी है।

''नौवी से सतरहवीं सदी के कम जाने, अनदेखे कपड़े के व्यापार की बारीकियां दिखाना चाहता था–पर यह भूमिका भर ही हो पायी है। '' (सूत की अंतरंग कहानी की भूमिका[3])

मेरी कृतज्ञता इस कारण ज्यादा है कि भाषा के सामर्थ्य का उपयोग आज के विज्ञापन जगत के तीरंदाज जिस खूबी से करते हैं, फिल्म के गीतकार भी सारी ध्वन्यात्मकता एवं द्विरेफत्व का उपयोग लोकप्रियता वैसे ही बढ़ाने के लिए करते हैं। आज के हिंदी में निकलते अर्थमितिय दैनिक, पत्रिकाएं, जर्नल्स सब गवाह हैं कि मानक हिंदी का जो स्वरूप आचार्य जी ने स्थिर किया था, वह फलदार, छतनार बरगद हो गया है, फलदायी, मोक्षदायी अश्वत्थ हो गया है। तभी तो आज की धारदार बहसें जिसकी बानगी में दे सकता हूं 'सूत की अंतरंग कहानी' से एक छोटे खंड की।

इसमें कितना कुछ 'संपत्ति शास्त्र तथा औद्योगिकी' से बल मिला है, कितना उनके मानकीकरण से, सहृदयों पर छोड़ता हूं और संपत्ति शास्त्र के प्रथम अध्याय के अंतिम भरतवाक्य से खत्म करता हूं–

''योरप और अमेरिका के प्रायः सभी देश स्वतंत्र हैं। इससे, राज्य-व्यवस्था और व्यापार की बातों का विचार करने में, उन्हें अपने देश की संपत्ति की रक्षा और वृद्धि के उपाय सोचते रहने का हमेशा मौका मिलता है। इसी से उन देशों में संपत्ति शास्त्र पर सैकड़ों ग्रंथ बन गए है और बनते जाते है। क्योंकि बिना संपत्ति की रक्षा और वृद्धि के न राज्य ही का प्रबंध अच्छी तरह हो सकता है और न व्यापार ही की उन्नति हो सकती है। अस्तु।

हमारी आज कल जो स्थिति है उसमें रह कर भी प्रत्येक देशहित-चिंतक का कर्त्तव्य है कि संपत्ति शास्त्र के सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करे, और यदि हो सके तो उस ज्ञान-प्राप्ति के साधन औरों के लिए, भी सुलभ करने की चेष्टा करे।''

संदर्भ

1 भारत यायावर ने महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली 1 से 15 खंड के अतिरिक्त इस पुस्तक में भाषा तथा व्याकरण पर आचार्य के दृष्टिकोणों पर विमर्श प्रस्तुत किया है। वाणी प्रकाशन (1993) में प्रकाशित।

2 रचनावली भाग 1, पृ. 329, किताब घर।

3 सूत की कहानी भाग-1, ज्ञानपीठ प्रकाशन

105, डी-2 टाइप फ्लैट्स, किदवई नगर पश्चिम, निकट दिल्ली हाट, नई दिल्ली-110023

महावीर प्रसाद द्विवेदी और ज्ञान की बुनियाद

डॉ. बागेश्वरी चक्रधर

इतिहास हमारे लिए जांचे-परखे तथ्यों का एक संकलित और संग्रहित रूप होता है। इतिहासकार को ये तथ्य दस्तावेजों, हस्तलेखों और जनश्रुतियां आदि से मिलते हैं। ई.एच. कार कहते हैं कि ''तथ्य मछुआरे की पटिया पर पड़ी मछलियों की तरह होते हैं। इतिहासकार उन्हें इकट्ठा करता है, घर ले जाता है, पकाता है और अपनी पसंद की शैली में परोस देता है।'' सर जार्ज क्लार्क ने भी इतिहास में 'तथ्यों की गुठली' से चारों ओर के 'विवादास्पद व्याख्या के गूदे' को अलग माना है। तथ्य की गुठली महत्त्वपूर्ण है या बाहरी गूदा। साहित्य के इतिहास लेखन में भी यह बात महत्त्वपूर्ण है। हिंदी में नवजागरण की गुठली को भारत यायावर द्वारा संपादित 'महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली' के प्रकाशन के बाद नया गूदा मिला। हम नए निष्कर्षों पर पहुंचे। कहा भी जाता है। कि तथ्य पवित्र है, मंतव्यों पर कोई बंधन नहीं होता।

यह वर्ष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की डेढ़ सौवीं जयंती का वर्ष है। गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर की डेढ़ सौवीं जयंती दो वर्ष पहले थी। गुरुदेव रवींद्र न केवल हिंदी साहित्य में बल्कि भारतीय वाङ्मय में आधुनिकता और नवजागरण के जनक माने जाते हैं। यही काल भारतेंदु हरिश्चंद्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का भी रचनाकाल है। जिस शब्द नवजागरण का हम आधुनिकता के संदर्भों में प्रयोग करते हैं उसका फलक लगभग डेढ़ सौ वर्ष का है। यह अवधि कम नहीं होती। इतने बड़े कालखंड में न जाने कितनी प्रवृत्तियां पनपती, काल के गाल में समाती, आगे बढ़ती, एक-दूसरे से टकराती हैं और परस्पर एक दूसरे को विकसित करती हैं। कई बार स्वतोव्याघातों की शिकार होने के कारण, पूर्ववर्ती को थोड़ा सा ही आगे ले जाने में समर्थ हो पाती हैं, लेकिन कुछ प्रवृत्तियां ऐसी होती हैं, जो हमें बहुत आगे तक ले जाती हैं और अपने अस्तित्व को प्रासंगिक बनाती हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आज उसी प्रकार हमारे साहित्य के लिए प्रासंगिक हैं जिस प्रकार गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर। रवींद्र नाथ टैगोर ने साहित्य की किस विधा में नहीं लिखा। नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, संगीत और चित्रकला, उन्होंने कला के प्रायः हर क्षेत्र को अपनाया। इसी प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी कला के हर क्षेत्र में अपना योगदान दिया। हम यदि आज आधुनिक साहित्य में नवजागरण की बुनियाद को खोजने चलेंगे तो हम दो महाविभूतियों को अनदेखा नहीं कर सकते। जिन्होंने न केवल साहित्यिक विधाओं के हर क्षेत्र में, बल्कि चिंतन के हर क्षेत्र में प्रयोग किए और आगे के लिए दिशा का निर्धारण किया। नवजागरण का प्रस्थान-बिंदु सामंतवादी जीवन-मूल्यों और कला-मूल्यों से आगे बढ़ने का देखा गया है। रीतिकालीन अंतर्वस्तु से हटकर हम जीवन के बहिर्जगत में आए। रीतिकालीन अंतर्वस्तु महलों के परकोटे तक सीमित थी। स्वामी के मन के संतोष की तलैया में डुबकी लगाने वाले सौंदर्य तत्व के दैहिक स्वरूप पर मोहित थी। शब्दों में जीवन का हाहाकार नहीं बल्कि घुंघरुओं की रुनझुन थी। वहां से निकलकर वह जन-जीवन तक आई। उसे अंग्रेज राज का सुख- साज तो दिखाई दे रहा था, पर धन का विदेश चला जाना बुरा लगने लगा था। अंग्रेज राज की 'अंधेर नगरी' में चौपट राजा का अंत भी दिखा दिया गया था कि वह सुरक्षित नहीं है। चौपट राजा का अंत, नवजागरण की अंतर्वस्तु के तौर पर, भारतेंदु हरिश्चंद्र के लेखन में लगभग डेढ़ सौ साल पहले ही दिखाया जा चुका था, जो संपन्न हुआ उन्नीस सौ सैंतालीस में।

चौंपट राजा चला गया। आधुनिक साहित्य की नवजागरण जन्य अंतर्वस्तु में जो पहली प्रवृत्ति दिखती है, वह है उन शक्तियों से लड़ना जो कि समाज और मनुष्य के विरुद्ध हैं। साम्राज्यवाद विरोधी चेतना अचानक ही नहीं आई, उसके विकास की बुनियाद में न जाने कितने सुधार आंदोलन रहे हैं। अंतर्वस्तु के निर्माण में राजा राममोहन राय, थियोसॉफिकल सोसायटी और प्रमुख रूप से गांधी जी का योगदान रहा है। क्रांति के तरीके भी अपनाए गए और अहिंसा के भी। यह सत्ता-विरोध नवजागरण की अंतर्वस्तु का पहला तत्व है, जिसका प्रतिफलन समकालीन साहित्य में भी दिखाई देता है।

मानव इतिहास बताता है कि अंतर्वस्तु के अंतर्तत्व समान रहते हैं लेकिन समय के साथ उनमें विषयवैविध्य आता जाता है। भूमंडलीकरण के बाद अंतर्वस्तुओं में परिवर्तन हुआ है। आज जो लिखा जा रहा है उसको ग्लोबल आधारों पर ही विवेचित किया जाना चाहिए। पिछले बीस वर्ष में साहित्य की अंतर्वस्तु समाजोन्मुखी अधिक रही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

साहित्यालोचन का इतिहासलेखन हमें अंतर्वस्तुओं की विकास-यात्रा से परिचित

कराता है। उसमें भी साहित्यालोचन का सैद्धांतिक पक्ष उतना मददगार नहीं होता जितना व्यावहारिक पक्ष। नवचेतना की अंतर्वस्तु जानने के लिए व्यावहारिक आलोचना हमारी अधिक मदद करती है। सैद्धांतिक आलोचना बताती है कि अब तक की अंतर्वस्तुओं को कैसे प्रस्तुत किया जाना चाहिए और व्यावहारिक आलोचना बताती है कि साहित्य की अंतर्वस्तु में किसी विशेष कालखंड में क्या हुआ और इन दिनों क्या चल रहा है। आधुनिक काल के हिंदी साहित्य में नवजागरण की अंतर्वस्तु को देखना चाहें और व्यावहारिक समीक्षा से मदद लें तो पता चलेगा कि ज्ञान की मजबूत बुनियाद रखने का कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया।

हर युग के साहित्य पर इस युग के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक अंतविरोधों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। नई-नई वैचारिक सामाजिक उत्क्रांतियों के उदित होने पर प्राचीन परंपराएं दम तोड़ती दिखाई देती हैं। इन नवोदित और आधुनिक प्रवृत्तियों का वस्तुगत विश्लेषण उनके ऐतिहासिक विकास की पड़ताल के बिना संभव नहीं हो सकता। कहना न होगा कि आधुनिक विधाओं के विचार की पीठिका के नीचे देश की सांस्कृतिक, राजनीतिक, जातीय विचारधाराओं और मान्यताओं के अविरल पारंपरिक स्रोत तह-दर-तह छिपे होते हैं। परंपरा की लंबी ऐतिहासिक अंतर्धाराओं का उत्खनन और उनकी सही जानकारी ही वास्तविक अर्थों में विश्लेषण को वस्तुगत बना सकती है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा दिए गए नारे—'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' की प्रेरणा बरकरार थी लेकिन उस दौर में अंग्रेजी साहित्य को जाने बिना हिंदी में नवजागरण एवं परिपक्वता लाना संभव नहीं था। अंग्रेजी साहित्य के विषय में द्विवेदी जी एवं उनके समकालीन लेखकों की व्यावहारिक समीक्षात्मक टिप्पणियों ने हिंदी प्रेमियों का बहुत भला किया।

संक्रमण के इस दौर में जो साहित्यिक मनीषी अपने गौरवशाली अतीत के प्रति अत्याधिक श्रद्धावनत थे एवं नवनवीन ज्ञान राशि का संचित कोष बढ़ाने को उत्सुक थे, उनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान रेखांकन योग्य है।

भीतर की उड़ान को समझने के लिए आवश्यक है कि कवि की जीवन दृष्टि और जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण जाना जाए। उसके चिंतन, दर्शन और जीवन-सिद्धांतों को समझा जाए कि वे भाववादी हैं या वस्तुवादी, अंतर्मुखी हैं या बहुर्मुखी, जीवन के व्यापक हाहाकार से विचलित होते हैं या उससे निरपेक्ष करते हैं।

द्विवेदीयुगीन दृष्टि ज्ञान राशि के संचित कोश को लेकर विकसित हुई। उनके समकालीन लेखकों ने विषयवस्तु के लिए ज्ञान को बढ़ाने पर सर्वाधिक बल दिया। ज्ञान को बढ़ाने का बल आज हमें ग्लोबल युग में भी दिखाई दे रहा है। अब से एक सौ दस साल पहले महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की चेतना थी कि हमारे बच्चों को बहुज्ञ होना चाहिए, उन्हें विज्ञान के और ज्ञान के हर क्षेत्र का बोध होना चाहिए। आज हम देखते हैं कि इंटरनेट के युग में हमारी ज्ञान राशि का संचित कोश तेज गति से बढ़ता जा रहा है। आप किसी भी विषय पर कुछ जानना चाहें तो गूगल सर्च में चले जाइए। विकीपीडिया पर चले जाइए। इन दिनों इंटरनेट हमारी अंतर्वस्तुओं को एकत्रित करने, उनमें इच्छानुकूल विषयवस्तु निकालने का एक मुख्य स्रोत बना हुआ है।

लेकिन एक चीज हुई है जिसे नकारात्मक कहा जा सकता है कि इन सारे परिदृश्यों को देखते हुए, हमारे शोध की जो संपूर्ण प्रवृत्ति थी वह गायब हो गई है। अब हम आश्रित हो गए हैं दूसरों के द्वारा संचित ज्ञान पर। पहले कोई भी शोध करता था तो वह ज्ञान प्राप्ति के लिए पुस्तकालयों के पीछे भागता था, अनुभवी व्यक्तियों के पीछे भागता था। आमने-सामने बैठकर वह वांछित सामग्री को निकालना चाहता था, आज वह इतना निश्चिंत है कि उसे न तो किसी का साक्षात्कार करना है, न कोई पुस्तक पढ़नी है और न पुस्तकालय छानना है। अपने लैपटॉप पर बैठे-बैठे वह गूगल सर्च से तथ्य निकाल कर संतुष्ट हो लेता है। अभी साहित्य से जुड़ी पर्याप्त सामग्री नेट पर उपलब्ध नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि नेट पर साहित्य का भंडार तीव्र गति से विकसित हो। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा ने हिंदी कविता समय नाम का पोर्टल बनाया है। ललित कुमार ने कविता कोश, पूर्णिमा बर्मन ने अनुभूति और अभिव्यक्ति पर हमें विविध प्रकार की सामग्री उपलब्ध कराई है। हिंदी विकीपीडिया पर भी सामग्री मिलती है, लेकिन वह समग्र तो नहीं है। संभव है आगे आने वाले पांच-सात साल में हम इंटरनेट पर सारा साहित्य उपलब्ध कर सकें। न केवल डेढ़ सौ साल का साहित्य, बल्कि हिंदी साहित्य की डेढ़ हजार साल पुरानी परंपरा का सारा का सारा साहित्य उपलब्ध हो, तब हम नवजागरण के साथ अपनी आज की अंतर्वस्तु का अतीत की तुलना में आकलन कर सकेंगे।

इतना तय है कि साहित्य की अंतर्वस्तु मानवता है। कलाओं में उसी के विभिन्न फलक हमें दिखाई देते हैं। जब-जब अंतर्वस्तु मानव विरोधी होने लगती है, तब-तब साहित्य नकारात्मक जीवन-मूल्यों की ओर उन्मुख होने लगता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मानवता को ज्ञान से लबरेज करना चाहते थे।

जे–116, सरिता विहार,
नई दिल्ली–110076

महान लेखक ही नहीं महामानव भी थे द्विवेदी जी

डॉ. पुष्पा सक्सेना

अपने कृत्तित्व की तरह ही महिमामय व्यक्तित्व के स्वामी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपनी हिंदी–सेवाओं के कारण युग-प्रवर्तक कहलाए, हिंदी के विकास और उन्नयन में उनके अविस्मरणीय योगदान के कारण हिंदी-साहित्य का दूसरा युग द्विवेदी युग कहलाया। वह एक उच्च कोटि के निबंधकार, आलोचक, अनुवादक, संपादक के रूप में सदैव स्मरणीय और आदरणीय हैं।

हिंदी के महावीर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 में रायबरेली के एक गांव दौलतपुर में हुआ था। धनाभाव के कारण उनकी शिक्षा अधिक नहीं हो सकी। उन्हें रेलवे में नौकरी करनी पड़ी, पर उनकी ज्ञान पिपासा सदैव कुछ अध्ययन करते रहने को प्रेरित करती रही। नौकरी करते हुए भी उन्होंने हिंदी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, संस्कृत का अध्ययन किया था। इसी समय द्विवेदी जी के संस्कृत ग्रंथों के कई अनुवाद तथा कुछ आलोचनाएं प्रकाश में आ चुकी थीं। एक अंग्रेज अधिकारी के साथ विवाद होने के कारण स्वाभिमानी महावीर प्रसाद जी ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। वर्ष 1903 से उन्होंने सरस्वती पत्रिका का कार्य-भार संभाला और सत्रह वर्षों तक सफलतापूर्वक उसका संपादन करते रहे। निःसंदेह सरस्वती नव युग का संदेश लेकर आई थी। सन् 1888 में उनकी प्रथम रचना प्रकाशित हुई और उसके बाद सन् 1930 तक उनका लेखन अविराम गति से चलता रहा।

सरस्वती के संपादन के लिए द्विवेदी जी ने कानपुर के पास जुही को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। माधोराम बाथम जी ने जुही का वर्णन करते हुए कहा है, दूर-दूर से आने वाले लेखकों के लिए जुही तीर्थ बन गया था। उस समय द्विवेदी जी के पास आने वालों में गणेश शंकर विद्यार्थी, शिवनारायण मिश्र, हरिभाऊ उपाध्याय, बालकृष्ण शर्मा आर्य, मैथिली शरण गुप्त, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि थे। देश के हर कोने से हिंदी के कवि, लेखक उनसे मिलने आते थे। जुही के वीरान मैदान में जंगल में मंगल का सा दृश्य था। आज उस जुही की आबादी बीस हजार से भी अधिक है, पर अब वह रौनक नहीं रही।

महावीर द्विवेदी जी की तरह सरस्वती को भी एक संस्थान कहा जा सकता है जिसके द्वारा द्विवेदी जी ने लेखकों को गद्य शैली से परिचित कराया तथा उनकी भाषा परिमार्जित की। उन्होंने सरस्वती को निर्दोषपूर्ण एवं नियमित बनाया। अपने लेखन द्वारा हिंदी गद्य की अनेक विधाओं को समुन्नत किया। हिंदी गद्य के रूप को व्याकरण सम्मत बनाने तथा आधुनिक भाषा को हिंदी काव्य का माध्यम बनाने के लिए द्विवेदी जी का महती योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। समस्त हिंदी प्रेमी द्विवेदी जी का स्मरण प्रेम, आदर और कृतज्ञता से करते हैं।

सरल व्यक्तित्व के स्वामी और प्रतिभाशाली मेधा वाले द्विवेदी जी के पहनावे और व्यक्तित्व में देहाती सरलता की झलक होती थी। वह बड़ी सीधी प्रकृति और स्वभाव के व्यक्ति थे। धोती, कमीज, कोट, टोपी उनका पहनावा था। जो भी उनके संपर्क में आता वह उनकी प्रतिभा और उदारता का कायल हो जाता। उनके चरित्र में सात्विकता, आस्तिकता, कर्तव्यपरायणता, न्यायप्रियता, परहित कातरता और लोकहित का अद्‌भुत समावेश था। ब्राह्मण होते हुए भी, उनके मन में जातिगत भेदभाव नहीं था। वह अछूतों के प्रति प्रेम तथा दया भाव रखते थे, देवीदत्त शुक्ल जी ने द्विवेदी जी के विषय में कुछ बातें बताते हुए लिखा है, एक बार दौलतपुर गांव में मलेरिया का प्रकोप था। देवीदत्त जी के भाई वैद्य थे। देवीदत्त जी आचार्य से मिलने जब दौलतपुर पहुंच तो अपने साथ मलेरिया के इलाज के लिए दवाइयां भी ले गए थे। इस बात से द्विवेदी जी बहुत प्रसन्न हुए। वह उन्हें अपने साथ एक बीमार अछूत के घर ले गए और देवीदत्त जी से उसको दवा दिलवाई तथा उस रोगी को शीघ्र ठीक हो जाने का विश्वास दिलाया और सच्च मन से उसे सांत्वना भी दी।

द्विवेदी जी के मीठे और स्नेही स्वभाव के कारण सब उनको आदर और प्यार करते थे। छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित सबके साथ वह समान व्यवहार रखते थे। घर के बच्चों को वह पढ़ाया करते, उन्हें साफ रहने की शिक्षा देते, गलती करने पर उन्हें डांटते थे और उनके मनोरंजन के लिए अपने ग्रामोफोन पर गाने सुनने की इजाजत भी देते थे।

भारतीय परंपरा का निर्वाह करने वाले द्विवेदी जी अतिथि सत्कार किस सीमा तक निभाते थे। इस संबंध में देवीदत्त जी ने बताया, जब वह आचार्य जी के घर भोजन करने बैठे तो द्विवेदी जी अपने अंगोछे से उन पर हवा करने लगे, देवीदत्त के संकोच पर हवा करनी बंद की, अन्य गुणों के साथ द्विवेदी जी को झूठ

किसी भी कीमत पर सहन नहीं होता था। वह सच्चाई में विश्वास करते थे। सफाई उन्हें बहुत प्रिय थी, स्वयं तो साफ वस्त्र पहनते ही थे, उनका घर-प्रांगण भी चमकता था। कहीं पर पत्ता तक नहीं दिखता था। अपनी कोई सन्तान न होने पर भी उनका घर आत्मीय जनों से भरा रहता, दूर के रिश्तेदार भी उनके परिवार में घर के सदस्यों की तरह से उनका स्नेह पाते। शायद इसी कारण लोग उन्हें साधारण मानव के स्थान पर देव पुरुष की संज्ञा देते थे।

भाषा की उन्नति की तरह ही वह समाज की भी उन्नति चाहते थे। वह परम स्वदेश भक्त तथा स्वदेशी के प्रेमी थे। यद्यपि वह राजनीति में नहीं थे तथापि दूसरों के द्वारा राजनीतिक कार्य भी किया करते थे। प्रांतीय विधान-सभा में वह अनेकों महत्त्वपूर्ण प्रश्न पुछवाते रहते थे। गांव में अधिक समय तक रहने के कारण द्विवेदी जी ने गांव वालों की सुविधा के लिए भी बहुत से कार्य किए, वह गांव के सरपंच थे। गांव में पाठशाला तथा डाकघर तो खुल चुके थे, पर अस्पताल का अभाव था। इस कमी को वह स्वयं दवा बांट कर पूरा करते थे। अपने गांव में मुंसिफ की अदालत की स्थापना का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया। इस तरह वह साहित्य-सेवा के साथ समाज-सेवा भी निरंतर करते रहे।

भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि भाषा की सुरक्षा की ओर नहीं थी। भाषा न तो व्याकरण सम्मत थी न विराम आदि चिह्नों पर ध्यान दिया जाता था। भाषा में अनेकों त्रुटियां होती थी। उस समय इंशा उल्ला खान की भाषा इस प्रकार थी, ''एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कही कि जिसमें हिंदी को छुट और किसी बोली को पुट न मिले''।

''इनकी भाषा की अपेक्षा लल्लू जी लाल के 'प्रेमसागर' में कुछ गंभीरता दिखती है। पंडित सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान्' के अनुवाद में चाटुकारिता के साथ भाषा में त्रुटियां हैं। मुंशी सदासुखराय ने इन लेखकों से अलग परिष्कृत तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। उस समय की भाषा में आशा किया या निराश हुआ, जैसी बहुत सी भाषाई त्रुटियां सामान्य थी। गद्य के विकास में इन प्रारंभिक लेखकों के बाद राजा शिवा प्रसाद सितारे हिंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, और राजा लक्ष्मण सिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी जी ने भाषा में विद्यमान इन त्रुटियों को शुद्ध करने का संकल्प लिया।''

द्विवेदी जी सरल और सुबोध भाषा के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं सरल प्रचलित भाषा अपनाई, जिसमें ना तो संस्कृत के तत्सम शब्द थे ना ही उर्दू-फारसी के अप्रचलित शब्दों की भरमार थी। गृह के स्थान पर घर, उच्च की जगह ऊंचा का प्रयोग, इस सत्य के उदाहरण हैं, वैसे उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने में उन्होंने संकोच नहीं किया। उनका मानना था, भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे सब आसानी से समझ सकें, उनका कहना था यदि बोलने में व्याकरण के नियमों का पूर्णतः पालन न भी किया जाए तो वह अधिक आलोचना का विषय नहीं हैं, पर लिखने में भाषा व्याकरण के नियमों के अनुसार होनी आवश्यक है। द्विवेदी जी ने अनुभव किया हिंदी के लिए कोई उपयुक्त व्याकरण नहीं है, जो सर्वमान्य हो। लेखकों की सुविधा के लिए द्विवेदी जी ने व्याकरण और वर्तनी के नियम सुनिश्चित किए।

द्विवेदी जी कहना था कि संस्कृत की रचना व्याकरण के अनुसार होती है अतः वह निर्दोष बनी रही और जीवित रही। द्विवेदी जी स्वयं संस्कृत काव्य के भी प्रेमी थे। उन्हें नैषध महाकाव्य, रामचरितमानस तथा ब्रजविलास तक कंठस्थ थे, पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ आचार्य द्विवेदी जी से मिलने की बात बताते हुए द्विवेदी जी के विषय में कहा है ''द्विवेदी जी भी संस्कृत काव्य के मर्मज्ञ थे। उन्हें संस्कृत के बहुत श्लोक कंठस्थ थे। अपनी स्मृति से कुछ श्लोक उस समय उन्होंने सुनाए। श्लोक वह गान के स्वर में नहीं परंतु ओजपूर्ण लय के साथ पढ़ते थे और उनके पढ़ने से यह जान पड़ता था कि वह उसके रस में कितना भीगे हुए हैं।''

द्विवेदी जी ने देखा उस समय बहुत से लेखक लिख तो रहे थे, पर उनकी रचनाओं के परिमार्जन की आवश्यकता थी। हिंदी भाषा के सरोवर को शुद्ध करना आवश्यक था। एक ओर सरस्वती के माध्यम से उन्होंने अपने आलेखों, आलोचनाओं, कविताओं द्वारा खड़ी बोली के परिष्कृत तथा व्याकरण सम्मत रूप को प्रस्तुत किया वही दूसरी ओर हिंदी के छोटे बड़े लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित करके उनकी कृतियों का संशोधन किया और उन्हें स्पष्ट और रचनात्मक सुझाव दिए। लेखकों का ध्यान अशुद्धियों की ओर आकृष्ट करके उन्हें शुद्ध तथा परिमार्जित भाषा लिखने की प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ने अनेक नवयुवक लेखकों को शुद्ध भाषा में लिखना सिखाया।

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ पाठकों की रुचि परिष्कृत करने तथा ज्ञान वर्द्धन के लिए द्विवेदी जी ने अनेकों विषयों पर निबंध लिखे। विषयगत दृष्टि से उनके निबंध आठ भागों में विभक्त किए जा सकते हैं, साहित्य संबंधी, जीवन चरित्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योग, भाषा-शिल्प, अध्यात्म-आलोचनात्मक निबंधों में उन्होंने संस्कृत टीकाकारों की तरह कृतियों के गुण-दोषों का विवेचन किया। उनके लेखन में भाषा सदैव व्याकरण सम्मत रही वाक्य विन्यास नितांत हिंदी के अनुरूप हैं, उसमें अंग्रेजी या उर्दू का प्रभाव नहीं है, द्विवेदी जी ने अस्सी से अधिक ग्रंथों की रचना की इसमें मौलिक गद्य-पद्य ग्रंथों के अतिरिक्त अनूदित ग्रंथ, समालोचना संपादित ग्रंथ तथा हिंदी भाषा की उत्पत्ति संबंधी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

द्विवेदी जी की मौलिक रचनाओं में तीन प्रकार की शैलियां मिलती हैं। नए विषयों से परिचित कराने में सरल सुबोध शैली अपनाई है। शिक्षक की भांति एक बात को बार-बार दोहरा कर समझाने की कोशिश करते हैं ताकि बात ठीक से समझी जा सके। वह कठिन से

कठिन विषय को सरल बना देते थे।

हिंदी भाषा के दोषों को दूर करने के लिए उन्होंने आलोचनात्मक शैली अपनाई। हिंदी का रूप निखारने तथा उसे व्याकरण सम्मत बनाने के प्रयास में उन्हें सम सामयिक कई लेखकों के साथ वाद-विवाद भी करना पड़ा। बाबू बालमुकुंद गुप्त, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी तथा ऐसे ही कई विद्वानों से उन्हें टक्कर लेनी पड़ी। इन सभी विवादों में द्विवेदी जी के विचारों की स्पष्टता, हिंदी के हित के प्रति उनके मनोभावों के कारण उनके बीच कभी व्यक्तिगत कटुता नहीं आ सकी। आलोचना करते समय कभी-कभी उनकी शैली व्यंग्यात्मक हो जाती है। ऐसे अवसरों में सरल वाक्यों की भाषा में हास्य का पुट झलकता है। उनके समय में हिंदी तथा संस्कृत कवियों पर आलोचनात्मक निबंध भी लिखे गए। आलोचक के रूप में द्विवेदी जी ने उपादेयता, लोकहित, उद्देश्य की गंभीरता, शैली की नवीनता और निर्दोषिता को उत्कृष्टता के रूप में प्रतिष्ठित किया।

गंभीर साहित्यिक विषयों के विवेचन के लिए द्विवेदी जी ने विचारात्मक शैली अपनाई है। विवादग्रस्त विषय को जनमानस को समझाने की दृष्टि से सरल भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते थे। विद्वानों को संबोधित करने वाले लेखों में वाक्य अपेक्षाकृत लंबे होते थे तथा भाषा कुछ क्लिष्ट होती थी। वस्तुतः उन्होंने अपने द्वारा हिंदी गद्य की अनेक विधाओं का विकास और मार्ग-दर्शन किया नए विषयों से हिंदी-साहित्य को समृद्ध करने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

हिंदी गद्य के विकास में द्विवेदी जी ने जो कार्य किया उसके विषय में शैली की तीन विशेषताओं, अर्थात् वैयक्तिकता, ऐतिहासिकता और शास्त्रीय उपस्थापन की दृष्टि से द्विवेदी जी की समीक्षा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उन्हें एक '**आचार्य और आश्चर्यजनक अवतारी पुरुष**' कहा तथा हजारी प्रसाद जी ने लिखा—''दो बातें स्पष्ट ही समझ में आ जाती हैं, पहली यह कि एक आदमी नख से शिख तक ईमानदार है। वह ऐसी एक भी पंक्ति जो दूसरे ने लिखी हो, अपने नाम से नहीं चलाना चाहता... वह अकेला प्रवाह के विरुद्ध निश्चल खड़ा है। दूसरी बात यह कि ज्ञान के प्रचार को पूजा की बुद्धि से ग्रहण किया है। उसमें उसने आत्म शुद्धि के साथ ही मन्दिर की सफाई की ओर भी ध्यान दिया है। जो कुछ भी सड़ा-गला है, कूड़ा कर्कट है, उसे वह सह नहीं सकता, इस विषय में वह निर्भय और कठोर हैं।''

आगे हजारी प्रसाद जी लिखते हैं—''उस युग (द्विवेदी युग) के अन्यान्य साहित्यिक महारथियों की महिमा को संपूर्ण स्वीकार करते हुए भी निःसंकोच कह सकते हैं कि भाषा को युगोचित, उच्छवासहीन, स्पष्टवादी और वाक्तव्य अर्थ के प्रति ईमानदारी बना कर जो काम द्विवेदी जी कर गए वही उन्हें हिंदी साहित्य में अद्वितीय स्थान का अधिकारी बनाता है।''

प्राचीनता की उपेक्षा न करते हुए उन्होंने नवीनता को प्रश्रय दिया। 'भारत भारती' के प्रकाशन पर लिखा था, ''यह काव्य वर्तमान हिंदी साहित्य में युगांतर उत्पन्न करने वाला है।'' द्विवेदी जी ने अनंत आकाश और पृथ्वी को काव्य के विषय घोषित करके इस युगांतर की घोषणा की थी।

खड़ी बोली को कविता का माध्यम बनाने के महत्त्वपूर्ण कार्य का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को ही जाता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के कवि उन्हीं की प्रेरणा के परिणाम हैं, राष्ट्र कवि मैथिलीशरण की कविताओं को निखारने में भी द्विवेदी जी का महत्त्वपूर्ण योगदान था। गुप्त जी की कविताओं में संशोधन करके वह उन्हें उपयोगी सुझाव देते रहे। गुप्त जी ने द्विवेदी जी को अपना गुरु माना है। एक पत्र में द्विवेदी जी ने गुप्त जी को लिखा है। ''भाषा सरल हो, भाव सार्वजनिक और सार्वकालिक हों, काव्य ऐसा होना चाहिए जो सबके मनोविकारों को उत्तेजित करें ऐसी ही कविता अमर होती है।''

स्वयं गुप्त जी ने लिखा है, सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजी गई उनकी कविता ब्रजभाषा में थी। द्विवेदी जी ने कविता प्रकाशित न करने का कारण एक पत्र द्वारा दिया था ''आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गई है, सरस्वती में हम बोलचाल की भाषा में ही लिखी गई कविताएं छापना पसंद करते हैं।'' कालांतर में गुप्त जी की एक कविता 'हेमंत' शीर्षक से सरस्वती में प्रकाशित हुई। गुप्त जी की प्रसन्नता का अंत नहीं था। कविता पढ़ने पर उनकी प्रसन्नता आश्चर्य में बदल गई। गुप्त जी लिखते हैं ''कविता में इतना अधिक संशोधन और परिवर्द्धन हुआ था कि वह मेरी रचना ही नहीं कही जा सकती थी। कहां वह कंकाल और कहां यह मूर्ति?'' आगे द्विवेदी जी की महानता इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं ''मुझे अपनी हीनता पर लज्जा आई और पंडित जी की उदारता देख कर श्रद्धा से मेरा मस्तक झुक गया।'' गुप्त जी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि आचार्य जी की कृपा से ''मुझे बोलचाल की भाषा में पद्य रचने का गुर मिल गया।'' निःसंदेह आचार्य द्विवेदी जी एक महान लेखक ही नहीं थे, वह एक महा मानव थे।

भारतेंदु युग में रोपा गया हिंदी भाषा का बिरवा द्विवेदी जी की सेवा, संकल्प के कारण एक पुष्पित पल्लवित वृक्ष-रूप में विकसित हो रहा था। इस वृक्ष को विभिन्न दिशाओं में अपनी शाखाएं फैलाते देखने का उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था, शायद इसीलिए सन् 1938 में उन्होंने इस संसार से विदा ले ली। चिर स्मरणीय आचार्य द्विवेदी जी को समस्त हिंदी प्रेमियों का शत-शत प्रणाम।

13819 NE 37 TH PL
Bellevue, WA 98005, USA

युगांतकारी हरफनामों के लेखक

डॉ. सुश्री सुशील गुप्ता

''साहित्य, भाषा जागरण के अग्रदूत
अवध के दौलतपुर में जन्मे...
बहती रही गंगा जहां से...
उसकी लहरों के उजास से पा सान्निध्य
संचित किए नव-आस्था जागरण के गीत
पाए वहीं से संस्कार संस्कृति के
तभी तो लड़ पाए अपनी पैत्रिक गरीबी से
गरीबी थी जरूर, न बनी कभी वो मजबूरी
लड़े, ... पहुंचे अपने संचित मुकाम पर
लगन ने दे डाले उन्हें ऊंचाइयों के उपहार
हिंदी, मराठी, गुजराती भाषाओं के रहे ज्ञानदार
सौंप गए हमें संचित साहित्य के संस्कार...
जिसे पाकर बन गया शिष्य हिंदी-संसार।''

हिंदी-साहित्य जगत में असंख्य रचनाकारों में से कुछ ही अप्रतिम प्रतिभा संपन्न होते हैं, जिसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी अग्रणीय हैं। अपनी समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, दार्शनिक, वैज्ञानिक बोध भरी वैचारिक शिक्षा-नीतियों के कारण 'युग प्रवर्तक आचार्य' कहलाए। 19वीं शताब्दी के अंत वे 20वी शताब्दी के सवाए वर्षों में द्विवेदी जी ने साहित्य को नए मूल्य, नई दिशा में प्रदान कर साहित्य को जिस मुकाम पर पहुंचाया वह अविस्मरणीय है। आचार्य के प्रयत्न से भाषा, साहित्य के प्रति नवजागरण की भावना और स्वाधीनता विषयक चिंतन आगे बढ़ा। द्विवेदी जी का समग्र चिंतन नव-जागरण से संबंधित है।

वस्तुतः हिंदी-साहित्य व हिंदी-भाषी जनता की विचारधाराओं का नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से होता है, जिस संग्राम का मुख्य उद्देश्य भारत को विदेशी शासकों से मुक्त करवाना था। 1857 की क्रांति के बाद भारतेंदु-युग है, फिर द्विवेदी-युग। इस युग की पहचान तभी संभव है, जब हम उनका संबंध 1857 के संग्राम और भारतेंदु-युग से पहचनानेंगे। द्विवेदी जी केवल भाषा के परिष्कारक नहीं थे, उनका लेखन प्राचीन रूढ़िवाद के लिए एक चुनौती था। उनके मौलिक चिंतन और लेखन का सामाजिक महत्त्व असंदिग्ध है। इस दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है कि भारतेंदु-युग में पुरानी व्यवस्था को बदलने की मांग द्विवेदी-युग में व्यापक बन जाती है। इसीलिए उन्हें अपने युग का 'क्रांतिकारी लेखक-योद्धा' कहा जा सकता है। जिस क्षण से उन्होंने अपनी युगीन परिस्थितियों के विषय में चिंतन-मनन आरंभ किया, कभी खाली नहीं बैठे। कभी स्वयं साहित्य साधना में लीन हैं, तो कभी साहित्य-साधकों को दिशा-निर्देश देने में तल्लीन। तभी तो पुस्तकों में व्याकरण और भाषा की अशुद्धियों को लेखक वर्ग को दिखाकर उन्हें सावधान किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस संबंध में मानते हैं कि द्विवेदी जी के इस शुद्ध प्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा, जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी। डॉ. रामविलास शर्मा ने भी इनके द्वारा किए गए भाषागत कार्य की ऐतिहासिक स्थापना की।

द्विवेदी जी प्रगतिशील हैं। इनके कृतित्व के क्षेत्र व्यापक हैं। राजनीति, अर्थशास्त्र, आधुनिक विज्ञान, इतिहास और समाज-शास्त्र के साथ प्राचीन दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। साहित्य-कला-अनुवाद सभी क्षेत्रों में इनका कार्य अविस्मरणीय है। द्विवेदी जी का रचना-भंडार रघुवंश, कुमार संभवसार, हिंदी-महाभारत, बेकल विचार रत्नावली, स्वाधीनता, संपत्ति शास्त्र है।

अर्थशास्त्र का अध्ययन उनके साहित्यिक जीवन के आरंभ का प्रथम क्षेत्र था। सन् 1908 में छपी यह पुस्तक इस बात की पुष्टि करती है, जिसमें उन्होंने साहित्य के साथ अर्थशास्त्र का अध्ययन किया है। 'संपत्तिशास्त्र' में जिज्ञासुओं को साम्राज्यवाद की भूमिका समझने हेतु ज्ञान का भंडार है। इस पुस्तक का मूल उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दिनों में भारतीय अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन करना है।

अंग्रेजों ने भारत में ही भारत का व्यापार खत्म कर अपना अधिकार जमा लिया तथा भारत में साम्राज्यवादी व्यवस्था की नींव रख उसे इतना व्यापक, विस्तृत रूप दे दिया कि भारत का अर्थतंत्र डांवाडोल हो उठा। समस्त मेहनतकश वर्ग किसान, मजदूर भूखों मरने लगा। सब-कुछ अस्त-व्यस्त ही नहीं नष्टप्रायः सा हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों द्वारा इन्हीं मेहनतकश लोगों का धन खर्च किया गया। द्विवेदी जी का बहुमूल्य ग्रंथ 'संपत्तिशास्त्र' इसी घोर व्यथा का ऐतिहासिक सत्य ही नहीं, एक मजबूत सत्यापित प्रमाण-पत्र है।

द्विवेदी जी सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए उपयुक्त लेखक सिद्ध होते हैं, क्योंकि वे देश में घटित राजनैतिक, सामाजिक घटनाओं के प्रति सचेत थे। वे साहित्यिक मूल्यों के लिए दृढ़-निश्चयी थे। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का विचार है—साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने तय कर लिया था कि हिंदी-गद्य का विकास करना है, आधुनिक हिंदी को विविध विषयों के विवेचन का माध्यम बनाना है, कविता में ब्रज-भाषा की जगह खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करना है..., लगभग 20 वर्ष तक एकाग्र मन से इस निश्चित उद्देश्य की सिद्धि में लगे रहे और उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने भारत में भाषा-समस्या पर यानि भारत में अंग्रेजी भाषा की

स्थिति, हिंदी-उर्दू की समानता और आपसी भेद, हिंदी और जनपदीय उपभाषाओं के संबंध आदि समस्याओं पर बहुत गहराई से विचार किया है। द्विवेदी जी के कृतित्व की उपयोगिता और सार्थकता के लिए उनके भाषा की इतिवृत्तात्मकता और परिष्कार—ये दोनों रूप ही पूरे नहीं। ऐसा करने से तो उनके संपूर्ण कृत्तित्व के प्रति न्याय नहीं होगा। वस्तुतः आचार्य-युग का साहित्य इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक साहित्य नहीं, वह अनेक स्तरों पर व्यापक अर्थ प्रदान करने वाला साहित्य है।

द्विवेदी जी ने अपने साहित्य-रचनाओं में कई बातों पर ध्यान केंद्रित करवाया है। यथा—भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा किसानों का शोषण और बढ़ती हुई निर्धनता के विषय में, रूढ़िवाद से संघर्ष तथा वैज्ञानिक चेतना का विस्तार, भाषा-समस्या पर, साहित्य संबंधी आलोचना व साहित्य की विशेषताओं पर।

द्विवेदी जी ने बराबर उस पर भी ध्यान केंद्रित करवाया है कि अंग्रेजी शासन ने अपनी हूकूमत के बल पर देश की पुरानी व्यवस्था बदल कर भारतीय किसानों की जमीन पर अपने अधिकार जमा लिए तथा सामंती ढंग से भारतीय किसानों का शोषण किया। देश के शोषण में पूंजीपतियों का हाथ नहीं था, क्योंकि पूंजीवाद की विशेषता है कि हर वस्तु के क्रय-विक्रय की भांति जमीन का भी क्रय-विक्रय कर उस पर अपनी व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार स्थापित करना, न कि अपना स्वामित्व स्थापित करना। जमीन पर स्वामित्व स्थापित करना तो नए सामंतवाद की देन है। यानि अंग्रेजों के आने से पहले, भारत में जमीन जोतने वाले को बहुत से अधिकार प्राप्त थे, जिन्हें नए सामंतवाद द्वारा छीन लिया गया। परिणामतः किसानों की आजीविका के साधन नहीं रहे। उनकी दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती गई। यही नहीं अंग्रेज किसानों से मनचाहा कर वसूलने लगे। अंग्रेजी राज ने भारत के पूरे अर्थतंत्र में ही परिवर्तन कर दिए। इन्होंने 'संपत्तिशास्त्र' में बताया है कि भारत में राजा किसान से कर के रूप में पैदावार का केवल कुछ हिस्सा लेता था न कि लगान। लगान वह लेता है जो किसान की जमीन पर पूर्णतः कब्जा कर चुका है। अंग्रेजों ने यही किया है और यह करके उन्होंने केवल किसानों से जमीन ही नहीं छीनी, उनसे उनके जीवन जीने का मकसद ही छीन लिया। द्विवेदी जी मानते हैं कि भारत दुर्दशा, दरिद्रता का कारण मुख्यतः अंग्रेजी-राज है। उन्होंने भारत को ही नहीं भारत के व्यापार को भी अपने आधीन बनाया था। इस साम्राज्यवाद सामंतवादी विरोधी भूमिका का व्यापक वर्णन 'संपत्तिशास्त्र' में करते हैं।

भारत में नए सामंतवाद के प्रसार के कारण भारत की व्यापार-मंडिया नष्ट हो गईं। उनकी व्यापार नीति का विस्तार होने के कारण, अंग्रेजों ने भारतीय व्यवसाइयों को अपना हिस्सेदार बना लिया वो भी सीमित दर पर। तभी भारत में मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। मजदूरों द्वारा कल-कारखानों में निरंतर कार्यरत रहने से उद्योगीकरण बढ़ा। द्विवेदी जी इस आधार पर देश की प्रगति मानते थे पर इस प्रगति के लिए वे मजदूरों के संगठन पर बल देते थे, क्योंकि मजदूर लोग अशिक्षित होने के कारण कायदे-कानून से परिचित नहीं होते। निर्धन होते हैं। अपने वाज़िब हकों को पाने के लिए पूंजी वालों से लड़ नहीं सकते। क्योंकि झगड़ने के बाद यदि पूंजी वालों ने उनसे काम छुड़वा लिया तो वे भूखों मर जायेंगे। किंतु यदि ये वर्ग एकजुट हो जाए तो इनका प्रतिनिधि इन सबके हक के लिए लड़ सकेगा; समिति-अध्यक्ष इनके महत्त्व को बढ़ाने के साथ-साथ इनके काम के घंटे भी कम करवाने की कोशिश करेगा।

अंग्रेजी राज के दौरान द्विवेदी जी का यह उपजा विचार आज भी सामयिक है, प्रासंगिक है। उस दौरान भी पूंजीपति वर्ग व मजदूर वर्ग में टक्कर थी, आज भी है। मजदूर तब भी और आज भी अपने अधिकारों के लिए हड़ताल करने के पक्ष में हैं, जबकि संपत्तिशाली कल-कारखाने वाले हड़ताल की निंदा करते हैं। द्विवेदी जी हड़ताल के पक्ष में हैं, क्योंकि यही तो इनका मजबूत अस्त्र है।

द्विवेदी जी मजदूरों को सह उद्योग करने पर बल देते थे। सहकारिता में वे देश के, समाज के उज्जवल भविष्य को देखते थे। वस्तुतः इस आधार पर संपत्ति की उत्पत्ति तो होती ही है, संगठन भी मजबूत होता है। साथ ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आतंक भी समाप्त किया जा सकता है।

मजदूर, किसानों के संगठन में, एकजुटता में बहुत शक्ति है। जिस शक्ति के सामने बाधाओं का ठहरना असंभव है। द्विवेदी जी तो अंग्रेजी राज के विरुद्ध लड़ने वालों की दो प्रमुख शक्तियां मानते हैं—किसान और मजदूर। इन दोनों की एकता को वे स्वाधीनता आंदोलन की धुरी मानते हैं।

द्विवेदी जी ने रूढ़िवाद का विरोध कर वैज्ञानिक चिंतन को बढ़ावा दिया। वे सामंती सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियों के विरोधी थे। कबीर के चिंतन से इनका रूढ़िवादी चिंतन साम्य रखता है। दोनों ने ही धार्मिक-आडंबरों से समाज को दूर रहने की बात कही। द्विवेदी जी आस्तिक थे पर आस्तिकता का सारतत्त्व करुणा नीति व सदाचार को मानते थे। वे चिंतन के, दर्शन के क्षेत्र में चार्वाक व बृहस्पति की विवेक-परंपरा को महत्त्व देते हैं। इन दोनों दार्शनिकों की चिंतन धारा वर्ण-व्यवस्था और पुरोहितवाद की तीखी आलोचना करती है। आचार्य ने इनसे प्रभावित होकर, 'निरीश्वरवाद' लेख में चार्वाक के अनेक श्लोकों को उदाहरण स्वरूप रखकर विवेक परंपरा को महत्त्व दिया। ये परंपरा कर्मकांडीय पुरोहितवादी धारणाओं का डटकर विरोध करती है। रूढ़िवाद का विरोध करती है। यही नहीं द्विवेदी जी डार्विन की विचारधारा से भी अत्यंत प्रभावित थे क्योंकि इनकी विचारधारा ने धार्मिक अंधविश्वास की जड़ें हिला दी थी। द्विवेदी जी मनुस्मृति में निर्धारित नियमों व मापदंडों को काल-सापेक्ष नहीं मानते क्योंकि सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप नियम व मानदंड भी परिवर्तनशील हैं।

अंग्रेज साम्राज्यवादी अपनी पूरी शक्ति से हिंदी-उर्दू के बीच भेद-भाव ही नहीं बना रहे थे, बल्कि हिंदी की जातीय एकता को भी तोड़ने के यथेष्ट प्रयत्न कर रहे थे। तभी स्वतंत्रतापूर्ण भारत में अंग्रेजी-हिंदी-भाषा को लेकर आंदोलन की भूमिका सक्रिय थी। जिसके प्रतिनिधि दो व्यक्ति थे—महावीर प्रसाद द्विवेदी और गांधी; दोनों ही अंग्रेजी के स्थान पर राजभाषा, संपर्क भाषा व केंद्रीय

भाषा के रूप में, राष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार में लाने के लिए हिंदी का समर्थन कर रहे थे। इस रणनीति में द्विवेदी जी की भूमिका सर्वप्रथम रही क्योंकि गांधी से पहले ये भाषा- समस्या पर अपने विचार प्रकट कर चुके थे। उन्होंने अपने लेखों में अंग्रेजों की नीति के विरुद्ध हिंदी-उर्दू की एकता पर बल दिया। उनके द्वारा लिखित लेख 'देशव्यापक भाषा' जो 1903 में सरस्वती पत्रिका में छपा था, उक्त सत्य का प्रमाण है कि वे हिंदी-उर्दू भाषा में अलगाव नहीं करते थे बल्कि वे उर्दू की कुछ व्याकरणगत कठिनता को निकालकर साधारण बोलचाल की हिंदी में मिला देना चाहते थे। क्योंकि ऐसा होने से देश की जातीय विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। वे हिंदी-भाषा के जातीय स्वरूप को दबाना नहीं चाहते थे। वे हिंदी को ही हमारी राष्ट्रीय, जातीय भाषा मानते और देवनागरी को लिपि।

द्विवेदी जी ने हिंदी-भाषा की राष्ट्रीयता, जातीयता संबंधी धारणाओं के ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित करने के साथ-साथ हिंदी साहित्य के जातीय स्वरूप को भी जागरुकता से स्पष्ट किया है। समाज-सापेक्ष कला के साधक द्विवेदी जी समाज व साहित्य के संबंधों पर बार-बार बल देते हैं। वे साहित्य में तटस्थ प्रतिबिंबों के हामी नहीं, साहित्य में निंरतर प्रगति के पक्षधर हैं। उनकी दृष्टि में समाज रूढ़िबद्ध जड़ इमाई नहीं, वह तो अवरोधों को हटाने वाली, परिवर्तनशील, विकसनशील इकाई है। तटस्थ इकाईयां समाज-विकास में बाधाएं पैदा करती हैं। जिन बाधाओं का अंत करने के लिए सामाजिक संघर्ष होता है, जो संघर्ष साहित्य को जीवंत व गतिशील बनाता है, साहित्य के जातीय स्वरूप की रक्षा करता है। गतिरुद्धों को तोड़ता हुआ सामाजिक संघर्ष ही साहित्य का दृढ़ रक्षक है।

द्विवेदी जी ने कविता में रीतिवाद को छोड़कर कविता को नए मार्ग पर डाल दिया। वस्तुतः साहित्य में रीतिकालीन रूढ़िवादिता को निर्मूल कर आधुनिक हिंदी-साहित्य विकसित हो सकता था। साहित्य का विकास प्राचीन सामांती संस्कारों को बदलकर नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार में ही संभव है। हिंदी-साहित्य के विकास के लिए रूढ़िवादी विचारधाराओं में परिवर्तन लाना जरूरी समझा। उन्होंने समस्त उन जड़ रूढ़ियों, जीर्ण-शीर्ण परंपराओं का विरोध किया जो सामाजिक, साहित्यिक विकास में बाधक थीं। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि सरल काव्य की रचना ब्रज-भाषा में ही संभव नहीं, गद्य भाषा में भी है। श्रृंगार रस का निर्वाह करने से किसी भी समस्या को लेकर कवित्त व सवैये के माध्यम से चमत्कारपूर्ण रचना करने से, अलंकार पूर्ण रचना ही सर्वश्रेष्ठ होगी। इनसे मुक्त रचना ही सर्वश्रेष्ठ होगी। इन्होंने इन मरणशील रूढ़ियों का निरंतर विरोध किया और सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली में मधुर रचना हो सकती है।

इन्हीं सब विशेषताओं के कारण हिंदी की जातीय सरस्वती पत्रिका अभूतपूर्व प्रतिष्ठा पा सकी। आलोचक रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नव-जागरण' (पृ. 377) में सरस्वती के महत्त्व को रेखांकित करते हैं—

यदि द्विवेदी जी द्वारा संपादित 'सरस्वती' के पुराने अंक उठाकर किसी भी नई-पुरानी पत्रिका के अंकों से मिलाये जाएं तो ज्ञात होगा कि पुराने हो चुकने पर भी इन अंकों में सीखने-समझने के लिए अन्य नवीन पत्रिकाओं की अपेक्षा कही अधिक सामग्री है। 'सरस्वती' सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी। वह हिंदी नवजागरण का मुख पत्र थी और हिंदी-भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका भी, ऐसे साहित्य की जो रीतिवादी रूढ़ियों का नाश करके नवीन सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रचा जा रहा था। द्विवेदी जी 'सरस्वती' के लिए नए लेखक, नए पाठक ही तैयार नहीं किए अपितु प्रगतिशील विचारधारा के बाबूराव विष्णुपराडकर और गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार भी तैयार किए, जिन्हें देश की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का संपूर्ण ज्ञान था।

हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस युग की कविता में राष्ट्रीयता, मानवता, नैतिकता से भरे प्रबंध, खंड, मुक्तक, प्रगति सभी काव्य रूपों की रचना छंद वैविध्य को लिए खड़ी बोली में हुई। कथाश्रित काव्य-रचना कवियों को अधिक प्रिय रही। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, गोकुलचंद्र शर्मा, सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने साकेत, प्रिय-प्रवास, पथिक, गांधी गौरव आदि काव्य रचनाएं की। इस युग में गद्य कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, आलोचना आदि सभी विधाओं का क्षेत्र समृद्ध है।

द्विवेदी युग में आलोचना पद्धति भी विकसित हुई। इस युग के प्रसिद्ध आलोचक मिश्र बंधु, गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुंदर दास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि हैं। मिश्र बंधुओं ने हिंदी नवरत्न में नौ कवियों की समीक्षा प्रस्तुत की— तुलसी, सूर, देव, बिहारी, भूषण और मतिराम, केशव, कबीर, चंद्रबरदाई और भारतेंदु। इनका मिश्र बंधु विनोद भी महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यही से हिंदी-साहित्य-पारिजात सैद्धांतिक समीक्षा का परिचायक है। मिश्रबंधुओं द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक समीक्षा पद्धति को पद्मसिंह शर्मा, भवानदीन, कृष्णबिहारी मिश्र आदि आलोचकों ने आगे बढ़ाया। बाबू श्यामसुंदरदास की 'साहित्यालोचन' भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-सिद्धांतों का समाहार है। इन्होंने काव्य का विवेचन करते समय गद्य व पद्य दोनों को महत्त्व दिया है। पुन्नालाल बख्शी ने भी 'विश्व-साहित्य ग्रंथ' का प्रणयन कर हिंदी-जगत् में पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांतों को कायम किया।

निष्कर्षतः द्विवेदी जी का समग्र चिंतन जातीय, राष्ट्रीय, वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित है। इनके चिंतन-वैविध्य को समझने के लिए आधुनिक परिस्थितियों को, सामाजिक परिवेश को समझना जरूरी है। जितना ही हम वर्तमान भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृति समस्याओं को पहचानेंगे, उतना ही हम पाठक द्विवेदी जी के चिंतन को अपनी प्रगति के समीप पाएंगे।

आर.यू.-206, विशाखा एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली- 110034

हिंदी साहित्य के सृजनकर्ता और पालनकर्ता

डॉ. राजेश चंद्र आदर्श

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश जिला रायबरेली के दौलतपुर गांव में पंडित राम सहाय के घर 1864 ई. में हुआ था। आपको संस्कृत की शिक्षा घर पर और प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय स्तर पर ही मिली। लेकिन हाई स्कूल की शिक्षा उत्तर प्रदेश के ही उन्नाव जिले में हुई। परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण आपको उच्च शिक्षा से वंचित होना पड़ा लेकिन स्वाध्ययन की प्रवृत्ति और कठिन मेहनत के कारण आपने शिक्षा के हर आयाम को छूने की कोशिश की। आपने तार का काम सीखा और 18 वर्ष की आयु में रेलवे में तार बाबू के पद पर कार्य भार संभाला था किंतु अपने परिश्रम और लगन के कारण अधिकारियों के चहेते बन गए और आपने रेलवे के तार बाबू, माल बाबू, टिकट बाबू और स्टेशन मास्टर जैसे विभिन्न पदों पर कार्य किया। रेलवे में रहते हुए स्थानांतरण की समस्या आम होती है लेकिन आपने वहां भी अपने लिए कुछ रुचिकर बना लिया और उससे निजात पाने के लिए अध्ययन का सहारा लिया। स्थानांतरण के कारण आपको अजमेर, बंबई, नागपुर, होशंगाबाद, इटारसी, जबलपुर और झांसी जैसे शहरों में रहना पड़ा। लेकिन इतने स्थानांतरण के बाद भी आप उससे हताश नहीं हुए बल्कि जहां-जहां गए वहां सीखने की प्रवृत्ति और बढ़ती गई। यही कारण है कि आचार्य के काम में इतनी विविधता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का समय हिंदी साहित्य के लिए विभिन्न विधाओं खास कर गद्य के प्रवर्तन का काल था और इसके लिए उन्होंने 35 वर्ष की अवस्था तक अथक प्रयत्न किया वह हिंदी साहित्य के लिए अनमोल और अप्रतिम कार्य था। उन्होंने इसके लिए खड़ी बोली को अपनाया। किंतु जितना भी कार्य किया उनके देहावसान के बाद हिंदी क्षेत्र में व्याकरण-असम्मत लेखन की शुरूआत हो गई। लेखकों के मनमाने वाक्य-विन्यास से साहित्यिक-रचनाओं में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऐसे समय में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने निर्ममता पूर्वक अपने अनुशासन की कैंची से हिंदी में होती अशुद्धता को काट-छांट कर हिंदी के शुद्ध रूप को पल्लवित और पोषित किया।

द्विवेदी जी की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे—नैषध चरित चर्चा, हिंदी कालीदास की समालोचना, वैज्ञानिक कोष, नाट्यशास्त्र, विक्रमांकदेव चरित चर्या, हिंदी भाषा की उत्पत्ति, संपत्ति शास्त्र, कालीदास की निरंकुशता, शिक्षा वनिता विलास, रसज्ञ रंजन, सुकवि संकीर्तन, अद्भुत आलाप, साहित्य संदर्भ, अतीत स्मृति, कोविद-कीर्तन, विदेशी विद्वान, साहित्य-सीकर, प्राचीन चिह्न, पुरातत्त्व प्रसंग, विचार-विमर्श, विज्ञान-वार्ता।

साथ ही साथ आपने कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद भी किया। जैसे—भामिनी विलास, अमृत लहरी, बेकन विचार, रत्नावली शिक्षा (हाबर्ट स्पेंसर के एजुकेशन का अनुवाद), जल चिकित्सा, स्वाधीनता (जॉन स्टुअर्ट मिल के ऑन लिबर्टी का अनुवाद), हिंदी महाभारत, रघुवंश, वेणी संहार, मेघदूत, कुमार संभव और किरातार्जुनीय। आपने 1903 ई. के प्रारंभ से 1920 के अंत तक 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन किया। वो भी कानपुर के एक छोटे गांव में रहकर।

आपने सीखने और काम करने की प्रवृत्ति कूट-कूट कर भरी थी। आप निरंतर अध्ययन में लीन रहते थे आपने सिर्फ हिंदी ही नहीं बल्कि ज्ञान-विज्ञान के लगभग हर क्षेत्र का अध्ययन किया और जहां भी आपको लगा कि इससे लोगों का कुछ भला होगा, कुछ ज्ञान मिलेगा आपने उसे पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। आप द्वारा लिखे गए विविध विषय हिंदी भाषा की कविताएं, बैसवाड़ी भाषा की कविताएं, संस्कृत भाषा की कविताएं, ब्रज भाषा की कविताएं, भाषा-चिंतन, विज्ञान-चिंतन, जीवन-चरित, निबंध, स्त्री-चिंतन, कहानियां, ज्योतिष, इतिहास और पुरातत्त्व इस बात के प्रमाण हैं।

द्विवेदी जी सादा जीवन उच्च विचार की धारणा पर चलने वाले थे। देखने में रोबीले एवं व्यवहार में अनुशासन प्रिय थे। यही कारण है कि यदि उन्होंने साहित्य में भी अनुशासन-हीनता दिखी तो उन्होंने उसे बर्दाश्त नहीं किया। साथ ही साथ द्विवेदी जी हिंदू धर्म-ग्रंथों के हितैषी और भारतीय संसकृति के जबरदस्त पक्षधर थे।

द्विवेदी जी ने कविता और कवि विषय पर अपने विचार कविता, कवि और कविता,

कविता का भविष्य और आजकल के हिंदी कवि और कविता लेख में दिया है। अपने लेख 'कवि और कविता' में द्विवेदी जी लिखते हैं कि—''जब तक ज्ञान वृद्धि नहीं होती—जब तक सभ्यता का जमाना नहीं आता-तभी तक कविता की उन्नति होती है, क्योंकि सभ्यता और कविता में परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या की वृद्धि होने से कविता का असर कम हो जाता है। कविता में कुछ-न-कुछ झूठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है, शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास की रामायण के खास-खास स्थलों का जितना प्रभाव स्त्रियों पर पड़ता है उतना पढ़े-लिखे आदमियों पर नहीं। पुराने काव्यों को पढ़ने से लोगों का चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था, उतना अब नहीं होता। हजारों वर्ष से कविता का क्रम जारी है। जिन प्राकृतिक बातों का वर्णन कवि करते हैं उनका वर्णन बहुत कुछ अब तक हो चुका है। जो नए कवि होते हैं वे भी उलट-फेर से प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन करते हैं। इसी से अब कविता हृदय-ग्राहिणी होती है।

'कविता का भविष्य' लेख में द्विवेदी जी कविता के समस्त उपादानों की चर्चा करते हैं—मनुष्यों में ईश्वरदत्त शक्तियों में से वाणी की महिमा सबसे अधिक है। हिंदू-मात्र उसे साक्षात् देवी सरस्वती के रूप में उपास्य समझते हैं। संसार के बाल्यकाल से लेकर आज तक इसी वाणी का ही विकास होता जा रहा है। जब भावों की वृद्धि होती है तब भाषा में रूपांतर होता है। जब कोई भाषा भाव ग्रहण करने में असमर्थ होती है तब उसका अंत हो जाता है और उसका आसन दूसरी भाषा ले लेती है। यही कारण है कि भाषा एक सी कभी नहीं रहती। उन्नतिशील मानव-जाति के लिए भाषा में परिवर्तन होते रहना आवश्यक है। सारांश यह कि सभी भाषाएं सभी भावों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं होतीं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न स्वर प्रकट होते हैं। भारतीय भाषाओं में जो भाव व्यक्त हो सकते हैं, वे भाव यूरोपीय भाषाओं में भली-भांति व्यक्त नहीं होंगे। तो भी इतना हम अवश्य कहेंगे कि भाव-श्रोता की एक ही धारा एक ही समय में सर्वत्र बहती है। प्राचीन काल में सभी कवि प्रकृति की देदीप्यमान शक्तियों का गान करते हैं। इसके बाद कवि वीरों का यशोगान करते हैं। इसके बाद नाटकों की सृष्टि होती है, फिर शृंगार-रस पर काव्य-रचना होती है, भाषा का माधुर्य बढ़ता है, अलंकारों की ध्वनि सुन पड़ती है और पद-नैपुण्यस प्रदर्शित किया जाता है। इसके बाद सांसारिक विषयों से घृणा होती है। भक्ति के उन्मेष में कोई प्रकृति का आश्रय लेता है, कोई प्राचीन आदर्शों का।

बाह्य प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अंतर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है। कविता का लक्ष्य 'मनुष्य' हो जाता है। संसार से दृष्टि हटाकर कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है।

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि—भविष्य कवि का लक्ष्य इधर ही होगा। अभी तक वह मिट्टी में सने हुए किसानों और कारखानों से निकले हुए मजदूर को अपने काव्यों का नायक बनाना नहीं चाहता था। वह राजस्तुति, वीर-गाथा अथवा प्रकृति-वर्णन में ही लीन रहता था। परंतु अब वह क्षुद्रों की भी महत्ता देखेगा और तभी जगत् का रहस्य सबको विदित होगा। जगत् का रहस्य क्या है, इस पर एक ने कहा है कि असाधारण में यह रहस्य नहीं है। जो साधारण है वही रहस्य है, वही अनंत सौंदर्य से युक्त है। इसी सौंदर्य को स्पष्ट कर देना भविष्य-कवियों का काम होगा।

स्त्रियों के संबंध में द्विवेदी जी का विचार 'स्त्रियों का सामाजिक जीवन' नामक लेख में भली-भांति दिखाई पड़ता है। उनके अनुसार—हमारी प्रार्थना है कि अपनी सामाजिक स्थिति, अपनी वर्ण-व्यवस्था, अपनी कुल-रीति और अपनी हैसियत के अनुसार यथा-शक्ति और यथा-संभव हमें अपनी लड़कियों की शिक्षा का प्रबंध करना चाहिए। स्त्रियों को अधिक उदारता की दृष्टि से देखना चाहिए। यदि आप पारिवारिक सुख की वृद्धि चाहते हों, यदि आप अपने घर की शोभा बढ़ाना चाहते हों, यदि आप अपनी संतति के हृदय-स्थल में शैशवावस्था ही से सद्गुणों के बीज बोना चाहते हों, तो आप, स्त्रियों को कोई ऐसी वैसी चीज, मसलन जूती न समझिए। उन्हें आदर और शिक्षा-दान की पात्र समझिए। यही आपके पूजनीय पूर्वजों की आज्ञा है, यही आपके आदरास्पद आचार्यों की आज्ञा है, यही आपके ब्रह्मवेत्ता ऋषियों और मुनियों की आज्ञा है। यदि आप स्त्रियों के अभाग्य से अथवा अपनी संतान के अभाग्य से इन आज्ञाओं के कायल नहीं-स्त्रियों को देवियां मानने के लिए तैयार नहीं —तो आप आज से कुमारिका पूजन बंद करा दीजिए, मंगल-कार्यों में सौभाग्यवती स्त्रियों के मंगल-सूचक गान और अनुष्ठान भी बंद करा दीजिए, और व्यासजी के बनाए हुए मार्कण्डेय पुराण की अंशभूत दुर्गासप्तशती के एक श्लोक को खारिज समझकर उसका पाठ भी बंद करा दीजिए। यह श्लोकार्थ यह है—

''विद्याः समस्तास्तव देवी भेदाः
स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।''

द्विवेदी जी के शिष्य मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में ''द्विवेदी जी का जीवन-साहित्य, साधना और तप का जीवन है। ... साहित्य की लगन का कितना ऊंचा आदर्श है। कहां से क्या लें और उसे किस तरह अच्छे-से-अच्छे में संसार को दें, यही धुन है। जनहित में कोई अंग उनसे नहीं छूटा, चाहे वह पुरातत्व से संबंध रखता हो, या दर्शन से, या भाषा विज्ञान से या प्राकृतिक दृश्यों से, उसे पाठकों के लिए संकलन करना उनका कर्तव्य था। वह जिस चीज को पढ़कर स्वयं आनंदित होते थे, उसका रस पाठकों

को चखाना एक लाजिमी बात थी। ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर द्विवेदी जी ने न लिखा हो, गहरे से गहरे तात्त्विक विवेचन और साधारण से साधारण दंत कथाएं तक आपको उनमें मिलेंगी और आप उस व्यक्ति के ज्ञान-विस्तार पर चकित हो जाएंगे। और यह काम किसी विद्या और ज्ञान के केंद्र में बैठकर नहीं, एक गांव की एकांत कुटिया में होता था। साहित्य की वह छटा उसी कुटिया से निकलकर हिंदी-संसार को आलोकित कर रही थी।''

प्रेमचंद, पंत और निराला से पूर्व आलोचकों का ध्यान द्विवेदी जी के कठिन परिश्रम और हिंदी के लिए उनके योगदान पर कभी नहीं गया। लोग जैसे छत पर पहुंचकर सीढ़ियों के योगदान को भुला देते हैं, वही हालत आचार्य शुक्ल जैसे कुछ आलोचकों के साथ भी थी। अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने लिखा ''द्विवेदी जी ने सन् 1903 में सरस्वती के संपादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि पाठक भी बहुत-कुछ समझ जाएं। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकल लेख भी बहुत कुछ लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही हैं। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नए-नए विचारों की उद्‌भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं। स्थायी निबंधों की श्रेणी में दो-चार ही लेख, जैसे 'कवि और कविता', 'प्रतिमा' आदि आ सकते हैं। पर वे लेखन कला या सूक्ष्म विचार की दृष्टि से लिखे नहीं जान पड़ते। 'कवि और कविता' कैसा गंभीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गई हैं।'' लेकिन वास्तविकता किसी बहाने अपना रास्ता खोज ही लेती है। आचार्य शुक्ल सतर्कता से ही सही किंतु उनकी लिखी पंक्तियों से आचार्य द्विवेदी जी का योगदान उभरकर सामने आता है—''यद्यपि द्विवेदी जी ने बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया। यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसा अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और उटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्द न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी। उन्होंने अपना सुधार किया।''

हिंदी कवि और साहित्यकार भारत यायावर ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और रचना संचयन' में लिखा है—''महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी के पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही सिर्फ नहीं किया था, उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा था। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत-साहित्य की निरंतर प्रवहमान धारा का अवगाहन किया था एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया था।''

वास्तविकरूप में साहित्यकार भविष्यद्रष्टा होता है, जो वर्तमान में जीते हुए भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। भाषा की रक्षा सीमा-रक्षा से कम नहीं होती। भाषा का परिष्कार करना तो पूरी की पूरी सभ्यता का परिष्कार करना है। यदि भाषा सही नहीं रही तो पूरी की पूरी संस्कृति नष्ट हो जाती है। द्विवेदी जी ने विविध प्रकार के साहित्य ज्ञान से जहां साहित्यकार के भविष्य वेत्ता की भूमिका निभाई। भाषा का परिष्कार कर असभ्यता और अनुशासन हीनता का खात्मा किया वही भाषा की रक्षा करके सभ्यता की रक्षा की। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने साहित्य के सृजनकर्त्ता और पालनकर्त्ता की भूमिका एक साथ निभाई।

सी–6/862, इंद्रप्रस्थ अपार्टमेंट,
बुराड़ी रोड़, संत नगर, दिल्ली-110084

आधुनिक हिंदी वाङ्मय के संस्थापक

डॉ. किशोरीशरण शर्मा

अभिव्यक्ति का मुख्य आधार भाषा है। काल, परिस्थिति, मनोवृत्ति, सोच सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना के अनुकूल यह बनती है और परिवर्तित भी होती रहती है। हिंदी वाङ्मय के साथ भी ऐसा हुआ है। किंतु आधुनिक काल में हिंदी को व्यापक विस्तार मिला। इसका सर्वाधिक श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को जाता है। यहां उनके अवदानों पर विचार करने के पूर्व उनके पहले के कालखंड में हिंदी की स्थिति पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि उसको जाने बगौर द्विवेदी जी के अवदानों का विश्लेषण स्पष्ट नहीं होगा।

आचार्य द्विवेदी जी का जन्म वैशाख शुक्ल 4 सं. 1927 (सन् 1870 ई.) को उत्तर प्रदेश के जिला-रायबरेली के दौलतपुर में हुआ। उनके पूर्व भारतेंदु हरिश्चंद्र जी का जन्म भाद्र शुक्ल 5. सं. 1907 (सन् 1850 ई.) को वाराणसी में हुआ। उस समय भारत अंग्रेजी शासन के अधीन था। यहां की राजकीय भाषा अंग्रेजी थी और उर्दू अघोषित द्वितीय भाषा की स्थिति में थी। कोर्ट-कचहरी इत्यादि के अधिकांश काम देवनागरी या उर्दू लिपि में होते थे जिनमें उर्दू-फारसी के शब्दों का बाहुल्य होता था। भारत लगभग पांच सौ छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जो अंग्रेजी शासन के अधीन थे। उन राज्यों में वहां की क्षेत्रीय भाषा/बोली/लिपि प्रयुक्त होते थे। उत्तर भारत में देवनागरी लिपि का प्रचलन था किंतु उच्चारण, लिखावट में स्थानीय प्रभाव के कारण एक दूसरे में भिन्नता थी। उदाहरण के लिए अवधी, ब्रज, बुंदेली, गढ़वाली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली इत्यादि को लिया जा सकता है जिनकी लिपि तो देवनागरी है फिर भी उनमें अंतर है। ऐसी परिस्थिति में भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म एक वरदान सिद्ध हुआ। उनके पूर्व इन बोलियों में भी मूलतः कविताएं ही लिखी जाती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता के अतिरिक्त नाटक, निबंध इत्यादि ब्रजभाषा में लिखना तथा प्रचार-प्रसार करना आरंभ किया। सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के हित में पांच वर्ष की आयु में ही उनका लिखा यह दोहा—

वह एक धनाढ्य वैश्य परिवार के थे। उन्होंने तन, मन और धन सब कुछ हिंदी के उत्थान और प्रचार-प्रसार में अर्पित कर दिया। उनके काल में देश के विभिन्न क्षेत्रों से 27 पत्र/पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगी थीं। दुर्भाग्यवश उनका निधन 35 वर्ष की आयु में माघ कृष्ण 6 संवत् 1941 में ही हो गया। किंतु निधन के पूर्व ही हिंदी खड़ी बोली को भारत की एक भाषा के रूप में मानकर उन्होंने लेखन और भाषण आरंभ कर दिया था। उत्तर प्रदेश के बलिया के दर्दरी मेला में उनका दिया हुआ ऐतिहासिक भाषण इसका प्रमाण है। उन्होंने अपने नाटकों में भी हिंदी खड़ी बोली का उपयोग किया।

भारतेंदु जी के निधन के 15 साल बाद सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन इलाहाबाद से आरंभ हुआ। इसका प्रथम अंक 32 पृष्ठों का था। इसके संपादक मंडल में बाबू जगन्नाथ दास, श्यामसुंदर दास, राधाकृष्ण दास तथा किशोरी लाल थे। सन् 1901 ई. से केवल बाबू श्यामसुंदर दास ही इसके संपादक रह गए और सन् 1902 ई. तक बने रहे। उसके बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का चयन 'सरस्वती' के संपादक के रूप में हुआ।

द्विवेदी जी ने लगभग 33 वर्ष की आयु में सन् 1903 ई. में सरस्वती के संपादन का दायित्व संभाला। वह भारतीय समाज संस्कृति और स्थिति से अवगत हो चुके थे। सन् 1885 ई. में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की स्थापना हो चुकी थी। मंगल पांडेय द्वारा शुरू किया गया प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन दब चुका था किंतु उसकी अग्नि बुझी नहीं थी। कांग्रेस की स्थापना के साथ वह पुनः प्रज्जवलित होने लगी थी। उसका संगठनात्मक स्वरूप ठोस धरातल पर बना था। द्विवेदी जी के मन में यह बात भी कौंधी होगी कि स्वतंत्रता आन्दोलन को प्रभावकारी बनाने के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो सभी भारतवासियों की भाषा और बोली बन सके। इस अवधारणा की पुष्टि 'सरस्वती' में प्रकाशित उनके संपादकीय आलेखों से होती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के द्वारा उनके जीवन के उत्तरार्ध में अपनायी

गई हिंदी खड़ी बोली को जनभाषा के रूप में संस्थापित करने तथा संपूर्ण देशवासियों के अनुकूल उसे ढालने का संकल्प द्विवेदी जी ने लिया और सन् 1903 से 1920 ई. तक के 18 वर्षीय कार्यकाल में भारतेंदु जी के उद्‌बोधन स्वरूप 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।' के सिद्धांत को व्यवहारिक रूप दे दिया। उन्होंने साहित्यिक रुचि रखने वाले चिंतनशील लेखकों का एक बड़ा संगठन बनाया जिसको आगे चलकर समीक्षकों ने 'द्विवेदी मंडल' नाम दिया। इस मंडल के कवियों और लेखकों में मैथिलीशरण गुप्त, पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', सत्यनारायण कविरत्न, लोचन प्रसाद पांडेय, पं. पदम सिंह शर्मा, पंडित राम नेरश त्रिपाठी, गदाधर सिंह, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, पं. रामचंद्र शुक्ल, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', राम कृष्ण दास, रूप नारायण पांडेय, सियारामशरण गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, रामचरित उपाध्याय, चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा वृंदावन लाल वर्मा इत्यादि प्रमुख रहे जो आगे चलकर इतिहास पुरुष बने।

इस काल में कविता, कहानी, नाटक, निबंध, संस्मरण, समीक्षा, इतिहास लेखन तथा पत्रकारिता इत्यादि सभी विधाओं की हिंदी खड़ी बोली में शुरूआत भी हुई और उनके विकास को उत्कर्ष भी मिला। मैथिली शरण गुप्त की काव्यकृतियां—भारत भारती, जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत, द्वापर, यशोधरा, विष्णुप्रिया तथा जय भारत, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की श्री कृष्ण शतक, रस कलश, प्रेम-प्रपंच, प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास, चौखे चौपदे, काव्योपवन, पं. राम नरेश त्रिपाठी की मिलन, पथिक स्वप्न इत्यादि काव्य-कृतियां इसी काल की देन हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेकानेक कवियों की काव्य कृतियां प्रकाश में आई। इसके साथ ही कविता व्रजभाषा से मोह भंग करके हिंदी खड़ी बोली को पूर्ण रूप से स्वीकार करके राष्ट्रीय स्तर पर हिलोरे लेने लगी।

आइए इस काल की अन्य साहित्यिक विधाओं पर भी एक दृष्टि डालें। इस कालखंड में कहानी-विधा का सर्वाधिक विकास हुआ। कुछ प्रमुख कहानियां जो सरस्वती में प्रकाशित हुई उनके शीर्षक और लेखक का नाम दृष्टव्य है। ग्यारह वर्ष का समय—रामचंद्र शुक्ल—1903 ई., दुलाई वाली—बंग महिला—1909 ई., नकली किला और निन्यानवे का फेर—मैथिलीशरण गुप्त—1909 ई., रक्षाबंधन—विश्वंभरनाथ 'कौशिक'—1913, उसने कहा था— चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'—1915, तथा पंचपरमेश्वर—प्रेमचंद्र—1916 ई. तथा कानों में कंगना—राजा राधिकारमण सिंह इत्यादि की कहानियां मील का पत्थर बनीं। इसी प्रकार उपन्यास विधा का भी ऐतिहासिक विकास हुआ। प्रेमचंद्र, वृंदावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, विश्वंभर नाथ कौशिक, किशोरी लाल गोस्वामी आदि ने चरित्र प्रधान, भाव प्रधान, तिलस्मी, जासूसी, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। नाटक-विधा का भी पुरजोर विकास हुआ। इस दिशा में श्री बालकृष्ण भट्‌ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनाथ भट्‌ट, माधव शुक्ल का विशेष योगदान रहा।

आचार्य द्विवेदी जी ने 'निबंध' विधा पर भी विशेष ध्यान दिया। उन्होंने अनेक निबंध लिखे जो सरस्वती में प्रकाशित भी हुए। उनके निबंधों के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—''द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।... ''उनके लेखों में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग अधिक मिलता है।...'' उनकी यह व्यास शैली विपक्षी को कायल करने के प्रयत्न में बड़े काम की है। द्विवेदी जी का काल हिंदी का एक मजबूत आधार देने का था। देश विदेशी शासकों के अधीन था। आर्थिक और शैक्षिक दशा दयनीय थी। उनको राष्ट्रीय भावनाओं को जनमानस तक पहुंचाना था। फलस्वरूप द्विवेदी जी ने अपने निबंधों में संवाद की भाषा का प्रयोग किया। उनके संपादन काल में अन्य अनेक श्रेष्ठ निबंधकारों ने निबंध साहित्य को समृद्ध किया जिनमें बालमुकुंद गुप्त, बाल कृष्ण भट्‌ट, प्रतापनारायण मिश्र, सरदारपूर्ण सिंह, संतराम, यशोदानंदन अखौरी, पदम सिंह शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाबराय जैसे विद्वान मनीषियों का नाम गर्व से लिया जा सकता है। इस अवधि में हिंदी साहित्य का इतिहास भी लिखा गया जिसमें मिश्र बंधु, बाबू श्याम सुंदर दास तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

संदर्भ-ग्रंथ—

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्रकाशन वर्ष सं. 2012
2. हिंदी साहित्येतिहास की भूमिका, भाग-3, आधुनिक काल—प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रकाशक उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ। प्रकाशन वर्ष 2010 ई. पृष्ठ 48-53
3. हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी
4. आधुनिक हिंदी कविता के सौ वर्ष—प्रो. दीनानाथ सिंह, प्रकाशक विश्व पुस्तक प्रकाशन, नई दिल्ली—63, वर्ष 2013 ई. पृष्ठ 4-30
5. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के जन्म एवं निधन की तिथियां जो आलेख में अंकित की गई हैं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखित हिंदी साहित्य के इतिहास पर आधारित है।

'साहित्यांगन', 13 रेवती विहार, सेक्टर -14, इंदिरा नगर, लखनऊ—226016 (उ. प्र.)

आचार्य को नमन

डॉ. मालती

''जो समर्थ होकर भी साहित्य सेवा नहीं करता, अनुराग नहीं रखता वह समाजद्रोही है, जातिद्रोही है किंबहुना आत्मद्रोही-आत्महंता भी है।'' कानपुर में आयोजित हिंदी सम्मेलन में गूंजने वाला यह अतिवाक्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की गुरु गर्वोक्ति नहीं था, यह तो युग की रचनाधर्मिता को सक्रिय बनाने वाली एक चुनौती था। एक आह्वान था, चेतना को राह दिखाने वाला ओज का प्रकाश झरना था। 'स्वाभिमान, स्वावलम्बन और स्वाध्याय' के युग स्वीकृत अधिकारी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भविष्य द्रष्टा, युग संचालक एवं युग प्रेरक व्यक्तित्व थे। उनके इन्हीं गुणों का एक अनोखा आकलन भी उनके ही युग के नाराज से एक वर्ग ने 'घमंडी, कलहप्रिय और तुनकमिजाज' कह कर भी किया था। दोनों उद्‌गारों में युग का संवेदनशील मन ही ध्वनित होता है। संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी की निष्पक्ष स्पष्टवादिता के बारे में सोचने की ताब सबमें नहीं थी, यह स्वीकृत सच है कि उस समय के सभी लेखक 'सरस्वती' पत्रिका में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में अपने लेखन की सार्थकता देखते थे, 'सरस्वती' में लेख छपने को विश्वविद्यालय की डिग्री पाने से कम नहीं समझते थे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को उनके युग ने उनके जीवन काल में भी 'जीवित गुरुकुल' माना था और वे अपने आप में 'एक संस्थान' के रूप में पहचाने जाते थे। मैंने अपने विद्यार्थी जीवन में हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के अंतर्गत 'द्विवेदी-युग' की प्रवृत्तियों विशेषताओं उपलब्धियों आदि का परीक्षा की दृष्टि से अध्ययन किया था और आज जब मैंने उनकी रचनाधर्मिता का बहुमुखी आयाम देखा तो मेरी बुद्धि की तो नजरें ही चौंधिया गईं। शतकोटि सूर्य की किरणों के एक-एक कतरे से अनगिनत रोशनी की किरणें निकलने जैसा मन-बुद्धि-तर्क भाव-भाव को ज्योतित करने वाले महावीर प्रसाद की ताब को झेलने वाली नजरें तो मेरे पास नहीं ही हैं। मैं चमत्कृत श्रद्धावनत हूं। महावीर प्रसाद द्विवेदी गुरु आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने उन्हें मन-बुद्धि तर्क की गंभीरता से 'आचार्य' माना। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सही मायनों में समस्त ज्ञान के आख्याता और कल्प-रहस्य के व्याख्याता वेद विहित आचार्य के समान अपने युग के हर रहस्य के मर्म को स्पष्ट करने वाले गुरु गंभीर आचार-विचार और व्यवहार के आदर्श का जीवंत प्रमाण हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादकीय कला की धार से 'सरस्वती' में अपने आलेख को देख कर उस युग के लेखकों—गंगानाथ झा, गोपाल शरण सिंह, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, लक्ष्मीधर वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, बाबूराव विष्णुराव पराडकर ने उन्हें गुरु का मान दिया।

आचार्य द्विवेदी जिस युग में जी रहे थे और पत्रकारिता के कर्म का निर्वाह कर रहे थे वह युग हर आम-खास भारतीय के लिए भीषण चुनौतियों से भरा था 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक का दायित्व संभालने से पहले द्विवेदी जी ने भारत की क्षत-विक्षत, आहत-हतप्रभ एवं किंकर्त्तव्य विमूढ़ जीवन की हर करुण धड़कन को अपने दिल में धड़कते पाया था। उत्तर प्रदेश के रायबरेली क्षेत्र के एक छोटे से गांव दौलतपुर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में जन्मे महावीर प्रसाद ने जीवन की सांसों के साथ ही असहाय-आत्महीनता ग्रस्त आम आदमी की करुण त्रासदी में जीना सीख लिया था गांव के ग्रामीण मदरसे में हिंदी-उर्दू और परिवार से संस्कृत व्याकरण की बुनियादी शिक्षा पाने के बाद उन्हें कभी औपचारिक शिक्षा पाने लायक सामान्य सुविधा भी नहीं मिल पाई थी दौलतपुर से फतेहपुर, उन्नाव, बंबई (अब मुंबई) तक की संघर्ष यात्रा के दौरान राह के 'कांच-कांटे-रोड़े' हटाते-हटाते आपने बंगला, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं और उनके साहित्य की बारीकियों को अपने जेहन में उतारने का भी काम किया, जीवन, महावीर प्रसाद द्विवेदी के लिए कभी समतल, सरल, सुखद या सम रफ्तार वाला नहीं रहा, बीमार युवा पत्नी की मृत्यु, संतान-हीनता, विधवा बहन, विधवा युवा भांजी और भांजे का दायित्व संभालने वाले महावीर ने परिवार सुख कभी देखा ही नहीं अपनी रुचि के विपरीत रेलवे की 'सिगनेलर' की नौकरी स्वीकार करनी पड़ी टिकटबाबू, मालबाबू, टेलीग्राफ इंस्पेक्टर यातायात इंस्पेक्टर तथा कलर्की की 'अप-डाउन' वाली जिंदगी में वे हमेशा भाषा और समाज के संबंधों की 'ऊंच-नीच' की उलझन ही सुलझाते दिखाई देते थे, रेलवे की रफ्तार नियंत्रण निर्देशन में वे भविष्य की राष्ट्रभाषा की गरिमा की गति-दिशा एवं व्यवस्था के मानचित्र को ही जैसे आंका करते थे। उनकी संवेदना में साहित्य, चेतना में जातीय अस्मिता और व्यवसाय में प्रशासकीय दांव-पेच की कशमकश द्विवेदी जी में सतत अकुलाती रहती थी, इस उलझन से निकलने का अवसर भी उन्हें मिला, उनके कार्यालय में एक नया अधिकारी आया रेलवे कर्मिकों के हित की पैरवी करने वाले महावीर

प्रसाद से उनकी तकरार हो गई, महावीर प्रसाद द्विवेदी कर्मिकों के हित के साथ हानि वाला समझौता नहीं कर पाए और उन्होंने 200 रुपए (तब यह धन राशि बहुत सम्मान जनक थी) की अपनी नौकरी को छोड़ दिया।

वर्ष 1903 में उन्होंने मात्र तीस रुपए वेतन वाली 'सरस्वती' पत्रिका की संपादन की जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया, संपादक की भूमिका के साथ न्याय करने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने लिए एक आदर्श आचार संहिता निर्धारित की और आजीवन ''समय की पाबंदी, मालिक का विश्वासपात्र बने रहना, निजी हानि-लाभ के बजाय पाठकों के हानि-लाभ की चिंता करना तथा न्याय-पक्ष पर अडिग बने रहना'' के आदर्शों का पालन करते रहे, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पद की गरिमा के लिए अपने को तैयार करने में कोई कसर नहीं रखी। पत्रकार समाज और युग की आंख और आवाज होता है जिस पत्र के साथ वह जुड़ा होता है उसके सरोकारों से तो वह बांधा होता है और वह समाज के प्रति भी जवाबदेह होता है, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने समाज को अपनी आंखों से देखा था। उनका बचपन आम भारतीय बच्चों के समान दरिद्रता अभाव, विवशता और पराधीनता में बीता था। इसीलिए वे अपने जातीय समाज की मानसिकता, उनकी हताशा-निराशा और आकांक्षाओं को समझते थे और उन्हें इस विवशता से बाहर निकाल सम्मानित पहचान का हकदार बनाना चाहते थे, द्विवेदी जी ने समाजहित को सर्वोपरि रखा था, उन्होंने व्यक्ति की सभी कमजोरियों को जड़ से उखाड फेंका था इसी कारण उनकी आवाज में बुलंदी और सीधे-सीधे दिलों-दिमाग को सक्रिय बनाने की ऊर्जा थी। वे अपनी दृष्टि और वाणी के प्रकाश को युग के हर रहस्य पर कुछ इस प्रकार फेंकते थे कि हर रहस्य अपने सही रूप में उजागर हो जाता था और उनके पाठक हर छद्म को पहचान लेते थे, द्विवेदी जी ने अपने कार्य को और अधिक सार्थक सटीक बनाने के लिए जहां देश-विदेश के इतिहास पुरातत्व समाज-शास्त्र और इतिहास के श्रेष्ठ चरित्रों का गंभीर एवं गहन अध्ययन किया था वही मानव मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र का भी ज्ञान अर्जित किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की लेखनी, समीक्षा एवं चयन में विवेक का तत्व उनकी समस्या के कारणों को थाम कर निदान सुझाने की विवेक बुद्धि से आ सका था। कार्य-कारण पर आधारित विश्लेषण, विवेचन एवं निष्कर्ष क्षमता के चलते द्विवेदी जी ने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और 'संपत्ति-शास्त्र' पुस्तक का लेखन किया, वे देशवासियों को दयनीय दशा से उबरने के लिए उद्योग आदि वाली आर्थिक गतिविधियों के समर्थक थे, महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकार की दूर-दृष्टि ने समझ लिया था कि यदि भारतीय उद्योग-कारखाने लगा कर तथा विदेशी विज्ञान-तकनीक के यंत्र-कल-बल के उपयोग से श्रम और पूंजी का विकास कर विकास कर सकते हैं, द्विवेदी जी का उत्पादन-विवेक पूंजीवादी नहीं था वे 'मुनासिब मांगों के लिए मुनासिब ढंग से हड़ताल' का समर्थन करते हैं तथा कलकत्ता की मेहतर हड़ताल बंबई के चिट्टीरसों, रेलवे के तार-बाबुओं मिल मजदूरों की हड़ताल आदि को आर्थिक विकास के लिए आवश्यक सिद्ध करते हैं, इसका तात्पर्य यह कभी भी नहीं है कि वे अंग्रेजों की उद्योग-व्यापार नीति के समर्थक थे, उन्होंने अंग्रेजियत को तो सरकारी नौकरी के साथ ही छोड़ दिया था, 'संपत्ति-शास्त्र' पुस्तक के अनेक अंगों में प्रकाशित कर उन्होंने किसानों को लगान और कर्ज का अंतर बताया और स्पष्ट किया कि भारत में किसान सदा से भूमि का स्वामी था वह अपनी जमीन के लिए लगान लेने का हकदार था और राजा को वह अपनी उपज का एक अंश कर के रूप में देता था, अंग्रेजी राज में जमींदारी प्रथा प्रारंभ करके किसानों को भूमिहीन गुलाम बना दिया अब वे जमींदार और राजा दोनों को लगान-कर देकर दोहरे शोषण में पिस रहे थे। शासन के विरोध में किसानों ने खिलाफत में भी सक्रिय भाग लिया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भारत के विकास के लिए जनजागरण का जो अभियान चलाया था उस पर सरकारी नीतियों का दबाव बना रहता था। द्विवेदी जी सजगता के बाद भी 'सरस्वती' पत्रिका सरकारी अनुदान के अंतर्गत दूसरे दर्जे पर ही रखा जाती थी, जब कि देश में यह अव्वल दर्जे पर आंकी जाती थी।

सजग पत्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन जागरण का विचार भी उस समय के सुधारकों, देशभक्तों एवं उपदेशकों से बिल्कुल अलग था। उन्होंने 'चर्खे-कर्घे' वाले भारत का सपना नहीं देखा था वे तो भारत को उन्नत वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान संपन्न औद्योगिक दृष्टि से विकसित एवं उत्पादन में समर्थ राष्ट्र के रूप में सुख-संपदा-प्रभुता एवं स्वाभिमान से दीप्त देखना चाहते थे उन्होंने 'सरस्वती' के लेखों में चीन और जापान जैसे देशों के युवाओं की कर्मशीलता को देशवासियों के सामने प्रस्तुत किया चीन के विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर प्रशिक्षण पाते हैं। ऐसा करते हुए वे देश के विभिन्न भागों में विज्ञान विकास के नए-नए रूपों का अध्ययन कर उन्हें अपने देश में लगाना चाहते हैं, इस क्षेत्र में चीन और भारत की संपन्न एवं प्राचीन सभ्यता, वर्तमान विपन्नता, जनमानस की निष्क्रियता आदि का वर्णन कर भारत की स्वयं नई पीढ़ी को जागृत करने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार जापान की महिला-शिक्षा के विविध आयामों में नारी का राष्ट्र निर्माण में योगदान का निरूपण करते हुए वे भारत में स्त्री-शिक्षा के अनेक आयामों का प्रारंभ चाहते हैं, जापानी स्त्री गृहणी, सुशिक्षित कर्मिक, परिश्रमी, श्रमिक, सामरिक उपकरणों की निर्माता एवं सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त पुरुष के समान हर प्रकार से सक्षम नारी है उनका नारी जागरण भारत की नारी की समस्त शिक्षा का आग्रही था।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आचार्यत्व का महत्त्वपूर्ण पक्ष भाषा एवं साहित्य का रहा। वे भाषारूढ साहित्य के गहन अध्येता थे किंतु वे सामान्य साहित्यकारों जैसे साहित्यकार नहीं थे वे शिक्षक, चिंतक और क्रांतिकारी थे, द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में अपने लेखों तथा अन्य विद्वानों के लेखन द्वारा साहित्य और साहित्य के इतिहास को परंपरा की रूढ़िबद्धता से अलग वैज्ञानिक तर्क पर विश्लेषित करने का कार्य किया वे भाषा की व्याकरणिक शुद्धता के जितने आग्रही थे उतने ही भाषा

की सरलता, सहजता, क्षेत्रीयता और रवानगी के भी हिमायती थे अपने युग की पृष्ठभूमि में तथा देश-विदेश के साहित्य के अध्ययन से वे भाषा की परा शक्ति को पहचान गए थे। इसी लिए वे हिंदी भाषा को युग की विज्ञान चेतना को वहन करने की अद्‌भुत क्षमता और ऊर्जा से युक्त बना रहे थे। भाषा को लेकर उनका नजरिया व्यावहारिकता था। वे सहज आम बोलचाल की भाषा के समर्थक तो थे परंतु व्याकरण एवं संरचना के प्रति जागरुक थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा को समाज और जाति से जोड़ कर देखा। हर भाषा का जातीय रूप होता है। अतः हर साहित्य का जातीय रूप होता है। द्विवेदी जी ने भाषा, समाज और साहित्य में घनिष्ठ और अनिवार्य संबंध देखा, वे भाषा-साहित्य को ''गतिरुद्ध, रूढ़ या जड़ न मानकर उसे परिवर्तनशील अवरोध पैदा करने वाली तथा अवरोध हटाने वाली'' इकाई मानते हैं, इसीलिए उन्होंने ब्रजभाषा के रीति साहित्य को उसकी परंपरा को आधुनिकता को साहित्य के लिए हितकर नहीं पाया अतः उसका विरोध किया, वे भाषा और साहित्य में नव्यत्ता के आग्रही थे। उन्होंने युग को कहा ''आंख उठाकर इन देशों को देखे, कि कैसे साहित्य ने वहां की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में परिवर्तन कर डाले—शासन में उथल-पुथल कर दी और अनुदार धार्मिक भावों को उखाड़ फेंका।'' तोप-बम से भी ज्यादा शक्तिशाली साहित्य की इस विशेषता को वे हिंदी में जगाने के लिए यत्नशील थे उन्होंने साहित्य के प्रभाव को आरमीनिया देश के कवि 'रफी' का दृष्टांत सामने रखा, भारत और आरमीनिया की जातीय स्थिति एक जैसे पादाक्रांत, आहत एवं अपमानित थी आरमीनिया के साहित्यकार 'रफी' पर विदेशी शासकों ने अत्याचार किए और 'रफी' ने वहां अपनी कहानियों, लेखों कथा साहित्य आदि से संकट ग्रस्त अपने सजातियों को दमन के खिलाफ सक्रिय होने की प्रेरणा दी द्विवेदी जी हिंदी साहित्य में भी यही जज्बा देखना चाहते थे।

द्विवेदी जी की समीक्षा दृष्टि भी वैज्ञानिक, तर्क संगत और निष्पक्ष थी साहित्य समीक्षा में वे रूप और विषय वस्तु के साथ अर्थ तथा यहां तक गंभीरता, भाषा की अर्थवत्ता को भी महत्त्व प्रदान करते थे, साहित्य को वे एकांत साधना नहीं मानते थे साहित्य के जातीय महत्त्व के प्रति द्विवेदी जी सजग थे। लेखन और साहित्य का विकास उसकी सरलता, सहजता और मन को छू लेने वाली प्रभाव क्षमता से हो सकता है द्विवेदी ने लेखन के लिए उत्साहित युवा को जो सलाह दी थी वह उनकी साहित्यिक दृष्टि का सार कही जा सकती है उन्होंने कहा था ''घर में माता से बात करना कौन सिखाता है इसी तरह जो बोलो सो लिखो'' इस उक्ति में द्विवेदी जी का काव्य-शास्त्र और काव्यादेश समाया हुआ है साहित्य के अंतरंग को परखने के लिए वे रचनाकार को कल्पना और उसके अंतर के मन को भी परखना चाहते हैं अपने 'प्रतिभा' नामक निबंध में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी में संभवतः पहली बार रचनाधर्मिता की मनोभूमिका की महत्ता को परखना चाहा था। साहित्य के जातीय स्वरूप की गंभीरता को पहचानने की वजह से उन्होंने हिंदी जगत को विदेशी साहित्य को पढ़ने का सुझाव दिया। सरस्वती पत्रिका में द्विवेदी जी देश-विदेश के साहित्यकारों समाज के कर्मवीरों और इतिहास दुर्लभ एवं प्रेरक चरित्रों की जीवनियां प्रकाशित की, पुरातत्व एवं इतिहास की खोज द्वारा टूटती स्थापित मान्यताओं को 'सरस्वती' में स्थान दिया, 'पेरु का सूर्य मंदिर' जैसे निबंधों में भारतीयों की विदेशों में उपस्थिति, भारतीय संस्कृति के अमेरिका की जनजातियों में अवशेष आदि से युक्त रचनाओं को 'सरस्वती' में प्रकाशित कर भारतीयों को अपने अतीत पर सम्मान और वर्तमान को संपन्न एवं गौरवशाली बनाने का संदेश दिया, विदेशी आलेखों को उनके मूल एवं अनूदित रूप में द्विवेदी ने प्रकाशित किया साहित्य एवं भाषा के सजग पैरोकार द्विवेदी जी 'सरस्वती' पत्रिका में विदेशी साहित्य के प्रकाशन के स्थान पर विदेशी विज्ञान, तंत्र-यंत्र तकनीक से संबद्ध लेख अधिक छापे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी अपनी पत्रकारिता की समीक्षा में कठोर शिक्षक के समान थे। वे निर्भीक आलोचक थे। मिश्र बंधुओं के इतिहास में कवियों के वर्गीकरण में वैज्ञानिक तर्क दृष्टि के अभाव की आलोचना की। इसी प्रकार हिंदी-उर्दू संघर्ष को लेकर होने वाले विवादों पर द्विवेदी जी मुस्लिम विद्वानों के तर्कों को खोखला कहने का साहस भी दिखाया। हरिभाऊ उपाध्याय ने द्विवेदी जी समीक्षा चेतना पर वही सही टिप्पणी की, द्विवेदी जी निर्भीक समालोचक हैं वैसे ही साहित्यिक योद्धा भी। (महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्त्व-भारत यायावर, पृ. 44) महावीर प्रसाद द्विवेदी की आचार्य गरिमा का अवागहन मेरे बस की बात नहीं है। कालिदास कपूर के शब्दों के उद्धरण द्वारा मैं भी इस युग नायक आचार्य को नमन करती हूं, ''हिंदी परतंत्र भारत की एवं उपेक्षित बोली से उठकर स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर मान्य हुई'' (वही पृ. 151) यह महावीर प्रसाद द्विवेदी की कलम वाली एवं दृष्टि का कमाल था।

सी-3/161, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान हिंदी और मलयालम के दो युग निर्माता साहित्यकार

प्रो. एस. तंकमणि अम्मा

आधुनिक हिंदी और मलयालम के दो युगनिर्माता साहित्यकार हैं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान। उन्नीसवीं शती के अंतिम और बीसवीं शती के आरंभिक दशकों में, यानी भारत के नवजागरण-सुधार काल में हिंदी और मलयालम साहित्य क्षेत्र में इन युग प्रवर्तक साहित्यकारों का प्रादुर्भाव हुआ था। दोनों ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल पर हिंदी और मलयालम के साहित्य को नया दिशा-निर्देशन किया तथा अनेकों कवियों और लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया। तभी तो दोनों अपने-अपने साहित्य के युगनिर्माता साहित्यकार कहलाए। हिंदी में वह युग 'द्विवेदी युग' नाम से अभिहित हुआ तो मलयालम में वह 'केरलवर्मा युग' नाम से अभिहित हुआ। दोनों की तुलना यहां संगत प्रतीत होती है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864-1938)—भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा सृजित आधुनिक हिंदी साहित्य धारा के पालन-पोषण का दायित्व अपने कंधों पर उठाकर अपनी साहित्य रचनाओं तथा 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य को नूतन उन्मेष और नया चैतन्य प्रदान किया था। खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी उनको जाता है। साहित्य में नवजागरण और समाज सुधार के लक्षण भारतेंदु युगीन साहित्य में भी लक्षित हुए थे किंतु उन्हें युगानुरूप ढालने का सराहनीय प्रयास द्विवेदी जी ने किया था। कविता को मनोरंजन के धरातल से ऊपर उठा कर जीवनोपयोगी बनाने की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया था। इस प्रकार द्विवेदी जी ने तत्कालीन कवियों को काव्य-सृजन द्वारा युग निर्माण करने की प्रेरणा प्रदान की और उनका पथ प्रदर्शन भी किया। एक पूरे युग पर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ने वाले उनके युग को समीक्षकों और साहित्यकारों ने 'द्विवेदी युग' नाम दे दिया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य में आचार्य द्विवेदी का अहम् स्थान है। भारतेंदु युग और छायावाद युग के बीच की कड़ी के रूप में तत्कालीन हिंदी पद्य और गद्य साहित्य को उन्होंने रूपायित किया और संपुष्ट बनाया।

'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में द्विवेदी जी ने हिंदी की बड़ी सेवा की। सन् 1903 से 1920 तक वे 'सरस्वती' के संपादक रहे और उसके बाद भी 1936 तक वे बराबर उसमें लिखते रहे। द्विवेदी जी और 'सरस्वती' पत्रिका का सरोकार इतना सुदृढ़ हो गया था कि यह मानने में कोई आपत्ति नहीं रही कि द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का निर्माण किया तथा 'सरस्वती' ने द्विवेदी जी का।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति के रूप में भी उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के संपोषण का कार्य किया।

प्रेरक साहित्यकार—एक साहित्यकार, पत्रकार तथा संपादक के रूप में द्विवेदी जी की महानता इस बात में खूब निखर उठती है कि उन्होंने कितने ही साहित्य प्रेमियों को रचना क्षेत्र में सक्रिय बनाया। इस ओर संकेत करके महाप्राण निराला ने लिखा है—''बाबू मैथिलीशरण जी, श्री सनेही जी, पं. रूपनारायण जी पांडेय, पं. रामचरित जी उपाध्याय, पं. लोचन प्रसाद जी पांडेय, ठाकुर श्री गोपाल शरण सिंह जी, बाबू श्री सियारामशरण गुप्त आदि सुकवियों को द्विवेदी जी ने काफी प्रोत्साहन दिया और ये सब कवि उस काल की 'सरस्वती' ही की स्टाइल के सुकवित हैं।'' विविध विषयों पर कविता, लेख आदि लिखने का आह्वान उन्होंने लेखकों से किया। ''महावीर का प्रसाद'' पाकर इस युग में कई कवि और लेखक साहित्य क्षेत्र में उभर कर आए।

'साकेत' के प्रणयन के पीछे की प्रेरक शक्ति—मैथिलीशरण गुप्त जी ने द्विवेदी जी के चरण तले बैठ कर काव्य रचना की थी। उस दौरान महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'काव्येर उपेक्षिता' शीर्षक लेख लिख कर कवियों द्वारा उपेक्षिता उर्मिला की ओर संकेत किया था। इससे प्रेरणा पाकर आचार्य द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक लेख लिखा। यह लेख उन्होंने सन् 1908 की 'सरस्वती' में भूजंग भूषण भट्टाचार्य के नाम से प्रकाशित किया था। गुप्त जी को 'साकेत'

लिखने की प्रेरणा द्विवेदी जी के इस लेख से ही मिली थी।

साहित्य-सृजन—द्विवेदी जी का सृजन क्षेत्र व्यापक रहा है। उन्होंने कई मौलिक एवं अनूदित ग्रंथों की रचना की है। काव्य-मंजूषा, सुमन, कविता कलाप आदि उनके प्रमुख काव्य संकलन हैं। 'हिंदी कालिदास की आलोचना', 'नाट्य शास्त्र', 'हिंदी भाषा की उत्पत्ति', 'रसज्ञ रंजन', 'विचार विमर्श' आदि उनकी गद्य कृतियां हैं। इनके अलावा उन्होंने इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, पुरातत्व, समाजशास्त्र जैसे वैविध्यपूर्ण विषयों पर भी अपनी सफल लेखनी चलाई है। हिंदी साहित्य-संपदा को वैविध्यपूर्ण और सुसमृद्ध बनाना ही उनका लक्ष्य रहा था। अनुवादक के रूप में भी द्विवेदी जी को काफी सफलता मिली है। 'भामिनी विलास', 'अमृत लहरी', बेकन निबंधावली', 'रघुवंश', 'कुमारसंभव', 'मेघदूत' आदि उनकी अनूदित कृतियां हैं। इन अनूदित कृतियों का गहरा प्रभाव तत्कालीन हिंदी साहित्य जगत पर परिलक्षित होता है।

वस्तुतः महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी इंद्रधनुषी प्रतिभा का प्रसार कर हिंदी साहित्य के पद्य और गद्य दोनों क्षेत्रों को सुसमृद्ध किया तथा तत्कालीन लेखकों का पथ-प्रदर्शन करके उन्होंने एक नए युग का निर्माण ही किया था।

केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान (सन् 1845-1915)—मलयालम साहित्य के युगनिर्माता साहित्यकारों में केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। मलयालम साहित्य क्षेत्र में केरलवर्मा का पदार्पण एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उनके उदय से मलयालम साहित्य की अरुणोदय वेला आलोक भरे प्रभात में बदल गई थी। उनके युग—यानी—'केरलवर्मा युग' से मलयालम साहित्य के नवयुग का शुभारंभ होता है। अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से आधी शती तक वे मलयालम साहित्य क्षेत्र के सार्वभौम सम्राट रहे।

संक्षिप्त जीवन वृत्त—केरलवर्मा का जन्म सन् 1845 में चंगनाश्शेरी के लक्ष्मीपुरम् राजमहल में हुआ। दस वर्ष की आयु से वे अपने मातुल के साथ तिरुवनंतपुरम के राजमहल में रहे। राजमहल में रह कर उन्होंने संस्कृत भाषा, व्याकरण, साहित्य आदि की शिक्षा प्राप्त की। अंग्रेजी भाषा पर भी उन्होंने अथाह पांडित्य प्राप्त किया। 1859 में उनका विवाह आट्टिंगल राजमहल की राजकुमारी लक्ष्मीबाई के साथ हुआ। 1875 से 1880 तक राजदंड के परिणामस्वरूप उन्हें कारावास भोगना पड़ा। कारावास के दौरान उन्होंने 'क्षमापणसहस्रं', 'यमप्रणामशतकं' जैसे संस्कृत काव्यों की रचना की। तिरुवितांकूर सरकार द्वारा आयोजित पाठ्य-ग्रंथ-समिति के सदस्य तथा अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने प्रभूत मात्रा में गद्य रचनाओं की रचना स्वयं करके तथा दूसरों से कराके मलयालम साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि की।

साहित्य-सृजन—उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों से बीसवीं शती के प्रथम दशक तक का युग 'केरलवर्मा युग' नाम से अभिहित है। इस दौरान मलयालम साहित्य क्षेत्र के वे प्रजापति रहे। उनके पथ-प्रदर्शन में ही तत्कालीन मलयालम गद्य और पद्य की प्रवृत्तियां रूपायित हुईं। अपने वैविध्यपूर्ण साहित्य सृजन के बल पर ही नहीं, अपने प्रभावशाली राजकीय व्यक्तित्व के बल पर भी उन्होंने उस युग के मलयालम साहित्य का अधीशत्व ग्रहण कर लिया था।

काव्य कृतियां—'मयूरसंदेशम्', 'श्रीपद्मनाभ-पदपद्मशतकम्', 'दैवयोगम' आदि केरलवर्मा की प्रमुख काव्य कृतियां हैं। 1894 में क्लासिक परंपरा के अनुकूल उन्होंने 'मयूर संदेशम्' नामक संदेश काव्य की रचना की। स्वानुभव की अनुभूतियों को आधार बना कर ही उन्होंने यह संदेश काव्य रचा था। एक बार राजदंड के कारण कवि को अपनी प्रियतमा से बिछुड़ कर हरिप्पाटु नामक स्थान के कारागार में रहना पड़ा। वहां रह कर तिरुवनंतपुरम के राजप्रासाद में विरहिणी रहने वाली अपनी प्रियतमा को वे एक मयूर द्वारा संदेश भेजते हैं—यही काव्य की विषय वस्तु है। मलयालम साहित्य जगत में यह कृति खूब चर्चित हुई थी।

'श्रीपद्नामपदपद्मशतकम्' उनका एक खंडकाव्य है जिसमें कवि राजमहल में व्यतीत हुए अपने राजसी जीवन का वर्णन करने के उपरांत अपने द्वारा किए गए पापों का गिन-गिन कर बयान करता है और अंत में पश्चात्ताप प्रकट करते हुए अपने को कुल देवता श्रीपद्मनाभ स्वामी के चरण कमलों पर समर्पित करता है।

'दैवयोगम' नामक काव्यकृति में क्लासिक परंपरा से विमुख होकर रोमांटिसिज्म की ओर उन्मुख कवि का दर्शन मिलता है। साधारण जन जीवन से कथावस्तु की स्वीकृति, अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति, शैली की रोचकता आदि के कारण इस कृति में रोमांटिक कविता के संकेत मिलते हैं।

वस्तुतः 'केरलवर्मा युग' में मलयालम कविता ने एक युग संगम को ही पहचाना। एक ओर कविता ने पुरानी परंपरा को अपनाया तो दूसरी ओर उसने नई परंपरा की स्थापना भी की।

गद्य-कृतियां—'विज्ञान मंजरी', 'सन्मार्गदीपम्', 'धनतत्त्वनिरूपणं', 'लोकत्तिंटे शैशवावस्था' (दुनियां की शैशव दशा), 'इंडिया चरित्र कथकल्', 'तिरुवितांकूर चरित्र कथकल्', 'अकबर', 'महच्चरित संग्रहं' आदि आपकी मुख्य गद्य कृतियां हैं। इनमें अधिकांश अनूदित कृतियां हैं।

केरलवर्मा ने कालिदास के 'शांकुतलम्' का मलयालम में अनुवाद किया था। उनका यह अनुवाद पंडितों के बीच इतना चर्चित और प्रशंसित हुआ कि वे 'केरल कालिदास' नाम से प्रसिद्ध हो गए।

पत्रिकाओं में लेखन—'विद्याविनोदिनी' नामक पत्रिका में केरलवर्मा ने विविध विषयों पर लेख लिखे और दूसरे प्रतिभावान युवकों को लिखने की ओर प्रेरित भी किया। मलयालम गद्य लेखन विशेष कर निबंध विधा के आरंभ और विकास में केरलवर्मा तथा उनके युग के लेखकों की महती भूमिका रही है।

'भाषा पोषिणी सभा' के अध्यक्ष के रूप में भी केरलवर्मा ने मलयालम भाषा और साहित्य के संपोषण में अपूर्व योगदान दिया।

तुलना—उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों तथा बीसवीं शती के प्रारंभिक दशकों के दौरान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य और साहित्यकारों को पथ प्रदर्शन देकर हिंदी साहित्य का जो नवनिर्माण किया, वही कार्य उस काल सीमा में मलयालम में केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान ने किया है। दोनों युग प्रवर्तक साहित्यकारों ने मातृभाषा और साहित्य के प्रति प्रेम और निष्ठा को संजोकर हिंदी और मलयालम साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य निर्माण किया तथा अपने युग के अन्य लेखकों को उस ओर प्रेरित भी किया। दोनों अपने-अपने युग के साहित्य जगत के सार्वभौम सम्राट रहे और अपनी-अपनी भाषा के युग निर्माता साहित्यकार कहलाए।

द्विवेदी जी एक साधारण परिवार में जन्मे-पले सीधे-सादे सरल प्रकृति के किंतु स्वाभिमानी और निर्भीक व्यक्ति थे। राज परिवार की सुख सुविधाओं के बीच जन्म लेने और पलने के बावजूद भी केरलवर्मा का व्यक्तित्व भाषा प्रेमी और साहित्यसेवी का था। दोनों ही उच्चकोटि के पत्रकार, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक और गद्य-पद्य परिष्कर्ता थे। दोनों की नैतिकता का प्रभाव युगीन साहित्य पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है। हिंदी और मलयालम के गद्य और पद्य की भाषा और शैली को सुधारने का सराहनीय प्रयास दोनों ने किया है। 'सरस्वती' के लेखक और संपादक के रूप में द्विवेदी जी दशकों तक हिंदी भाषा और साहित्य के संपोषण में लगे रहे तो करीब पांच दशकों की अवधि तक 'विद्याविनोदिनी' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से केरलवर्मा भी मलयालम साहित्य क्षेत्र में छाए रहे। द्विवेदी जी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष के रूप में हिंदी की सेवा की तो केरलवर्मा ने 'भाषा-पोषिणी सभा' के अध्यक्ष तथा पाठ्य-ग्रंथ-समिति के सदस्य और अध्यक्ष की हैसियत से मलयालम भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए 'भगीरथ प्रयत्न' किया।

समवेततः हिंदी साहित्य के इतिहास में जो स्थान आचार्य द्विवेदी तथा उनके युग को प्राप्त है, वही स्थान मलयालम साहित्य के इतिहास में केरलवर्मा और 'केरलवर्मा युग' को प्राप्त है।

धन्य-धन्य हैं आचार्य द्विवेदी जी तथा केरलवर्मा जी!!

मणिमंदिरम्, आनयरा, तिरुवनंतपुरम-695029

कविता

हिंदी के चिंतक उन्नायक

डॉ. किशोरीशरण शर्मा

हिंदी के चिंतक उन्नायक,
भाषाविद्, भाषा अधिनायक,
अद्भुत मेधा विषम परिश्रम,
'सरस्वती' के सुधि संपादक!
महावीर प्रसाद द्विवेदी
का अवदान अतुल्य धरोहर,
हिंदी को अभिनव स्वरूप दे
किया आप ने मधुर मनोहर।
हिंदी को विस्तार मिला तब,
विविध बोलियां एकल स्वर में,
स्वतंत्रता की क्रांति-बोध को
जाग्रत की हर गांव, शहर में।
कविता कथा कहानी नाटक
औ निबंध संस्मरण समीक्षा
सभी विधाओं को शुचि मग दे,
कवि, लेखक को भी दी दीक्षा।
हिंदी आज विश्व-वाणी में
है नूतन पहचान बनायी,
शत-शत नमन द्विवेदी जी को,
श्रद्धांजलि देते अनुयायी।

'साहित्यांगन', 13 रेवती विहार, सेक्टर -14, इंदिरा नगर, लखनऊ–226016 (उ. प्र.)

खड़ी बोली के पुनर्प्रतिष्ठापक एवं राष्ट्रीय चेतना के ध्वज वाहक

प्रो. डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

युगपुरुष भारतेंदु हरिश्चंद्र (सन् 1850-1885 ई.) तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864-1938 ई.) भारतीय नवजागरण के पुरोधा हैं। 74 वर्ष की उनकी जीवन-यात्रा में उन्होंने जो युगांतरकारी कार्य किया, उससे भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। भारतीय नवजागरण को त्वरित गति प्रदान करके भाव और भाषा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन करने में आचार्य द्विवेदी पूर्णतः सफल हुए।

खड़ी बोली की लोकप्रियता एवं व्यापकता को पहचानने में उनकी दूरदृष्टि अद्‌भुत थी। गद्य भाषा के रूप में खड़ी बोली के बढ़ते कदम को देखकर द्विवेदी जी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रज की जगह खड़ी बोली की पुनर्प्रतिष्ठा की। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं के गहन ज्ञान ने उनको युग-निर्माण की दृष्टि दी। सन् 1903 से उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन करना शुरू किया। इस पत्रिका ने केवल हिंदी भाषा का परिमार्जन ही नहीं किया वरन् उसने हिंदी के सहृदय पाठकों को रुचि-परिष्कार भी किया। नए-नए विषयों को 'सरस्वती' ने प्रश्रय दिया तो पाठकों का ज्ञानवर्धन होता रहा। भाव और भाषा की नवभंगिमा ने नव-साहित्य-संस्कार को विकसित किया। 'सरस्वती' का यह अद्‌भुत वरदान है कि हिंदी को प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद प्राप्त हुए। प्रेमचंद ने लोकजीवन से ऊर्जा ग्रहण कर लोकवाणी को मधुमय गद्य का जामा पहनाया तो हिंदी का गद्य विलास नर्त्तन करने लगा। जन साधारण का जीवन जनभाषा में प्रस्तुत हुआ तो हिंदी का गद्य विश्व स्तर को छू सका। यह युगपुरुष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादन-कला का जादू है कि प्रेमचंद ने उर्दू से बढ़कर हिंदी का पोषण-संवर्द्धन किया। कथा साहित्य में प्रेमचंद का भव्य प्रवेश आधुनिक यथार्थवादी परंपरा को सुदृढ़ आधार दे सका और खड़ी बोली गद्य का प्रांजल रूप उभर आया।

प्रसाद ने काव्य भाषा को मोहक बनाया। उनका गद्य भी काव्य भाषा के निकट पहुंच गया। प्रसाद की प्रतिभा के अंकुर स्वच्छंदतावाद में फूटे थे। मगर उसे पहले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के उपदेश से कविमय इतिवृत्त प्रधान काव्यधारा को प्रवाहित करने में दत्तचित्त हुए। कविता-कामिनी ब्रज से विदा लेकर खड़ी बोली को अपनाने में अग्रसर हुई। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, नाथू राम शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों ने आचार्य द्विवेदी के दिखाए मार्ग पर चल कर हिंदी काव्य गंगा के प्रबल प्रवाह को आगे बढ़ाया।

द्विवेदी जी का युग स्वाधीनता संग्राम का युग था। पराधीनता से पिंड छुड़ाने की छटपटाहट तीव्र होती जा रही थी। जनांदोलन की चिनगारियां फूट गईं। इसी समय द्विवेदी जी हिंदी साहित्यकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर चमक उठे।

द्विवेदी जी जब गद्य-पद्य की भाषा को एक बनाने का कार्य कर रहे थे, तब पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी हिंदी के चतुर्मुखी विकास के लिए लेखनरत थे। पुराने साहित्य की खोज, हिंदी के ऐतिहासिक विकास क्रम को वैज्ञानिक आधार देकर पुष्ट करने का लेखन कार्य आदि वास्तव में युगांतरकारी कार्य थे। गुलेरी जी ने कहानी, निबंध, संस्मरण, इंटरव्यू, समीक्षा, जीवन चरित तथ काव्य आदि विविध विधाओं के पोषण-संवर्द्धन में अपना समय लगाया। गुलेरी जी की प्रतिभा का आकलन करते हुए डॉ. मनोहर लाल ने ठीक ही लिखा—''अपने कृतित्व की वरिष्ठता के कारण वह द्विवेदी युग के आधार स्तंभ सिद्ध होते हैं।''

साहित्य के विकास के साथ-साथ सामाजिक उद्धार भी द्विवेदी जी का लक्ष्य था। आचार्य द्विवेदी जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का आकलन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक ही बताया—''आरंभ में यह कह देना उचित होगा कि द्विवेदी जी सीमित अर्थ में साहित्यकार नहीं है। उनका उद्देश्य हिंदी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना का संचार करना रहा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह समाज विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, दर्शन शास्त्र और साहित्य इन सभी के विकास के लिए प्रयत्न करते हैं। साहित्य उनमें से एक है।''

कवि, समालोचक, निबंधकार, अनुवादक तथा संपादक के रूप में आचार्य द्विवेदी जी ने जो कुछ लिखा वह युग धर्म से ओतप्रोत है। इनके कई ग्रंथ संस्कृत तथा अंग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद हैं। संस्कृत से अनुवाद, टीका व संक्षेप के लगभग 11 ग्रंथ जिनमें कुमारसंभव सार, नैषधचरित चर्चा, विक्रमांकदेव चरित चर्चा, मेघदूत टीका, किरातार्जुनीय टीका, विनय-विनोद आदि हैं। अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद—स्वाधीनता, शिक्षा, बेकन विचार रत्नावली, सोहाग राज आदि। मौलिक कृतियां—कविता संग्रह—सुमन, कविता-कलाप, द्विवेदी काव्य माला, काव्य मंजूषा आदि। निबंध संग्रह—लगभग 16 ग्रंथ जिनमें अद्‌भुत आलाप, आध्यात्मिकी, आलोचनांजलि, कोविद कीर्तन, नाट्यशास्त्र, प्राचीन चिह्न, प्राचीन पंडित और कवि, पुरातत्त्व प्रसंग, रसज्ञ रंजन आदि प्रमुख हैं। विविध—आख्यायिका सप्तक, चरित चर्चा, जल-चिकित्सा, वनिता विलास, विदेशी विद्वान, विज्ञान वार्ता, वैचित्र्य

चित्रण, संपत्ति शास्त्र, हिंदी महाभारत आदि।

हिंदी के आधुनिक साहित्य के दिशा-निर्देश करने में द्विवेदी जी के संपादकत्व में प्रकाशित 'सरस्वती' और गुलेरी जी के संपादकत्व में प्रकाशित 'समालोचक' जैसी पत्रिकाओं का योगदान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

उस दौर में भारतीय भाषाओं एवं साहित्य के विकास को श्रेय करने वाले स्रोत साधन प्रकट हुए—मुद्रण का आविर्भाव, आधुनिक यांत्रिकी शिक्षा पद्धति का व्यापक प्रचलन, पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार-प्रसार। इन स्रोतों संसाधनों के सम्मिलित प्रभाव से गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। उन्होंने अपने समकालीन मलयालम के युग पुरुष केरल पाणिनी के नाम से अभिहित ए.आर. राजराज वर्मा की भांति भाषा परिष्कार करके युग-धर्म का पालन किया।

द्विवेदी जी का कोई भी निबंध ऐसा नहीं जो आचार्यत्व का स्वर न मुखरित करता हो। 'साहित्य की महत्ता' नामक निबंध कई शिक्षाएं देता है। जर्मनी, रूस, इटली आदि देशों से स्व भाषा विधान सीखने का उपदेश देते हैं। उनका दृढ़ मत है कि ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोक भाषा ही होनी चाहिए। आचार्य द्विवेदी जी के उपर्युक्त कथन से कौन असहमत हो सकता है। अपने सुविचारित चिंतन से उन्होंने लेखकों व कवियों को ही नहीं बल्कि राष्ट्रनिर्माण में प्रवृत्त सभी व्यक्तियों को नई दिशा प्रदान की। रेलवे की नौकरी को त्याग कर हिंदी के पोषण-संवर्द्धन को जीवन का ध्येय बनाते हुए आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली को ऐसा खड़ा किया कि वह स्वतंत्र भारत की राष्ट्र वाणी के पद पर आरूढ़ हो सकी।

लोगों में राष्ट्रीयता का अभाव देखकर उन्होंने ''जै जै प्यारे देश हमारे'' में घोषित किया— ''जिसको निज गौरव तथा निज देश का न अभिमान है, वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।''

द्विवेदी जी और उनके दिखाए मार्ग पर चल रहे गुप्त जी जैसे कवियों ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया। यह मानवतावादी विचार 'यजुर्वेद' ने विश्व को पढ़ाया था— ''मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि'' अर्थात् मैं सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखूं।

भारतीयों को मानवतावादी संकल्पना की झलक निम्न पंक्तियों में प्राप्त होती है—

''सर्वे भवंतु सुखिना
सर्वे संतु निरामया।
सर्व भद्राणि पश्यंतु
मा कश्चिद दुख भाग् भवेत्।''

अर्थात् सभी प्राणी सुखी हो, रोग रहित हो, सब कल्याण को देखें और कोई भी दुखी न हो।

भारतीय चिंतन की यह अमृत धारा मैथिलीशरण गुप्त के 'मंगल घट' काव्य की पंक्तियों में बहती है—

''जाति, धर्म या संप्रदाय का
नहीं भेद व्यवधान यहां
सबका स्वागत, सबका आदर,
सबका सम सम्मान यहां।
राम, रहीम, बुद्ध, ईसा का सुलभ,
एक-सा ध्यान यहां
भिन्न-भिन्न मन संस्कृतियों के
गुण गौरव का ज्ञान यहां।''

ऐसे समय में देश प्रेम, भाषा प्रेम, मानव प्रेम आदि जगाने की आवश्यकता थी। यह कार्य साहित्यकारों ने किया जिसका नेतृत्व आचार्य द्विवेदी जी ने किया। भारतीय नवजागरण का यह महान समय था जब साहित्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ। इस काल खंड में देश प्रेम की भावना एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्राप्त हुई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ द्विवेदी युग जुड़ गया। काव्य-चेतना को स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ने का कार्य द्विवेदी जी ने किया।

द्विवेदी युग यानी सन् 1903 से सन् 1920 तक का सत्रह वर्ष भारतेंदु युग की अपेक्षा चाहे छोटा काल क्यों न रहा हो, इस काल में राजनीति, समाज, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में जो कुछ घटित हुआ वह सचमुच अभूतपूर्व था। राजनीति के क्षेत्र में इसी काल में बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले तथा महात्मा गांधी प्रकट हो गए थे। दयानंद सरस्वती ने 1875 में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना पहले ही कर दी थी। तिलक ने उसी समय ''स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'' का मंत्र दिया था। फलतः देश प्रेम की भावना की उत्ताल तरंगे उठीं।

स्वाधीनता संग्राम की भाव धारा के साथ-साथ समाज में क्रांतिकारी विचार उठे जो नवजागरण की ऊर्जा बनते गए। असंतोष और क्रोध की आग भड़क उठी। सामाजिक सुधारवाद, धर्मांधता के विरुद्ध पुकार, गुलामी और विदेशी सत्ता के विरुद्ध विगुल गूंज उठा—

''नहीं चहिए बुद्धि वैर,
भला प्रेम उन्माद यहां।
सब का शिव-कल्याण यहां है,
पावें सभी प्रसाद यहां।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य द्विवेदी और उनके मंडल के कवि भारतीय संस्कृति के अनुपम जीवन मूल्यों को आत्मसात करते हुए नवजागरण उत्पन्न कर सके। मातृभूमि के प्रति भक्ति जगाते हुए आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा—

''जहां हुए व्यास मुनि प्रधान
रामादि राजा अति कीर्तिमान
जो थी जनपूजित धन्यधान
वही हमारी यह आर्य भूमि है।''

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने अपने साहित्य प्रवर्त्तन से जो मार्ग प्रशस्त किया, वह आगे चल कर विभिन्न साहित्यिक धाराओं को उत्पन्न कर हिंदी को आगे बढ़ने की ऊर्जा और प्रेरणा दे सका। आचार्य द्विवेदी को खड़ी बोली का पुनर्प्रतिष्ठापक एवं राष्ट्रीय चेतना का ध्वजवाहक मानना सर्वथा समीचीन है।

वल्लआरश्क्ल हाउस, करणरंचेरी पी.ओ., ऊलेपी, केरल-688538

आचार्य द्विवेदी और उनकी कविता

ऋचा मिश्र

सरस्वती के अनन्य उपासक, हिंदी गद्य के संक्रांतिकाल में भाषा का परिमार्जन व परिष्कार करने का बीड़ा उठाने वाले प्रथम आचार्य महीवीर प्रसाद द्विवेदी का कृतित्व, उनके विराट व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप था। आधुनिक हिंदी की लगभग समस्त शैलियां, विधाएं तथा भाषा के मानक प्रतिमान, अपने सुचिर रूप तथा सर्वांगीण विकास के लिए आचार्य द्विवेदी के ऋणी हैं। ''भाषा के परिष्कार में द्विवेदी जी ने जैसा काम किया वैसा काम एक ही व्यक्ति ने किसी भाषा में न किया होगा। जितना युद्ध उन्होंने अकेले शरीर से किया, उतना हिंदी के किसी महारथी ने न किया होगा। हिंदी की इतनी अधिक उन्नति का सबसे अधिक श्रेय उसी महावीर को है। जिस समय उन्होंने अपनी लेखनी उठाई थी, उस समय हिंदी 'स्टुपिड हिंदी' कही जाती थी। क्या आज किसी को हिम्मत है कि वह हिंदी को इन शब्दों में संबोधित कर सके।''[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी गद्य के प्रारंभिक रूप को सुस्थिर करने का प्रयास किया। यद्यपि उनसे पूर्व भारतेंदु 'हरिश्चंद्र' हिंदी को ब्रज से प्रथक कर उसे देश की मुख्य धारा से जोड़ने का शुभांरभ कर चुके थे तथापि उनका कार्यक्षेत्र पत्रकारिता एवं नाटक विधा तक सीमित था। भाषा को समसामयिक चुनौतियों की वाणी देने की सामर्थ्य प्रदान करना ही उनकी चिंता का विषय था। द्विवेदी जी ने एक सजग अनुशासन के साथ बिखरी हुई भाषा के सूत्रों को जोड़ने का कार्य प्रारंभ किया। इस प्रक्रिया के दोहरे परिणाम हुए। एक ओर उनके समकालीन साहित्यकार भाषा-परिष्कार पर ध्यान देने लगे तथा दूसरी ओर साहित्य के विविध रूपों का समानांतर विकास होने लगा। स्वयं द्विवेदी जी ने इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लगभग सभी विधाओं में लिखा। निबंध, आलोचना, कहानी इत्यादि विधाओं में उनका लेखन बहुचर्चित रहा है, किंतु काव्य-क्षेत्र में उनके योगदान की चर्चा अधिक नहीं हुई है। उनका प्रारंभिक काव्य अधिकांशतः अनूदित है। अपने अनुवाद के द्वारा वे संस्कृत के महाकाव्यों के सौन्दर्य का रसपान हिंदी-पाठकों को कराना चाहते थे। 'वैराग्यशतक', 'श्रृंगारशतक', 'गीतगोविंद', 'महिम्नस्त्रोत', 'ऋतुसंहार' आदि के प्रारंभिक पद्यानुवाद मूल रचनाकारों की शब्दावली का तत्सम प्रधान हिंदी रूपांतरण है। भारतेंदु एवं श्रीधर पाठक आदि कवियों ने तत्कालीन काव्य भाषा को खड़ी बोली का जामा पहनाने का प्रयास अवश्य किया, किंतु वे पूरी तरह ब्रजभाषा के सम्मोहन से मुक्त नहीं हो पाए थे। द्विवेदी जी ने सन् 1902 में प्रकाशित 'कुमारसंभव-सार' में खड़ी बोली में काव्य-रचना का प्रयास किया—

''क्यों तुम एकादश रुद्र अधोमुख सारे?
हैं गए कहां हुंकार कठोर तुम्हारे?
क्या तुमसे भी बलवान देवगण कोई
जिसने तुम सब की आज प्रतिष्ठा खोई?।।''[2]

कविता की सरसता को बनाए रखते हुए उसे व्याकरण के नियमों के अनुरूप ढ़ालकर विभिन्न विचारों की वाहिनी बनाना उनका उद्देश्य था। संस्कृत के सरस काव्यों और भावावेगपूर्ण प्रार्थना-गीतों का उन पर विशेष-प्रभाव पड़ा। इसी कारणवश काव्य को परिभाषित करते हुए वे संस्कृत की सामाजिक शब्दावली में काव्यशास्त्रियों की भांति विवेचना का लोकसंवरण नहीं कर पाते—

''सुरम्य रूपे! रसराशिरंजिते!
विचित्र वर्णाभिरणे! कहां गई?
अलौकिकानंद विधायिनी!
महाकवींद्र कांते! कविते! अहो कहां?''[3]

काव्य रूपों की दृष्टि से द्विवेदी जी ने प्रबंध एवं मुक्तक दोनों में ही काव्य रचना की है। इसके अतिरिक्त उनकी फुटकर रचनाओं को गद्य काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। काल्पनिक पटकथा को कविता का रूप देते हुए उन्होंने 'सुतपंचाशिका', 'जंबुकीत्याग' जैसी रचनाएं लिखीं। किसी आदर्श अथवा महत्त्वपूर्ण विचार का विस्तारपूर्ण विवेचन करने वाली कविताओं में 'गर्दनकाव्य', 'समाचार पत्र संपादकस्तव' का नाम लिया जा सकता है। उनके मुक्तक काव्यों में रूपविधान व प्रतीकात्मकता की झलक यत्र-तत्र मिल जाती है।

''सुपकूप जम्बूफल गुच्छकारी,
इतै उठी श्याम घटा करारी।
महावियोगा नलदग्ध बाला,
उतै परी मूर्छित हवै बिहाला।।''[4]

कहीं-कहीं काव्य का अतिशय अलंकरण करने

के उद्देश्य से उन्होंने अलंकारों को प्रयासपूर्वक कविता में गूंथने की चेष्टा की है किंतु ऐसे स्थलों पर भाव-बोध में बाधा उत्पन्न होती है जैसे–

''सुबिच कैरव कैरव राज ही।
रुत सना रसना रस लाजही।।
सुनत सारस सारस गान ही
बधिक बान नवान न तान ही।।''[5]

द्विवेदी जी काव्य-शास्त्र में पारंगत नहीं थे, किंतु अपनी कतिपय रचनाओं में छंदों की विविधता, लयात्मकता तथा लोकप्रचलित छंदों को भी समाविष्ट करने का प्रयास किया है। संस्कृत तथा मराठी भाषा का भी यथेष्ट ज्ञान द्विवेदी जी को था। संस्कृत के बहुप्रचलित छंदों जैसे शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलंबित, वंशस्थ, मालिनी, वसंततिलका तथा इंद्रवज्रा का प्रयोग उन्होंने 'विहारवाटिका' में किया है। अपनी साहित्य-साधना के प्रारंभिक चरण में उन्होंने संस्कृत-छंदों का बहुतायत प्रयोग किया तथा अपने समकालीन साहित्य-प्रेनियों को संस्कृत व उससे इतर बांग्ला व उर्दू के छंदों के प्रयोग व प्रसार हेतु उत्साहित किया हिंदी में भावात्मक छंदों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी द्विवेदी जी का योगदान उल्लेखनीय है। साथ ही गद्य व पद्य दोनों को ही कविता के लिए उपयोगी मानने का उद्‌बोधन भी द्विवेदी जी ने प्रथम बार किया। 'सरस्वती' के 1901 के 'कविकर्त्तव्य' शीर्षक लेख में उन्होंने कहा कि ''गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है।'' वे साहित्यकारों में नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा को जाग्रत करना चाहते थे, इस कारण प्रत्येक ज्ञात व प्रतिष्ठित काव्य-रूप में रचना करते हुए भी उनका ध्यान सतत् नए प्रयोगों व विधानों के प्रति जागरुक था। देश और समाज की पीड़ा, धार्मिक आडंबर तथा सामाजिक भेद-भाव को भी वाणी देने में वे पीछे नहीं रहे–

''हे देश, सप्रण विदेशज वस्तु छोड़ो,
संबंध सर्व उनसे तुम शीघ्र तो दो।
मोड़ो तुरंत उनसे मुंह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस बात में।।''
××× ××× ×××
विद्या नहीं है, बल नहीं है, धन नहीं है,
क्या से हुआ है क्या, यह गुलिस्तान हमारा।''[6]

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली हिंदी के शैशवकाल में उसके रूप को सुस्थिर करने के गुरु कार्य का संवहन किया। एक जागरूक आचार्य की भूमिका का निर्वाह करते हुए उन्होंने युग की चुनौतियों को समझा और उसके अनुरूप अपने समकालीन रचनाकारों को उपयुक्त निर्देश भी दिए। 'रसज्ञरंजन' के पृष्ठ 26 में उन्होंने भावी काव्य के स्वरूप की रूपरेखा निर्धारित करते हुए कहा था कि ''यदि कविता में चमत्कार नहीं-कोई विलक्षणता नहीं तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।'' उनका यह कथन आने वाले समय में कितना सार्थक सिद्ध हुआ, यह सर्वज्ञात है। द्विवेदी जी ने स्वयं 'प्लेगस्तव राज' और 'समाचार पत्रों का विराट रूप' दो काव्यात्मक गद्य प्रबंध लिखे। प्रारंभिक प्रयास होने के कारण इनका रूप पूर्ण विकसित नहीं है तथा गद्यकाव्य के आवश्यक तत्वों का समायोजन भी भली प्रकार नहीं हो सका है किंतु काव्य के एक नए अंकुर का बीजारोपण करने की दृष्टि से द्विवेदी जी का योगदान अमूल्य है। यह निर्विवाद सत्य है कि आचार्य द्विवेदी साहित्य की अन्य विधाओं की भांति काव्य में भी नवीन प्रयोगों और परिवर्तनों के पक्षधर थे। कविता में हिंदी-उर्दू मिश्रित छंदों के व्यवहार को भी उन्होंने बढ़ावा दिया। उनके विचारानुसार ''आजकल के बोलचाल की हिंदी की कविता, उर्दू के विशेष प्रकार के छंदों में अधिक खुलती है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छंद प्रयुक्त होना चाहिए।''[7] उनकी दृष्टि एक ओर हिंदी के आधुनिक रूप को व्याकरण सम्मत करने की ओर सजग थी, वहीं वे अति-अनुशासन द्वारा साहित्य की स्वच्छंद सरणि को अवरुद्ध भी नहीं करना चाहते थे। यह उनके भगीरथ-श्रम का ही परिणाम था कि उनके काल में कविता शुष्क इतिवृत्तात्मकता और वर्णन प्रधान शैली से शनैः-शनैः मुक्त होती हुई सरस प्रांजलता और चमत्कार से युक्त हुई। मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत तथा जयशंकर 'प्रसाद' जैसे महाकवियों की काव्य-साधना इसी युग में पूर्ण-परिपाक पा सकी हिंदी-साहित्य द्विवेदी जी के इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

संदर्भ

1. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'हिंदी का सामाजिक साहित्य', पृ. 23
2. द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 315
3. द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 291
4. 'ऋतु तरंगिणी' द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 85
5. 'ऋतु तरंगिणी' द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 22
6. द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 423
7. रसज्ञरंजन, पृ. 3

डी-1/75, सत्य मार्ग, चाणक्यपुरी,
नई दिल्ली-110021

'संपत्ति शास्त्र' प्रणेता महावीर प्रसाद द्विवेदी

डॉ. रीता श्रीवास्तव

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसा जाना माना नाम जिसका परिचय देना अनावश्यक के साथ दुष्कर भी है। साहित्य सेवी महावीर प्रसाद द्विवेदी, देशप्रेमी महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिंदी भाषा परिष्कारक महावीर प्रसाद द्विवेदी या विविध वेदों एवं शास्त्रों के ज्ञाता महावीर प्रसाद द्विवेदी। इनमें से उनसे जुड़े किसी भी विशेषण को उठाया जाए तो गाथा बन जाएगा।

'संपत्ति शास्त्र' द्विवेदी जी की एक ऐसी रचना है जिसमें उनके ये सभी रूप एक साथ कमोवेश रूप में देखने को मिल जाते हैं एक ऐसा व्यक्ति जिसने हिंदी भाषा परिष्कार के साथ खड़ीबोली को हिंदी, कविता, में प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया, वह 'संपत्तिशास्त्र' पुस्तक लिखे सुनने में कुछ अचंभित करने वाला है। साहित्य सेवी को अर्थशास्त्र या अर्थ जगत से क्या काम? अर्थ व्यवस्था देखना अर्थ शास्त्रियों का काम है, और इसें दो राय नहीं कि आज भारत में अर्थशास्त्रियों की कमी नहीं भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुचारु रूप देने के लिए नित नए फैसले लिए जा रहे हैं और सुधारवादी अर्थ योजनाएं चल रही हैं पर एक शती से भी ऊपर हुए सन् 1908 में जब 'संपत्ति शास्त्र' की रचना हुई, स्थिति कुछ भिन्न थी। भारत परतंत्र था। देश को सुव्यवस्थित ढ़ंग से चलाने में अपना कोई हाथ न था तो इस दिशा में कदम नहीं उठाए गए तो कोई आश्चर्य नहीं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जितने हिंदी सेवी थे, उतने ही देश सेवी भी। वस्तुतः हिंदी को नव जागरण के अग्रदूतों में जिनका 'स्वभाषा प्रेम', 'देश प्रेम' में परिणित हो गया—महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उनके 'देश की बात' शीर्षक लेख से यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है—'हमारी भक्ति और हमारे प्रेम के आस्पद देश का अर्थ क्या है। देश कहते किसे हैं? किसकी भक्ति करने—किसका हित साधन करने से मनुष्य देश भक्त कहा जा सकता है? नगर, कस्बे, गांव, पेड़, पहाड़, जंगल, नदियां, तालाब, मकान, मंदिर, मसजिद आदि का समूह ही देश नहीं। ये सब देश के अंतगर्त हैं अवश्य, पर 'देश' के साथ जिस 'भक्ति' का ग्रंथ बंधन हुआ है उस भक्ति का संबंध एकमात्र इन्हीं से नहीं है। इस भक्ति और इस हित का संबंध देश में रहने वालों से है, पेड़, पहाड़, नगर और कस्बे से नही है। अच्छा तो देश में रहते कौन हैं? देश में रहते हैं कोई 70 फीसदी कृषक-किसान, खेतिहर, 11 फीसदी उद्योग-धंधा करने वाले, 6 फीसदी खनिज व्यापार और महाजनी करने वाले। बाकी 13 फीसदी में आपके वकील, बैरिस्टर, मास्टर, डिप्टी कलेक्टर आदि हैं। पर इस 'आदि' में भिखमंगों वेश्याओं, खानगी नौकरों, पुलिस और पलटन के जवानों और अनिश्चित पेशे वालों ही की संख्या अधिक है। गिनती में यह 12 फीसदी से भी अधिक है।... इस दशा में यदि देशभक्ति का अर्थ देश में रहने वालों पर भक्ति करने से है तो देशवासियों में अधिक संख्या किसानों की है। परंतु देश की उन्नति के लिए अब तक जो प्रयत्न किया गया है और इस समय कभी जो किया जा रहा है, उसके कितने अंश का संबंध किसानों से है।'[1] किसानों की ही बात उठाते हुए वे अपने लेख 'संपत्ति विवरण' में लिखते हैं—'हिंदुस्तान में प्रायः सभी किसान काश्तकार—ऐसे हैं जिनके पास न जमीन है न पूंजी। सिर्फ मेहनत ही उनके पास है। मेहनत करने के लिए भी उन्हें कभी-कभी मजदूर रखने पड़ते हैं। जमीन वे जमीदार की जोतते हैं पूंजी महाजन लगाते हैं। अतएव जो कुछ उनके खेत में पैदा होता है वह तीन जगह बंट जाता है। यथा—

(1) जमीन का लगान देना पड़ता है।

(2) मजदूरों को मजदूरी देनी पड़ती है।

(3) महाजन की पूंजी मुनाफे (सूद) समेत लौटानी पड़ती है।

इस तरह उनकी संपत्ति के लगान, मुनाफा और मजदूरी ये तीन भाग हो जाते हैं अथा यह कहिए कि उन्हें उसका तीन जगह वितरण करना पड़ता है। शेष जो कुछ बचता है वही उनकी मेहनत आदि का फल उन्हें मिलता है। कल-कारखानों की मदद से जो चीजें तैयार होती हैं, उनका भी इसी तरह वितरण होता है।

इस तरह हमने देखा कि द्विवेदी जी किसानों की दयनीय स्थिति से अत्यंत दुखी थे। वस्तुतः किसान ही क्या अधिकांश भारतीय गरीबी का दंश झेल रहे थे। गरीबी जैसे भारत का विशेषण बन गई थी। देशवासियों की इस दयनीय स्थिति से द्विवेदी जी अत्यंत दुखी तो थे ही, इससे अपने देशवासियों को कैसे उबारा जाए इसके चिंतन में लग गए। दूरदृष्टा द्विवेदी जी का ध्यान इस ओर गया कि यदि भारत की अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिए कुछ वैसे कदम उठाए जाएं जैसे इंग्लैंड और अमेरिका तथा अन्य समृद्ध देशों में उठाए जाते हैं तो भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। उनका मानना था कि भारत में गरीबी का एक कारण यह भी है कि यहां संपत्ति शास्त्र का ज्ञान बहुत कम लोगों को है और संपत्ति शास्त्र के सिद्धांतों के प्रचार की यहां बहुत आवश्यकता है। इस संबंध में 'संपत्ति शास्त्र' की भूमिका में लिखते हैं—संपत्ति शास्त्र पढ़ने और उस पर विचार करके उसके सिद्धांतों के अनुसार व्यवहार करने से यहां की दरिद्रता थोड़ी बहुत जरूर दूर हो सकती है। अच्छी तरह शिक्षा न मिलने और संपत्ति शास्त्र का ज्ञान न होने से हम लोग अपनी कमजोरियों को नहीं जान सकते, और देश की दशा क्यों खराब हो रही है, इसके कारणों को नहीं समझ सकते। बिना निदान

का ज्ञान हुए किसी रोग की चिकित्सा नहीं हो सकती। इतिहास इस बात की गवाही दे रहा है कि जिन देशों या जिन जातियों ने अपनी आर्थिक बातों का विचार नहीं किया—अपने देश के कला कौशल और उद्योग-धंधे की उन्नति के उपाय नहीं सोचे—उनकी दुर्दशा हुए बिना नहीं रही। अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारना ही इस समय हम लोगों का प्रधान कर्त्तव्य है। अनेक रोगों से पीड़ित और अभिभूत इस हिंदुस्तान के लिए इस समय यही सबसे बड़ी औषधि है।[3]

इस बात को समझने के बाद इस दिशा में उन्होंने ठोस कदम उठाने शुरू किए। उन्होंने देश-विदेश में लिखी गई अर्थशास्त्र की पुस्तकों का अध्ययन किया। जिसकी सूची उन्होंने संपत्ति शास्त्र की भूमिका में दी है।[4] पहले उन्होंने संपत्ति शास्त्र से संबंद्ध कई लेख लिखे।[5] बाद में उन्हें लगा कि इस विषय पर पुस्तक लिखना आवश्यक है और उन्होंने 'संपत्ति शास्त्र' पुस्तक लिखी, जिसका प्रकाशन सन् 1908 में हुआ। यह पुस्तक इंडियन प्रेस प्रयाग से छपी।[6]

इस पुस्तक की रचना में उन्होंने बहुत परिश्रम किया। उन्होंने केवल एतद् विषयक पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं किया अपितु अर्थशास्त्र संबंधी गूढ़ातिगूढ़ नियमों को समझ कर अपने देश के अनुरूप सिद्धांत निर्धारित किए। उनका मानना था अनेक प्रकार के व्यवहारों से जो अनुभव हुए है—जो तजरुबे हुए हैं—उन्ही के आधार पर संपत्ति शास्त्र के सिद्धांत निश्चित किए गए हैं। शास्त्र की दृष्टि से ये सिद्धांत सब सच हैं। तथापि विशेष प्रसंग आने पर किसी विशेष स्थिति का विचार जब इन सिद्धांतों के अनुसार करना होता है तब और भी अनेक बातों की तरफ ध्यान देना पड़ता है। देश स्थिति, समाज स्थिति, राज्य-प्रणाली आदि का विचार करके संपत्ति शास्त्र के सिद्धांत प्रयोग में लाए जाते हैं।[7] उन्होंने कहा यद्यपि हमने पूर्वोक्त पुस्तकों और समाचार पत्रादिकों का मंथन करके यह पुस्तक लिखी है तथापि इसमें जिन बातों का विचार हमने किया है और जो सिद्धांत हमने निकाले हैं उनकी जिम्मेदारी सर्वथा हमारे ही ऊपर है। क्योंकि हमने और ग्रंथकारों की सिर्फ वही बातें ग्रहण की हैं जिन्हें हमने निर्भ्रांत समझा है, अथवा जो इस देश की सांपत्तिक अवस्था पर घटित हो सकती है।[8]

यह पुस्तक दो खंड़ों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। फिर प्रत्येक खंड को कई भागों में बांटकर विषयांश का विवेचन अलग-अलग परिच्छेदों में किया गया है। समग्र पुस्तक बारह भागों में और सैंतालिस परिच्छेदों में विभक्त है। 'संपत्ति शास्त्र' की भूमिका में वे कहते हैं इस प्रकार समग्र पुस्तक बारह भागों में और सैतालीस परिच्छेदों में समाप्त हुई है। प्रथमार्द्ध में संपत्ति की उत्पत्ति, वृद्धि, विनिमय और वितरण आदि का विवेचन करके संपत्ति के उपभोग और देशों की आर्थिक अवस्था की तुलना की है। पुस्तकारंभ में इस बात का भी विचार किया है कि इस देश में संपत्ति शास्त्र के अभाव का कारण क्या है और इस शास्त्र को शास्त्रात्व की पदवी दी जा सकती है या नहीं। द्वितीयार्द्ध में साख, बैकिंग, बीमा, व्यापार, कर और देशांतरगमन का विचार करके संभूय-समुत्थान, हड़ताल और... रोध आदि पर भी एक परिच्छेद लिखा है। व्यापार विषय को हमने अधिक विस्तार के साथ लिखना आवश्यक समझा है। क्योंकि यह विषय बड़े महत्त्व का है। इसे सात परिच्छेदों में बांटकर व्यापार विषयक प्रायः सभी आवश्यक बातों पर विचार किया है। गवर्नमेंट की व्यापार व्यवसाय विषयक नीति और बंधनरहित तथा बंधनविहित व्यापार पर एक-एक परिच्छेद अलग लिखा है। इस पुस्तक में कहीं कहीं पहले कहीं गई बातों की पुनरुक्ति देख पड़ेगी इसका कारण यह है कि इस शास्त्र के कितने ही प्रकरण एक दूसरे से बहुत ही घनिष्ठ संबंध रखते हैं। इससे कभी-कभी एक प्रकरण की बातों को और प्रकरणों में फिर-फिर से दोहराना पड़ा है।[9]

इस पुस्तक का 'संपत्ति शास्त्र' नाम रखने के विषय में उनका कहना है संपत्तिशास्त्र को अंग्रेजी में 'पॉलिटिकल इकनमी' कहते हैं। इस देश में किसी-किसी ने इसका नाम अर्थशास्त्र रखा है। परंतु यह नाम इस शास्त्र का ठीक वाचक नहीं जान पड़ता। क्योंकि 'अर्थ' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। केवल हिंदी जानने वालों के मन में 'संपत्ति' या 'धन' शब्दों के सुनने में तत्काल जो भाव उदित हो सकता है वह 'अर्थ' शब्द के सुनने से नहीं हो सकता। 'धन-विज्ञान' 'संपत्तिविज्ञान' या 'संपत्ति शास्त्र' यदि इस शास्त्र नाम रखा जाए तो वह इस शास्त्र के उद्देश्य का विशेष बोधक हो और साधारण आदमियों की भी समझ में उसका मतलब झट आ जाए। 'अर्थशास्त्र' कहने से यह बात नहीं हो सकती। इसी से हमने इस पुस्तक का नाम 'संपत्ति शास्त्र' रखना उचित समझा। 10

इस प्रकार हमने देखा कि द्विवेदी जी का स्वदेशानुराग एवं स्वभाषा प्रेम एक साथ उभर कर सामने आया। देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए जहां उन्होंने 'संपत्ति शास्त्र' के ज्ञान को आवश्यक समझ कर इस पुस्तक को लिखने का बीड़ा उठाया, वही हिंदी में संपत्ति शास्त्र जैसे गूढ़ विषय पर लिखकर उन्होंने हिंदी को हेय दृष्टि से देखने वालों के सामने मिसाल कायम की। उन्होंने इसकी भूमिका में स्पष्टतः इस बात की स्वीकारोक्ति की है कि संपत्ति शास्त्र विषयक उनका ज्ञान अत्यंत अलग है और इस पुस्तक में अनेक दोष होंगे लेकिन उन्होंने फिर भी इस विषय पर हिंदी में पुस्तक लिखने की इसलिए ठानी क्योंकि जिनकी अर्थशास्त्र में पैठ है वे हिंदी को पढ़ना तक पाप समझते हैं। संभव है कि संपत्तिशास्त्र के ज्ञाताओं को इसके दोष ही कुछ लिखने के लिए उकसाए हमारी त्रुटियों से हमारी प्यारी हिंदी को कुछ लाभ पहुंचने की आशा है। संभव है उन्हें देखकर किसी योग्य विद्वान को हिंदी पर दया आवे और उसके उदार हृदय में संपत्ति शास्त्र पर एक निर्दोष, निर्भ्रांत और निरूपम पुस्तक लिखने की इच्छा उत्पन्न हो। यदि हमारी यह संभावना, कभी किसी समय फलीभूत हो जाए तो हम समझेंगे कि हमारी इस त्रुटि-परिपूर्ण पुस्तक ने बड़ा काम किया। 11

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. (महावीर प्रसाद द्विवेदी-प्रतिनिधि संकलन)—देश की बात—पृष्ठ 79 (संपादक-रामबक्ष) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया-संकलन 1997, 2. वही—संपत्ति का विवरण—पृ. 73, 3. वही—संपत्तिशास्त्र की भूमिका—पृ. 66, 4. वही—पृ. 69, 5. वही—पृ. 68, 6. वही—पृ. 72, 7. वही—पृ. 67, 8. वही—पृ. 70, 9. वही—पृ. 71, 10. वही—पृ. 69, 11. वही—पृ. 72

बी- 1 204, एल्डिको गार्डन स्टेट
86/245 रायपुरवा, कानपुर–208003

महावीर प्रसाद द्विवेदी और सरस्वती प्रत्रिका

डॉ. चित्रा

महावीर प्रसाद द्विवेदी बहुभाषाविद् थे। हिंदी भाषा के प्रति जितना लगाव तथा निष्ठा उनमें थी और किसी साहित्यकार में नहीं थी। भारतेंदु ने नाटक विधा का प्रचार-प्रसार किया तथा इसी क्षेत्र में आगे प्रयासरत रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा के उत्थान में जो कुछ किया उस पर कोई भी साहित्य गौरव कर सकता है। दुःख की बात यह है कि द्विवेदी जी के अमूल्य योगदान को किसी ने सराहा नहीं वरन उसकी अनदेखी की।

महावीर प्रसाद द्विवेदी आरंभिक समय में तार भेजने का कार्य करते थे तथा रेलवे में सिग्नलर थे। ''आपकी साहित्य-साधना का क्रम सरकारी नौकरी के नीरस वातावरण में भी चल रहा था और इस अवधि में आपके संस्कृत ग्रंथों के कई अनुवाद और कुछ आलोचनाएं प्रकाश में आ चुकी थी।''

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरकारी नौकरी छोड़कर हिंदी भाषा के उत्थान का कार्य किया। उन्हें सरकारी नौकरी के नीरस काल से हिंदी भाषा का यह कार्य अधिक श्रेयस्कर लगा। द्विवेदी जी ने यह कार्य अपनी पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से किया। द्विवेदी जी ने बहुमूल्य साहित्य की रचना की परंतु ''महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पहला ऐतिहासिक काम यह किया कि जिस हिंदी में हम आज लिखते-पढ़ते हैं, उसे इतना विकसित और प्रौढ़ पा रहे हैं, उस हिंदी गद्य को परिनिष्ठित, परिमार्जित कर उसे इतना तरल और व्यापक बना दिया कि ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र और अन्यान्य विषयों की अभिव्यक्ति सहज हो गई। दूसरा काम उन्होंने यह किया कि संपादन या पत्रकारिता का ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप सामने रखा, जिसने भावी पत्रकारों के लिए सबसे बड़े आदर्श का काम किया।''[1]

द्विवेदी जी यह जानते थे कि मातृभाषा का सवाल सीधा-सीधा स्वाधीनता से जुड़ता है, जो व्यक्ति अपनी मातृभाषा से प्रेम नहीं करता वह स्वाधीनता से प्रेम करता होगा इसमें संदेह है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गांधीजी के स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया तथा जनता को स्वदेशी अपनाने पर बल दिया। ''वे जानते थे कि स्वाधीनता की रक्षा के लिए स्वभाषा की रक्षा और उन्नति अनिवार्य है। द्विवेदी जी के लिए स्वभाषा का सवाल स्वाधीनता के संघर्ष से पूरी तरह जुड़ा हुआ है।''[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' पत्रिका आज भी उतनी प्रासांगिक है जितनी वर्षों पहले। आज की किसी पत्रिका की तुलना यदि हम सरस्वती से करें तो आज की पत्रिका की तुलना में हमें सरस्वती में ज्ञान और सीखने की अधिक सामग्री प्राप्त हो सकती है। 'सरस्वती' को हिंदी की जातीय गौरव की पत्रिका होने का सम्मान प्राप्त था।

द्विवेदी जी ने अपने संपादन द्वारा भाषा-सुधार ही नहीं किया अपितु लेखक भी बनाए हैं। लेखक उनकी पत्रिका 'सरस्वती' में छपना चाहते थे। उन दिनों सरस्वती में छपना अपने आप में गर्व की बात मानी जाती थी। ''लोग द्विवेदी जी को प्रलोभन देते थे। कोई कहता मेरी मौसी का मरसिया छाप दो, मैं तुम्हें निहाल कर दूंगा। कोई लिखता—अमुक सभापति की स्पीच छाप दो, मैं तुम्हें गले में बनारसी दुपट्टा डाल दूंगा। कोई आज्ञा देता मेरे प्रभु का सचित्र जीवन चरित्र निकाल दो तो तुम्हें एक बढ़िया घड़ी या पैरगाड़ी नजर की जावेगी।''[3] मगर द्विवेदी जी टस से मस न होते बल्कि उल्टा उनको डांटकर भगा देते। वह कहते 'सरस्वती' में ऐसी वैसी सामग्री नहीं छपेगी। इसलिए रचनाकार उनसे खफा रहते।

मैथिलीशरण गुप्त उनके प्रिय शिष्यों में से एक थे। रचनाकारों पर उनका रौब चलता था। हर रचनाकार कभी न कभी उनसे रुष्ट जरूर हुआ। इसका कारण यह भी था कि वह पत्रिका में न केवल रचनाकारों की भाषा का परिष्कार करते थे। अपितु द्विवेदी जी उनके लेखों में कुछ घटा और बढ़ा भी दिया करते थे। द्विवेदी जी ने मैथिलीशरण गुप्त को साफ-साफ कह दिया था कि ''आगे से आप सरस्वती के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छपाने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहे उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए। ताले में बंद करके रखिए।''[4]

''संपादन भार ग्रहण करने पर द्विवेदी जी ने अपने लिए मुख्य चार आदर्श निश्चित किए—समय की पाबंदी, मालिकों का विश्वास भाजन बनना', अपने हानि-लाभ की परवाह न करके पाठकों के हानि-लाभ का ध्यान रखना और न्याय-पथ से कभी भी विचलित न होना।''[5]

उस समय की अधिकांश पत्रिकाएं अपने नियत समय पर नहीं निकल पाती थी। जिसका कारण संपादक की तबीयत बिगड़ जाना, घर-परिवार में किसी का स्वर्गवास होना तथा मशीन का खराब हो जाना होता था। लेकिन महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने संपादक पद के 17 वर्षों के समय में कभी भी इस तरह का बहाना नहीं बनाया। भले उन्हें पूरी पत्रिका के लेख अपने आप लिखने पड़े परंतु उन्होंने पत्रिका नियत समय पर ही निकाली। उनके संपादन के आरंभ में दूसरी तथा तीसरी संख्याएं एक साथ निकली उसके बाद द्विवेदी जी के पास आधा साल की सामग्री रखी रहती।

''उस विषम काल में जब न तो साहित्य-सम्मेलन की योजनाएं थीं, न विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में हिंदी का प्रवेश था, न रंग बिरंगे चटकीले मासिक पत्र थे, हिंदी के नाम पर लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, लेख लिखने की बात ही दूर रही, अंग्रेजी के बाबू लोग हिंदी में चिट्ठी लिखना भी अपमानजनक समझते थे। जनसाधारण में शिक्षा का प्रचार नगण्य था। हिंदी पत्रिका 'सरस्वती' को जनता का हृदय-हार बना देना यदि असाध्य नहीं तो कष्ट साध्य अवश्य था।''[6]

द्विवेदी जी की रचनाओं को संकलित करना बेहद कठिन कार्य था क्योंकि अधिकतर वह छद्म नाम से लिखते थे। सरस्वती में भी वह दूसरे नामों से लिखते थे। छद्म नाम से लिखना द्विवेदी जी के लिए कोई शौक का कार्य नहीं था। कई बार उन्हें अकेले ही सरस्वती का अंक निकालना पड़ता था। जिसमें दो रचनाएं बाहर के लेखकों की होती थीं और बाकी द्विवेदी जी की। एक पत्रिका में सारे लेख उन्हीं के नाम से हों उन्हें ठीक प्रतीत नहीं होता था इसलिए वह छद्म नाम जैसे—'कमल किशोर त्रिपाठी', 'कल्लू अल्हइत' कभी-कभी 'गजानन गणेश गर्वखंडे' तथा 'पर्यालोचक' के नाम से लिखते थे।

डॉ. उदय भानु सिंह लिखते हैं, ''वर्ष भर की कुल 109 रचनाओं में 70 रचनाएं द्विवेदी जी की हैं। अन्य लेखकों की देन आख्यायिका, कविता, साहित्य और पुरुषों के जीवन चरित तक ही सीमित है। लेखकों की कमी ने द्विवेदी जी को अन्य नामों से भी लेख लिखने की प्रेरणा दी। संभवतः संपादक के नाम की बारंबार आवृत्ति से बचने के लिए, अपने प्रतिपादित मत का विभिन्न लेखकों के नाम से समर्थन करने, उपाधि विभूषित अन्य प्रांतीय या आलंकारिक नामों के द्वारा पाठकों पर अधिक प्रभाव डालने और उस लाठी-युग के लड़ैत लेखकों की भयंकर मुठभेड़ से बचने के लिए ही उन्होंने कल्पित नामों का प्रयोग किया था।''[7]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से हिंदी भाषा को विश्व में एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का कार्य किया। अंतिम समय में उन्हें नींद न आने का उन्निद्र रोग हो गया था। वह कभी दो घंटे सोते कभी एक घंटा। सरस्वती का स्तर बना रहे तथा वह निश्चित समय पर निकले इसलिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। इसके साथ ही वह अपनी अन्य रचनाएं भी कर रहे थे। जिनमें 'संपत्ति शास्त्र' प्रमुख है। 'सरस्वती' पत्रिका से द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की विशेषता प्रदर्शित होती है। यह कला निसंदेह कठिन है।

''इस सारी स्थिति को यदि व्यापक संदर्भ में देखें तो यह ज्ञात होगा कि यह सामान्य संपादन कार्य नहीं था। यह हिंदी नवजागरण का अत्यंत दुष्कर कार्य था, जिसके लिए द्विवेदी जी स्वयं को तिल-तिल करके गलाए दे रहे थे। हिंदी प्रदेश के सोते हुए लोगों को जगाना पत्थर की शिला को अपने सिर से तोड़ने का सा प्रयत्न था।''[8]

द्विवेदी जी की कोमलता और कठोरता का स्रोत एक ही था। यह स्रोत था हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा, शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो उनकी डांठ खाकर भी उनका भक्त न हो। बालमुकुंद गुप्त इसका एक उदाहरण हैं। बालमुकुंद गुप्त तथा द्विवेदी जी के बीच भाषा संबंधी मुद्दों पर बहस रही। इस बहस से हिंदी भाषा तथा व्याकरण विशेष रूप से भविष्य की हिंदी तथा व्याकरण के लिए परिणाम बहुत अच्छे रहे। इसे देख उस समय के सभी रचनाकार शुद्ध हिंदी तथा व्याकरण सम्मत भाषा का इस्तेमाल करने लगे। इस विवाद से यह नहीं समझना चाहिए कि दोनों में हमेशा बैर ही बना रहा। इस विवाद के खत्म होते ही गुप्त जी द्विवेदी जी से मिलने उनके कानपुर के घर गए और उनके चरणों पर गिर कर माफी मांगी और उनके महत्त्व को स्वीकार किया। 1907 में गुप्त जी के देहावसान पर द्विवेदी जी ने कहा ''अच्छी हिंदी बस एक आदमी लिखता था—बालमुकुंद गुप्त।''[9]

यदि द्विवेदी जी अपना एक समूह बनाकर रचनाएं छापते तो द्विवेदी जी की पत्रिका 'सरस्वती' जातीय पत्रिका होने का गौरव प्राप्त न कर पाती। यह पत्रिका इसी कारण हिंदी की प्रमुख पत्रिका बनी रही। इसका कारण द्विवेदी जी का हिंदी के प्रति अपार प्रेम था। अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका को बनाया और पत्रिका ने द्विवेदी जी को।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश भाग-2 नामवाची शब्दावली सं. मंडल डॉ. धीरेंद्र वर्मा (प्रधान) डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, श्री राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. रघुवंश (संयोजक) ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, आश्विन संवत् 2020 पुर्नमुद्रण सितंबर 2010
2. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1977
3. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' डॉ. उदय भानु सिंह लखनऊ विश्वविद्यालय संवत् 2008 विक्रमीय
4. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खंड।' संकलन-संपादन—भारत यायावर, किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण 1995
5. 'हिंदी साहित्य कोश भाग-2' डॉ. धीरेंद्र शर्मा, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा संपादक मंडल, पृ. 438
6. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खंड 1' संकलन-संपादन भारत यायावर, पृ. 6
7. वही - पृ. 6
8. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', डॉ. उदय भानु सिंह, पृ. 164
9. द्विवेदी पत्रावली, पृ. 49
10. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', डॉ. उदय भानु सिंह, पृ. 162-163
11. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', डॉ. उदय भानु सिंह, पृ. 165
12. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग', डॉ. उदय भानु सिंह, पृ. 166
13. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', रामविलास शर्मा, पृ. 371
14. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खंड-1, संकलन संपादन-भारत यायावर, पृ. 16

ए-3/10, सेक्टर -11, रोहिणी, दिल्ली-85

युग प्रवर्तक और प्रखर हिंदी सेवी

डॉ. प्रीति

हिंदी भारत की आत्मा है। हिंदी के आत्मिक उत्थान के लिए या यों कहूं कि हिंदी को विकसित सर्वाधिक एवं आत्मोकित करने में अनेक हिंदी सेवी, पुरोधा एवं आचार्यों ने अपने सतत् परिश्रम, प्रयास और निष्ठा से हिंदी को लोकप्रिय और विकसित किया।

क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ चलकर हिंदी जनमानस के बोलचाल की भाषा बनती गई।

भारतेंदु युग में जहां लल्लू, सदल मिश्र, भारतेंदु हरिश्चंद्र सहित अनेक हिंदी सेवियों ने हिंदी को विकास की दिशा दी। वहीं हिंदी के आधुनिक काल में एक पूरा काल खंड, प्रख्यात हिंदी सेवियों के अथक उत्साह परिश्रमवश द्विवेदी युग कहा जाने लगा। हम कह सकते हैं कि इसमें सर्वाधिक प्रकाशवान नामों में एक नाम पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का ही है।

उनकी साधना हेतु में अकिंचन कुछ कह पाऊं। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार सूर्य को दीपदान करना। आज की नई पीढ़ी पश्चिम के सतरंगे इंद्रधनुष के चमकीले चकाचौंध करने वाले सांस्कृतिक क्रिया कलापों में भ्रमित होती जा रही है, पढ़ तो रहे हैं, किंतु कही कुछ पुरानी धरोहर छूटती सी जा रही है।

इसी शृंखला में उत्तर प्रदेश की चंदन माटी में जन्मे एक महान हिंदी साधक जिन्हें हम विशेष गौरव के साथ अपनी स्मृति में सदैव रखते रहेंगे। जी हां, वह है, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म रायबरेली के एक छोटे से गांव दौलतपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम पं. राम सहाय दुबे था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। माता-पिता की छत्रछाया में उन्हें अनुशासन और संस्कार का अनमोल मंत्र प्राप्त हुआ था।

अभावों के चक्रजाल में व्यतीत होता हुआ उनका शैशव युवा काल उन्हें बेहद भावुक और संवेदनशील बनाता गया। परिस्थितियों के विपरीत होने, धनाभाव से निरंतर दो चार होते रहने पर भी उन्होंने अपने जीवन में मानवीय मूल्यों को कभी नहीं छोड़ा। बल्कि, दशा, सत्य, न्याय, आत्म सम्मान जैसे महत्त्वपूर्ण शब्दों की जड़ें और अधिक मजबूत और गहरी होती गई।

पंडित जी की प्रारंभिक शिक्षा दौलतपुर की पाठशाला में ही संपन्न हुई। धनाभाववश पंडित जी शिक्षा के उच्च शिखर पर नहीं पहुंच पाए। किंतु उनकी संस्कारशाला और लेखनी की शक्ति ने उन्हें लेखने के बहुआयामी शिखर तक पहुंचाया। इस तरह एक बात बखूबी छनकर हमारे सामने आती है कि एक रचनात्मक लेखन के लिए मात्र उच्चशिक्षा ही अनिवार्य नहीं होती, बल्कि हमारे समाज स्वयं का जीवन, देश के सरोकार और प्रस्तुतिकरण, संवेदनशीलता की अद्भुत क्षमता की बेहद आवश्यकता होती है।

कुशाग्र बुद्धि बालक के कई कठिन सवालों के जवाब पिता नहीं दे पाते, तब वे स्वयं उस पर सोच विचार करने लगते। धनाभाववश जहां वो अपनी शिक्षा उच्चस्तर पर नहीं ले जा पाए, वही घर की जरूरतों को देखते हुए उन्होंने रेलवे विभाग में नौकरी कर ली। धीरे-धीरे अपने कुशलता, सदव्यवहार और कार्य निष्ठा से उन्होंने कई प्रमोशन प्राप्त किए। अब वह एक सम्माननीय पद पर तैनात होते गए। पंडित जी ने लेखनी से अपनी मित्रता बराबर बनाए रखी। नौकरी करते हुए भी वे रचनाधर्मिता में संलग्न रहे।

पंडित जी का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रभावशाली था। पारंपरिक धोती कुर्ता, अचकन, टोपी, उस पर उनकी रौबदार मूंछें। जो भी व्यक्ति उनसे मिलता प्रभावित होता। पंडित जी ने बचपन के संस्कारों को सदैव अपने साथ रखा। अवज्ञा, अनुशासनहीनता, असम्मान असत्य से वह बहुत दूर रहते थे।

इसी कारण अपनी रेलवे की नौकरी छोड़ देने में उन्हें जरा भी संकोच या दुःख नहीं हुआ। पंडित जी ने अपने लेखन और लेखनी को अपना निकटतम मित्र बना लिया। इसी तपस्या का प्रतिफल हुआ कि पंडित जी के रचनात्मक लेखन का एक बड़ा क्षेत्र है एक व्यापक संसार है। पंडित जी की लेखन शैली को हम मुख्यतः तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) आलोचनात्मक (2) विचारात्मक (3) परिचयात्मक शैली इन शैलियों के अर्न्तगत उन्होंने कुल 89 रचनाएं की। उनके रचना संसार में मौलिक ग्रंथों में मुख्यतः काव्य मंजूषा, कविता कलाप, देवी स्तुति शतक आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त गंगालहरी, ऋतु तरंगिणी, कुमार संभव सार, अनुवादित काल कृतियां है। नैषधचर्चा, काली दास की समालोचना, नाटक शास्त्र हिंदी भाषा की उत्पत्ति, कालीदास की निरंकुशता इत्यादि मुख्य हैं।

द्विवेदी जी का निबंधकार रूप भी बहुत लोकप्रिय हुआ। जिन्हें हम आठ भागों में विभाजित कर सकते हैं। (1) साहित्य (2) जीवन चरित्र (3) विज्ञान (4) इतिहास (5) भूगोल (6) उद्योग (7) शिल्प, भाषा और आध्यात्म।

आलोचना के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी ने कुछ नया कर दिखाया। कई भाषाई अशुद्धियों को पुनः शुद्ध रूप में रचना संसार में प्रस्तुत किया। इस तरह रचना को परिष्कृत और शुद्ध बनाने का एक चुनौतीपूर्ण कार्य भी किया। जहां पंडित जी का एक बहुआयामी विविधकोणीय व्यापक रचना संसार है, वही रचनाओं में अद्‌भुद गुणवत्ता भी मौजूद है।

भाषा को लेकर द्विवेदी जी बेहद फिक्रमंद रहते थे। उनका मानना था कि रचना सृजन के समय स्वयं का पांडित्य प्रदर्शन करने के बजाए प्रत्येक रचनाकार को भाषा के लिए ध्यान देते हुए सरल शब्दों, बोली, बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करना उचित होता है। वह भाषा जिसे हमारी आम जनता का समाज आसानी से ग्रहण कर ले। उन्होंने कहा कठिन से कठिन विषयों के लिए भी सरल, आम भाषा ही को माध्यम बनाना सर्वदा उचित है। साहित्य समाज का दर्पण है। हमारे साहित्य में हमारा समाज भरपूर सच्चे रूप में परिवर्तित हो। जिससे हमारा लेखन भी सार्थक हो। रचनाकार की सफल रचना वही है। जो आम आदमी तक पहुंच बना पाए। जिसे पढ़ने बैठने पर पूरा किए बिना वह उसे बंद न करना चाहे। यही कारण था कि स्वयं भी वह अपनी रचनाओं में आम भाषा के प्रयोग के साथ उर्दू के लोकप्रिय शब्दों को भी शामिल करने में सार्थकता समझते थे।

द्विवेदी जी ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली की जरूरत पर बल दिया। ऐसा स्वयं उनकी रचनाओं में भी मिलता है।

द्विवेदी जी के नाम पर पूरा द्विवेदी युग उनके रचनाधर्मिता का स्वयं दर्पण है। यह युग सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जागरण का युग था। इस युग में अन्य विधाओं के साथ, एकांकी नाटकों का भी प्रबलता से प्रयोग हो रहा था। इन एकांकियों में देश प्रेम, नव चेतना, सामाजिक जागरण, रूढ़ियों, मानवीय मूल्यों के स्वर मुखर हो रहे थे।

जहां द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को भरपूर अपनाया वहीं उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय को भी खड़ी बोली में रचनाएं लेखन हेतु प्रेरित किया।

4/151 विशाल खंड, गोमती नगर, लखनऊ

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 2000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कलाकृतियां अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्‌धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता और फोन नंबर अवश्य लिखें।**

लोकहित प्रधान साहित्य के रचयिता

रामेश्वर प्रसाद गुप्ता

''थे आप सृजन के अमर छंद।
साहित्य-सरित् की गति अमंद।
करके प्रसार ज्ञानोन्मेष,
ज्योतिर्मय की आशा-अशेष।
हिंदी का नव-उत्थान किया।
संस्कारों को सम्मान दिया।
सादगी सरलता का जीवन।
हे महामनीषी! अभिनंदन।।''

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्योपरांत से लेकर बींसवी सदी के मध्य तक का समय हिंदी भाषा और इसके साहित्य के समुन्नयन का सशक्त समय था। अनेक विद्याधर मनीषियों ने इस अंतराल में अपनी कालजयी रचनाओं से हिंदी का कोश समृद्ध किया एवं अपनी मौलिक काव्य तथा गद्य कृतियों से अतुल संपन्नता प्रदान की। ऐसे महामनीषियों में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के युगप्रवर्तक के रूप में उल्लेखनीय हैं। उनका जन्म सन् 1864 ई. में उत्तर प्रदेश के जिला रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। आप प्रारंभ से ही प्रखर प्रतिभा संपन्न थे। प्रारंभिक काल में ही आपने हिंदी के अतिरिक्त फारसी, संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आजीविका हेतु आपने सर्वप्रथम रेलवे विभाग की नौकरी की थी, जिसे बाद में छोड़ दिया था।

श्री द्विवेदी जी की ज्ञान-पिपासा तीव्र थी। पूर्व संस्कारों से आपकी साहित्य साधना अजस्र रूप से परिपक्व होती रही। संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद एवं समीक्षाएं आपकी प्रखर प्रतिभा को प्रद्योतित करते रहे। सन् 1903 ई. में आपने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन कर हिंदी के उत्थान के लिए अभूतपूर्व कार्य किया।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य को अतुल योगदान है। गद्य में आपकी चौदह अनूदित तथा पचास मौलिक कृतियां हैं। हिंदी पद्य में आपकी आठ अनूदित कृतियां तथा नौ मौलिक कृतियां प्राप्त हैं। इस प्रकार आपकी हिंदी में इक्यासी कृतियां हैं।

पं. द्विवेदी जी का कृतित्व और व्यक्तित्व दोनों ही प्राञ्जल एवं महिमामय थे। कर्तव्यपरायणता, न्यायप्रियता, नैतिकता और परोपकार उनके विशेष गुण थे। यही गुण उनकी रचनाओं के अंतर्भावों में भी प्रतिबिंबित एवं परिलक्षित होते हैं, जो मानव समाज पर अपनी प्रेरणास्पद छाप छोड़ते हैं। भाव और कला का सुखद समिश्रित रूप उनकी सभी रचनाओं में प्रदृष्ट है। मनोरम पदविन्यास एवं प्रासांगिक लालित्य उनकी कविताओं का प्रायः आमरण है, जिनमें मंगलकारी मनोभावनाओं को भी स्थान दिया जाना समुचित मान्य है। यथा—

''सुरम्यरूपे रसराशिरंजिते,
विचित्र वर्णाभरणे! कहां गई?
कविंद्र कांते, कविते! अहो कहां?
मांगल्य मूलमय वारिदेवारि वृष्टि।''

पं. द्विवेदी जी की कविताओं में भावपूर्णता, रस-संचरण तथा आकर्षण है। यद्यपि कविताओं की पद-विन्यास प्रायः गद्य जैसा है, तथापि शब्दार्थ मर्मस्पर्शी और आह्लादप्रद है। कविताओं की कथावस्तु भी मनोहारी है।

पं. द्विवेदी का गद्य पूर्णतः परिष्कृत है। निबंध, आलोचना, अनुवाद और संपादन इन चार रूपों में आपका गद्य साहित्य प्रशस्त है। आपके गद्य साहित्य में हिंदी भाषा का सारल्य एवं सहजप्रवाह है। विषय की विविधता के साथ-साथ लोककल्याण का भाव आपकी गद्य रचनाओं का वैशिष्ट्य है। उपदेशात्मक एवं वर्णनात्मक शैली की रुचिता आपके गद्यसाहित्य में प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, जो मानव समाज के श्रेयार्थ ही है।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य लोकहित प्रधान है। कला और जीवन दोनों के लिए उनकी रचनाएं सार्थक हैं। नवीन और निर्दोष शैली में सोद्देश्य रचा गया उनका साहित्य अजरता और अमरता को प्राप्त रहेगा। एक आलोचक के रूप में उनका सकारात्मक सोच एवं संरचनात्मक दृष्टि सदैव मानव-समाज का श्रेय-पथ प्रशस्त करते रहेंगे।

हिंदी जगत के सूर्य

हिंदी जग के सूर्य श्री, महावीर प्रसाद।
हिंदी के उत्कर्ष हित क्रिया प्रखर संनाद।।
अपने भारत की बने भाषा हिंदी नेक।
कहा द्विवेदी ने उगे सबमें सुमन विवेक।।

सरस्वती के वरद सुत, विविध विषय आचार्य।
'सरस्वती' का संवारा शुभ संपादन कार्य।।
हिंदी के उत्थान हित, निष्ठा अतुल अनूप।
किया समर्पण भाव से कार्य 'विज्ञ' अनुरूप।।
गद्य, पद्य, अनुवाद पुनि रच हिंदी कृति मूल।
कृतियां अस्सी से अधिक दीं प्रलोक-अनुकूल।।
बाल सुधा साहित्य रच, दिया संस्कृति-ज्ञान।
संस्कार सह कराया हिंदी का प्रज्ञान।।
विविध ज्ञान विज्ञान को हिंदी में दे मान।
वर्धित किया प्रकोश को कर हिंदी सम्मान।।
रच निबंध नूतन नवल, पुनि कर वर अनुवाद।
पुनि समीक्षक बन दिया, वर साहित्य-प्रसाद।।
प्रतिभा, संयम, न्यायरति, परहिताय व्यक्तित्व।
हिंदी सेवा का अतुल भवतः लाध्य कृतित्व।।
हिंदी के युग-प्रवर्तक, हिंदी-मय साकार।
श्रद्धा सुरमित शब्द-सुम, करिएगा स्वीकार।।

द्वारा लक्ष्मी गुप्ता-भवन, उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइन, दतिया-475661 (म. प्र.)

प्राचीनता और नवीनता के केंद्र बिंदु

डॉ. आरती स्मित

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशक भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। संपूर्ण राष्ट्र में, राजनीतिक उथल-पुथल यथा—बंग-भंग घटना, राष्ट्रीय आंदोलन का उत्साह, राजनीति के मंच पर लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गांधी का उदय होने की घटनाओं ने भाषा के क्षेत्र में भी क्रांति का बिगुल बजा दिया और जनसमूह के समक्ष राष्ट्रभाषा की उपयोगिता का प्रश्न खड़ा कर दिया।

खड़ी बोली को परिष्कृत करते हुए हिंदी भाषा एवं साहित्य को शृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढ़ि से स्वच्छंदता के द्वार पर ला खड़ा करने वाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कालखंड़ों में उदित प्रादुर्भूत आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पथ-प्रदर्शक, विचारक एवं सर्वस्वीकृत साहित्य-नेता के रूप हमारे बीच हैं।

सन् 1864 ईसवी में जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में जन्मे महावीर प्रसाद की आरंभिक शिक्षा गांव में, तदुपरांत जिला रायबरेली के स्कूल; रणजीत पूरवा (जिला उन्नाव), फतेहपुर तथा उन्नाव के स्कूलों में पूरी हुई। बाद में बंबई (पिता के पास) जाकर वहां संस्कृत, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी का विशेष ज्ञान प्राप्त किया। फारसी मिडल स्कूल में ही वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ी और बंगला का अभ्यास अच्छा था ही।

आजीविका हेतु रेलवे की नौकरी तो की, किंतु कर्मचारी वाली मानसिकता न पा सके। उच्च अधिकारी से किसी बात पर विवाद होने के कारण त्यागपत्र दे दिया और पूर्णरूपेण हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में समर्पित हो गए। सन् 1903 से 1920 तक 'सरस्वती' के संपादक का कार्य-भार परिश्रम, लगन और निष्ठा के साथ संभाला और इस पद पर रहकर हिंदी भाषा एवं साहित्य के उत्थान के लिए अप्रतिम कार्य किए। इनके प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन में कवियों एवं लेखकों की एक नई पीढ़ी निर्मित हुई, जो उनके आदर्शों को लेकर आगे चली। कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचनप्रसाद पांडेय प्रभृत साहित्यकार इनमें मुख्य थे।

आचार्य द्विवेदी खड़ी बोली के परिष्करण एवं स्थिरता प्रदान करने वालों में अग्रगण्य रहे। वे कवि, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक एवं संपादकाचार्य रहे। उनके द्वारा लिखित मौलिक एवं अनूदित गद्य-पद्य ग्रंथों की संख्या लगभग 80-81 है। गद्य-लेखन एवं संपादन के क्षेत्र में द्विवेदी जी विशेष सफल रहे। 'काव्य मंजूषा, 'सुमन' (1923), 'कान्यकुब्ज', 'अबला विलाप' (मौलिक पद्य), 'गंगा लहरी', 'ऋतु तरंगिणी', 'कुमार संभवसार' (अनूदित) उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

आचार्य जी युगद्रष्टा थे। उन्नीसवीं सदी का अंत संक्रांतिकाल था। ऐसे समय में द्विवेदी जी ने जनरुचि एवं आकांक्षाओं को परख कर सन् 1900 की 'सरस्वती' में 'हे कविते' प्रकाशित की और अपनी इस कविता में सौरस्य एवं वैविध्य के अभाव तथा ब्रजभाषा-प्रयोग पर क्षोभ प्रकट किया। बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय भावधारा को उन्होंने प्रमुखता दी। मानव-मात्र के सुख-दुख और परिस्थितियों का सहज भाव से वर्णन हेतु उन्होंने साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया। उनकी अपनी कविता 'सरगौ नरक ठिकाना नाहि' में 'कल्लू अल्हैत' काव्य का विषय बना है।

''भैंसि भवानी कै तब सेवा
लागे करन पढ़व मा छूटि।
बटुवन दूध-दुहा इन हाथन
धार न कबहुं दुहत मां टूटि।।
मोटरिन कटिया मथुरा सानी
कीन रोज हम बांह चढाय।
मस्त भयन तब आल्हा गावा
उपर दुहत्था हाथु उठाय।।''

आचार्य द्विवेदी सत् और आदर्श को रचनाओं में बढ़ावा देते रहे। इनकी प्रेरणा पाकर वर्ण्य-विषय को अद्‌भुत विस्तार मिला। अपार वैविध्य एवं व्यापकत्व आया, साथ ही नूतन विषय भी कविता में स्थान पाने लगे। द्विवेदी जी ने 'कवि-कर्तव्य' निबंध में लिखा था—''चींटी से लेकर हाथी पर्यंत पशु, भिक्षुक से लेकर राजापर्यंत मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्रपर्यंत जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी,

अनंत पर्वत... सभी पर कविता हो सकती है।''

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव ऐसा रहा कि उस युग की हास्य-व्यंग्य की कविताएं भी संयत और मर्यादित हैं। उनके प्रयासों का फल था कि खड़ी बोली काव्य की मुख्य भाषा बन गई। उन्होंने इस युग की भाषा को सुबोध, शुद्ध, एकरूप वर्तनी और रसानुरूप बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई। कविता में विशेषकर दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ–

(अ) पृथ्वी-समुद्र-सरित-नर-नाग-सृष्टि
मांगल्य-मूल-मय वारिद-वारि-वृष्टि
कर्तार कौन इनका? किस हेतु नाना-
व्यापार-भार सहता रहता महाना?

(ब) तुम्हीं अन्नदाता भारते के
सचमुच बैल राज! महाराज
बिना तुम्हारे हम हो जाते
दाना-दाना को मोहताज
तुम्हें षंड कर देते हैं जो
महानिर्दयीजन-सिरताज
धिक उनको, उन पर हंसता है,
बुरी तरह यह सकल समाज।

गद्य के क्षेत्र में भी आचार्य द्विवेदी ने भाषा से संबद्ध नीतियां बनाई। सूत्र स्वरूप वे इस प्रकार हैं–

1. विषयानुकूल एवं जनता के अनुकूल सरल, शुद्ध एवं प्रवाहपूर्ण शैली का प्रयोग करना।

2. उर्दू एवं अंग्रेजी के प्रचालित शब्दों को स्वीकार करना।

3. शब्द रूपों एवं प्रयोगों को निश्चित रूप प्रदान करते हुए भाषा में एकरूपता लाना।

4. भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति की अभिवृद्धि के लिए संस्कृत के सरल एवं उपयुक्त तत्सम शब्दों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों तथा अन्य भाषाओं के शब्दों को स्वीकार करना।

इस नीति का स्वयं पालन करते हुए उन्होंने अन्य लेखकों को भी प्रेरित किया। यथा– हुवा, हुया, हुआ आदि रूपों में 'हुआ' रूप स्थिर करना। अपने विभिन्न लेखों में इन पर प्रकाश डालकर द्विवेदी जी ने हिंदी गद्य को एक परिष्कृत एवं सशक्त रूप प्रदान किया। साथ ही, गद्य के विषय-क्षेत्र के विस्तार एवं विभिन्न रूपों के विकास के लिए भी उन्होंने अपने युग के साहित्यक, दार्शनिक तथा भौगोलिक विषयों को अपने निबंधों में प्रस्तुत किया।

द्विवेदी जी के अधिकांश निबंध परिचयात्मक या आलोचनात्मक टिप्पणियों के रूप में हैं। उनमें आत्म-व्यंजना के तत्व नगण्य हैं। अन्याय के प्रतिकार-स्वरूप प्रकट भावना में न्यायनिष्ठ आत्मा की ही झलक मिलती है।

'म्युनिसिपैलिटी के कारनामे' निबंध में उनकी व्यंग्यशैली देखी जा सकती है। 'आत्मनिवेदन', 'प्रभात', 'सुतापराधे', 'जनकस्य दंडः' आदि निबंधों में व्यक्तित्व-व्यंजना के तत्व मिलते हैं। उनके द्वारा रचित जीवनियां प्राचीन पंडित और कवि (1918) 'सुकवि संकीर्तन' (1924), 'चरित चर्चा' (1929) आदि ग्रंथों में संकलित है। शिक्षाशास्त्र पर आधारित उनकी कृति 'शिक्षा' (1916) उल्लेखनीय रचना है। भाषा, व्याकरण एवं लिपि के संबंध में भी द्विवेदी जी ने अनेक विद्वतापूर्ण लेखों की रचना की।

वस्तुतः द्विवेदी जी सत्यप्रेमी, आदर्शवादी, सहज-सरल और आडंबररहित थे। उनके स्वभाव में मिठास के साथ तिक्तता, करुणा के साथ कठोरता, दया के साथ रोष, भावुकता के साथ-साथ यथार्थ की समझ, संग्रह के साथ त्याग का अभूतपूर्व समन्वय था। हिंदी भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि करना उनका जीवन लक्ष्य बन गया था क्योंकि वे मानते थे कि संस्कृति की रक्षा तथा विकास का साधन भाषा है। अतएव भाषा के लिए वे सतर्क प्रहरी बने रहे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कृतियों का मूल्यांकन कर मनीषियों ने यही निष्कर्ष निकाला।

(क) द्विवेदी जी ने पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक लिखा।

(ख) 'सरस्वती' में प्रकाशित गंभीर लेखों, चरित्रों, निबंधों, टिप्पणियों और जीवनियों आदि का संग्रह ही उनके गद्य साहित्य का अधिकांश कलेवर घेर लेता है।

(ग) वे हिंदी पाठकों को सुरुचिपूर्ण सामग्री प्रदान करने के प्रयास में रत रहे।

(घ) खड़ी बोली (पद्य और गद्य) में विभिन्न शैलियों का निर्माण हो।

(ङ) जीवन का समस्त स्वस्थ स्वर हिंदी खड़ी बोली को माध्यम बनाकर मुखरित हो और इसकी गति ऐसी हो कि विश्व-साहित्य का सारा ज्ञान-विज्ञान इसमें समाहित हो जाए।

आचार्य द्विवेदी सधे हुए संपादक, समर्पित लेखक और सशक्त साहित्यिक नेता थे। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में आज जो विविधता रोचकता, व्यवस्था और निखार पाया जाता है, वह आचार्य जी की ही देन है।

'सरस्वती' को सर्वांगीण बनाने के प्रयास के साथ ही वे हिंदी के अन्य पत्रों के विकास की कामना करते थे। मातृभाषा हिंदी के प्रबल समर्थक रहते हुए भी वे सभी भारतीय भाषाओं के पोषक थे। विदेशी भाषाओं की ओर झुकने वालों पर उन्होंने कठोर व्यंग्य किया था।

अपनी मां को निस्सहाय, निरुपाय और

निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरों की सेवा-सुश्रुषा में रत होता है, उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवलक्य, आपस्तंभ ही कर सकता है।

दृढ़संकल्पी, प्रखर संपादक के साथ ही साथ द्विवेदी जी का व्यक्तित्व स्वतंत्र शैलीकार के रूप में निखर गया था। अपनी निःस्वार्थ साहित्य-साधना से उन्होंने हिंदी के लिए जिस वातावरण की सृष्टि की, वह सराहनीय है। उन्होंने शब्द-संगठन व व्याकरण के अनुशासन के द्वारा भाषा को व्यवस्था दी। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व इतना आकर्षक और सशक्त बन गया कि वे खड़ी बोली के पुरस्कर्ता बन गए। साहित्य की महत्ता उनके नस-नस में व्याप गई थी। इसका प्रमाण उन्हीं के शब्दों में मिल जाता है।

''समर्थ होकर जो मनुष्य इतने महत्त्वशाली साहित्य की सेवा और अभिव्यक्ति नहीं करता अथवा उससे अनुराग नहीं रखता, वह समाजद्रोही है, वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है, किंमबहुना- वह आत्मद्रोही और आत्महंता भी है।''

द्विवेदी जी ने एक विशिष्ट शैली-आलोचनात्मक को जन्म दिया—वही उनकी निजी शैली है। इसे तीन भागों में बांट सकते हैं—

1. आदेशपूर्ण, 2. ओजपूर्ण, 3 भावपूर्ण।

आचार्य वाजपेयी जी के शब्दों में, ''द्विवेदी जी की शैली अलंकृत और रुक्ष है। उनकी भाषा में कोई संगीत नहीं, केवल उच्चारण और ओज है, जो भाषण कला से उधार लिया गया है।''

द्विवेदी जी के नेतृत्व और युग दृष्टि को लक्ष्य कर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा, ''आचार्य द्विवेदी वस्तुतः आचार्य थे और आचार्य काम मार्ग दिखलाना तथा विवेक जगाना होता है। प्रायः सभी बड़े आचार्यों ने साहित्य-निर्माण की अपेक्षा रीति प्रतिष्ठा का काम विशेष रूप से किया है।''

सचमुच आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक जन्मजात नेता थे, जिन्होंने एक युगांतर उपस्थिति किया। 'सरस्वती' को तत्कालीन समस्त राष्ट्रीय चेतना की दूत बनाकर उन्होंने उसके कर्णधार की महती भूमिका निभाई। समय-समय पर निवेदन, प्रार्थना, फटकार और आदेशयुक्त वाणी से उन्होंने कार्य किए।''

उच्चकोटि के नेता की भांति ही द्विवेदी जी ने उज्ज्वल चरित्र का आदर्श रखा और बुढ़ापे में अपनी समस्त चल-अचल संपत्ति दान कर दी। द्विवेदी जी के उत्तराधिकारी बख्शी जी (सरस्वती के संपादक) ने लिखा है—''यदि कोई मुझसे पूछे कि द्विवेदी जी थे क्या तो मैं उस समय का आधुनिक हिंदी साहित्य दिखलाकर कह सकता हूं कि यह सब उन्हीं की सेवा का फल है। हिंदी-साहित्य-गगन में सूर्य, चंद्रमा और तारागण का अभाव नहीं है। सूरदास, तुलसीदास, पद्माकर आदि कवि साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं परंतु मेघ की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य के उपवन को हरा-भरा करने वालों में द्विवेदी जी की ही गणना होगी।''

आचार्य द्विवेदी महान युगप्रवर्तक पुरुष एवं नायक थे। वे प्राचीन एवं नवीनता के केंद्र-बिंदु थे। एक ओर भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण इतिहास उन्हें प्यारा था, तो दूसरी ओर युगबोध और राष्ट्रीयता। हिंदी को संपन्न बनाने के लिए उन्होंने मधुसंचय का उपदेश दिया। साहित्यकारों को, चित्र के आधार पर काव्य रचना के लिए प्रोत्साहित किया। कृष्णलाल के शब्दों में—''बीसवीं शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्षों के साहित्यिक विकास और प्रगति के मंत्रदाता और पुरोहित द्विवेदीजी ही थे। यह युग वास्तव में द्विवेदी युग था।''

संदर्भ

- डॉ. गणपति चंद्रगुप्त के अनुसार, महावीर प्रसाद द्विवेदी सन् 1900 में सरस्वती के संपादक नियुक्त हुए। साहित्यिक निबंध (हिंदी गद्य का उद्भव और विकास) संशोधित नवम् संस्करण, पृ.—385
- हिंदी साहित्य का इतिहास (सं. डॉ. नगेंद्र) में संकलित द्विवेदी युग, लेखक—डॉ. उमाकांत गोयल, पृ. 497
- साहित्यिक निबंध में संकलित निबंध 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी', लेखक—राम सकल शर्मा, सं. डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. सं. 1099

622 (प्रथम तल), पश्चिम परमानंद कॉलोनी, दिल्ली-110009

द्विवेदी जी की कविता में यथार्थ चित्रण

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक, उद्भट समालोचक, प्रख्यात हिंदी सेवी एवं हिंदी की बहुचर्चित पत्रिका 'सरस्वती' के लोकप्रिय संपादक के रूप में सुविख्यात पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की उन महान विभूतियों में से एक थे जिन्होंने न केवल व्याकरण व चिंतन की दृष्टि से ब्रजभाषा व खड़ी बोली के व्यामोह में फंसी हिंदी को वैचारिक उहापोह से मुक्त कराया अपितु व्याकरण सम्मतता तथा वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की। यही वह महान विभूति थे, जिनके अप्रतिम योगदान से प्रभावित हो समूचे आधुनिक युग की उस प्रमुख सृजनशील अवधि को अर्थात 20 वीं सदी के प्रथम दो दशक हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग के नाम से सुविख्यात हुए।

द्विवेदी जी मां सरस्वती के वह वरदपुत्र थे जिन्होंने अपना समूचा जीवन हिंदी के उन्नयन, उत्थान, व्याकरण विकास, साहित्येतिहास, बहुमुखी पत्रकारिता के लिए न्यौछावर कर दिया, साथ ही साथ वैज्ञानिक दृष्टिसम्मत रचनाओं का संधान कर साहित्यानुरागियों को एक नई दृष्टि व दिशा प्रदान की। तार बाबू की नौकरी से जीवन प्रारंभ करने वाले पंडित द्विवेदी की प्रधान रेट्स इंस्पेक्टर तक की यात्रा, जहां सेवा के प्रति उनकी प्रतिपद्धता, निष्ठा व समर्पण को दर्शाती है, वहीं एक जिज्ञासु पाठक से चर्चित संपादक तथा प्रसिद्ध समालोचक तक की उनकी वह ऊर्ध्वमुखी अध्यवसायी दृष्टि उनके गहन चिंतन व हिंदी के प्रति अनन्य सेवा भाव को दर्शाती है। वहीं एक जिज्ञासु पाठक से चर्चित संपादक तथा प्रसिद्ध समालोचक तक की उनकी यह ऊर्ध्वमुखी अध्यवसायी दृष्टि उनके गहन चिंतन व हिंदी के प्रति अनन्य सेवा भाव को दर्शाती है। बाल्यकाल से ही अत्यंत स्वाभिमानी प्रवृत्ति के धनी पंडित द्विवेदी ने अपने इस स्वाभिमान के गौरव व वर्चस्व को अंत तक निष्ठापूर्वक बनाए रखा। इस स्वाभिमान की पराकाष्ठा का परिचय उन निर्णायक क्षणों में दिग्दर्शित होता है जब एक अंग्रेज अफसर के व्यवहार से खिन्न हो उन्होंने दो सौ रुपए माहवार की नौकरी को ठोकर मार बीस रुपए माहवारी में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन के गरुतर उत्तरदायित्व एवं चुनौतीपूर्ण कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया। भारतेंदु युग की दहलीज पर खड़े पंडित द्विवेदी को स्वप्नदर्शी दृष्टि ने संभवतः हिंदी के विशाल प्रांगण में इसकी समृद्ध व समुन्नत भविष्य की संकल्पना पूर्व ही कर ली थी जिसके लिए वे अंत तक प्राणपण से जूझते रहे।

पं. द्विवेदी ने अपने सृजनधर्म का शुभारंभ कविता में ही किया। वे केवल एक मौलिक कवि ही नहीं अपितु लोकप्रिय संपादक के साथ-साथ चर्चित अनुवादक भी रहे जिन्होंने संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का पद्यात्मक अनुवाद कर कविता की नई भावधारा को प्रचारित-प्रसारित किया। यद्यपि आचार्य द्विवेदी का मानस वैज्ञानिक चिंतन, पत्रकारिता, साहित्यालोचना एवं अन्य सृजनधर्मी विधाओं में रत था तो भी कविता की संवेदना उन्हें जब-जब कुछ न कुछ मौलिक व अनुवाद करने को अवश्य विवश करती थी। 'श्रीमहिम्नस्तोत्र', 'शृंगार सतत', 'विहार वाटिका', 'ऋतु तरंगिणी', 'देवी स्तुति शतक', 'कुमारसंभव सार', 'काव्य मंजूषा', 'सुमन' आदि काव्य रचनाओं के अवगाहन पर यह अवधारणा बलिष्ट होती है कि काव्य प्रतिभा के अंकुर पं. द्विवेदी में प्रारंभ से ही विद्यमान थे। उस प्रारंभिक दौर में जहां जीवन से दो-चार होने की जटिल समस्याएं सामने खड़ी थीं, वहीं अनेकानेक ऐसे यथार्थपरक विषय सर्पदंश की तरह कवि की मनस्थिति को आंदोलित-उद्वेलित करते थे जो लेखनी का आहार व आधार बनने के लिए व्याकुल रहते थे। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता, यथार्थवाद के संबंधों के लिजलिजेपन से विरक्त हो केवल भावनाओं के आकाश में विचरण करने वाली कवितामात्र नहीं थी बल्कि एक ऐसी प्रबल शक्ति के रूप में थी जो वस्तु की यथास्थिति को पूर्ण मनोयोग से पाठकों एवं सत्ता के समक्ष रखती थी। या यूं कहे कि वह समय व सत्ता से टकराने का एक सशक्त हथियार थी। यद्यपि कष्ट व आपदाएं काल के सीने पर युग-युगों से ही अंकित होती रही है किंतु किसी अति संवेदनशील हृदयों में ही इसकी अनूगूंज को शब्दों का कवच पहनाकर प्रतिध्वनित करने की सामर्थ्य होती है। दुर्भिक्ष, अकाल व प्राकृतिक कोपों से समूची धरा जब-तब आप्लावित होती ही रही है किंतु अनेक प्रकार की पीड़ाओं की पराकाष्ठा के बावजूद भी पाहन हृदयों में वैचारिकता की कोकिल कूजने में असमर्थ ही

दिखाई देती रही है। इस पीड़ा की प्रतिध्वनि कवि की इन मर्मस्पर्शी पंक्तियों में एक स्पष्ट दृष्टि चित्र के रूप में उभरती हुई प्रतीत होती है जब वे 'हिंदोस्थान' (11 मार्च, 1897) में प्रकाशित 'भारतदुर्भिक्ष' कविता में अपने विचारों की प्रस्तुति इस प्रकार करते हैं–

''हे रघुनाथ! लाज भारत की
आज रहै किहि भांती;
अति विकराल काल की भीषण
भेरी सुनी न जाती।
नाती पूत मीत ममता तजि
भए सुजाति, कुजाति;
हा हा कार सुनत लोगन के
काकी फटै न छाती?''

×××

''गली-गली कंगाल पेट पर
हाथ दोउ धरि धावै;
अन्न-अन्न, पानी-पानी कहि
शोर प्रचंड मनावै।
बालक, युवा जरठ, नारी,
नर भूख-भूख कहि गावै
अविरल अश्रुधार आंखिन ते
बारंबार बहावै।।''[1]

पं. द्विवेदी की कविता जन-जीवन और जमीन की उन मूलभूत गहराइयों से उत्पन्न हुई हैं जहां की पीड़ा कविता में प्रतिध्वनित होकर किसी के भी मर्म को छूने में सक्षम है। उन्होंने कविता को केवल मनोरंजन, भावातिरेक अथवा समययापन का अस्त्र नहीं बनाया अपितु जन-जीवन के प्रति अपने भीतर आंदोलित भावनाओं के उफान में जगती की पीड़ा को गूंथ कर समाज के समक्ष उद्घाटित करने का सच्चा व सार्थक प्रयास किया है। द्विवेदी जी का पालन-पोषण मूलतः आदर्शवाद की शुष्क धरती पर हुआ है वे किसी भी स्थिति में आदर्शवादिता को जीवित रखने के लिए न केवल प्रतिबद्ध है अपितु जो कुछ दृश्य रूप में भौतिकता में दिग्दर्शित हुआ उसे ही उन्होंने अभिव्यक्ति की कूची और भावनाओं के रंग से रंग कर कविता के रूप में परोस कर समाज के सम्मुख कर दिया। 29 नवंबर, 1897 को 'हिंदी बंगवासी' में प्रकाशित 'त्राहि! नाथ!! त्राहि!!!' नामक कविता में उनके यथार्थवादी चिंतन की स्पष्ट छवि दृष्टिगोचर होती है–

''मिलै घास भूसा नहि ढूंढे
मूसा घर तजि भागे
रुपिया अश्व, अट्ठनी महिषी;
बैल चवन्नी लागै।
भए सुजाति कुजाति धर्म्म बिनु
कुलमर्यादा त्यागे
सुख से सोवत रहे शेष पै
तौहू तुम नहिं जागे।।''

×××

''बहुरि भयौ भूकंप भयंकर
प्रलय प्रचंड समाना
वंग देश कर अंग भंग सुनि
का को हिय न समाना?
बड़े-बड़े प्रासाद ध्वस्त भे
अस्त भए घर नाना
दंड एक लौ खंड-खंड ह्वै गिरि,
गिरिकुल घहराना।।''[2]

पं. द्विवेदी की कविता केवल भावों की ऊसर धरती में कल्पना के नीरस विटपों का अभिसिंचन नहीं करती अपितु जीवन की उर्वर चिंतनशील वैचारिक धरातल के उन अनछुए पहलुओं को भी रेखांकित करने की सार्थक पहल करती है जो समाज में पूर्व से भी व्याप्त थे किंतु संवेदनशीलता के अभाव में उसका अक्षुण्ण गौरव अपरिचित व उपेक्षित सा था। भाषा परिष्करण एवं गहरी साहित्यिक समझ के साथ-साथ नागरी लिपि के साथ हो रही अनावश्यक छेड़-छाड़ न केवल उन्हें पीड़ा से आंदोलित करती थी बल्कि इसके एवज में वह तत्कालीन समाज को इसकी विशद गौरव-गाथा, शाश्वत चिंतन शक्ति, प्रभाविष्णुता आदि के क्षेत्र में विश्व की अन्य समकालीन भाषाओं के समानांतर अथवा उससे सर्वथा श्रेष्ठतर करार देते हैं। वह अपनी देवनागरी के प्रति अनन्य श्रद्धा सिद्ध कर जून 1898 को 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित 'नागरी! तेरी यह दशा!!' में अपने स्नेहपूर्ण व ओजस्वी भावों की प्रस्तुति इस प्रकार करते हैं–

''तेरी समान रुचिरा, सरला, रसाला,
शोभायुता, सुमधुरा, सगुणा, विशाला।
भाषा न अन्य यहि काल अहो दिखाई;
बोले निशंक हम यों स्वभुजा उठाई।।''

×××

''श्रीसूरदास, तुलसी अरु खानखाना,
क्षेमेंद्र, केशव, कविंद्र, कवीश नाना।
छायो दिगंत यश जो इन को अपारा,
सो है प्रसाद तव नागरि! देवि! सारा।।''[3]

इन उत्तम विचारों के साथ जहां उन्होंने अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाओं में देवनागरी को श्रेष्ठतम सिद्ध किया, वहीं गुणात्मकता, प्रचुर रचनाधर्मिता, जीवंतता तथा व्याकरण सम्मतता के प्रमाण देकर इसे व्यावहारिक व भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित करने का बीड़ा भी उठाया। उनके अनुसार यह केवल वैचारिक भावोद्वेगों के आदान-प्रदान का माध्यम मात्र नहीं है अपितु समूची भारतीयता व भारतीय संस्कृति की वैचारिक क्रांति की उद्गाता भी है। यही नहीं, जन-जीवन से लेकर राजकाज तक इसके पैठ स्वयंसिद्ध है। इस बात को पं. द्विवेदी ने अपने स्तरीय विचारों में गुंफित कर इसकी महत्ता को रेखांकित करने का प्रयास इस प्रकार किया है–

''जाके बिना कचहरीघर लोग घेरे,
ताकै परारि मुख जाप बड़े सवेरे।
न प्रेम तासु जिनके मन माहि जागे,
हा! हा! विलोकि नि पातकजुंज लागै।।''

×××

''जाको लिखै सहज बालक, वृद्ध नारी;
जागै न भूल इक बिंदु-विसर्ग-वारी।
सद्धर्म जासु परिशीलन में सदा ही,
ताकी करै स्तुति कहां लगि? शक्ति नाही।।''[4]

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्यापकरणसम्मतता तथा अत्यंत महनीयता को भाव-पुष्पों में पिरोकर पं. द्विवेदी ने अन्य भाषाओं की तुलना में इसके वैयाकरणिक महत्त्व को काव्याभिव्यंजना का विषय बनाकर लोक के समक्ष प्रस्तुत किया। उनका चिंतनशील व उर्वर मस्तिष्क केवल भाषाई परिष्करण अथवा लिपि की संपन्नता, समृद्धि अथवा इसके प्रचार-प्रसार तक ही परिसीमित नहीं था बल्कि लोक की वह समूची पीड़ा को जन-जन के मन को दुःख से आप्लावित करती थी, पं. द्विवेदी की लेखनी को पूर्णतः प्रभावित कर नई ऊर्जा देते हुए शब्दों के माध्यम से जगती के समक्ष लाने का भरपूर साहस जुटाती थी। वे सारे बिंदु, जो कालांतर से समूचे जनमानस के लिए अत्यंत महत्त्वहीन व सर्वथा उपेक्षित रहते थे, उन विचार कणों को एकत्रित कर द्विवेदी जी ने नई भावभंगिमा प्रदान कर उन्हें अपने कवित्व का कथ्य बनाया। 7 अक्टूबर, 1898 को 'भारत मित्र' में प्रकाशित उनकी 'बाल विधवा विलाप' कविता एक मासूम व निर्दोष बाल विधवा की पीड़ाओं की पराकाष्ठा को शब्दों का कवच पहना कर इस रूप में अभिव्यक्ति करती है—

''वैध्वयजातदुःखसम्मुख तीव्र आगी
है कः पदार्थ? तरु देह! अरे अभागी।
हे प्राणनाथ! नहि संभव सोउ हा हा!
जानौ भले विधिविरुद्ध शरीददाहा!!''

×××

''एतादृशी लखि दशा मम दुःखदाई
हा हा करै निपट नीचहु धाय धाई।
पै दैव! तोहिं मम नेकु दया न आई
रे दुष्ट! रे कुटिल! रे शठ! रे कसाई!''[5]

जनसामान्य की पीड़ा की ध्वनि तरंगों से पं. द्विवेदी का भावप्रवण मन इतना आहत व संतप्त हो उठता है कि वे व्याकरण व शब्द प्रयोग के पगवर आचार्य होते हुए भी दीनों के परम हितैषी के रूप में उस विधाता पर शब्द की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए 'दुष्ट', 'कुटिल', 'शट' तथा 'कसाई' आदि क्रूर शब्दों के व्यंग्य बाणों से प्रहार करने में भी नहीं हिचकिचाते। अन्याय, आडंबर व अत्याचार के विरुद्ध शब्द उनके पास खंजर बन कर उन तमाम अज्ञानता की तमस ओढ़े आडंबरियों, शोषकों अथवा प्रदूषक तत्वों को ललकारते हुए नई शब्द सामर्थ्य के साथ सामान्य जन की पीड़ा को उनके कुकृत्व, कुचिंतन एवं मलिनदृष्टि के लिए समूची परंपरा को फटकारने में भी नहीं सकुचाते। वह इसके लिए केवल व्यक्ति विशेष व व्यष्टिवादी सोच को ही दोषी नहीं करार देते बल्कि समष्टि के साथ-साथ समूचे भारतवर्ष की इस हतभाग्य कर्म के लिए प्रखर स्वरों में भर्त्सना करते हैं—

''धिक्कार तोहि हतभरतवर्ष देश!
धिक्कार सभ्यसमुदायहु निर्विशेष!
धिक्कार बुद्धिबलवैभव को हमेश!
पावै जहां निबल नारि इतो कलेश!!''[6]

नारी जाति पर थोपे गए, इस असह्य अत्याचार की अनूगूंज के प्रति आक्रोश का स्वर पं. द्विवेदी जी की कविताओं में अंगार बन कर बरसता प्रतीत होता है। आदर्शवादिता के संरक्षण के साथ-साथ अन्याय के विरुद्ध निर्भीकतापूर्वक आवाज बुलंद करना उनके स्वाभिमानी जीवन का मूलभूत गुण है। पं. द्विवेदी ने यद्यपि अपनी कविता को अपनी अन्य विधाओं की तुलना में प्रभाव कौशल की दृष्टि से क्षीण स्वीकारा है किंतु इसमें भी कहीं न कहीं परोक्षतः उनके चिंतन की विशदता, वैचारिक महानता व साहित्यिक गहनता ही परिलक्षित होती है। उन्होंने अपनी कविताओं में उस उपेक्षित विषयों को भी कथ्य बनाने का सार्थक प्रयास किया है जो या तो अत्यंत महत्त्वहीन थे या जिनकी ओर सभ्य समाज की बौद्धिक दृष्टि जानी संभव ही नहीं थी। अत्यंत महत्त्वहीन विषयों को काव्य के अद्‌भुत कवच पहना कर उन्होंने न केवल समसामयिकता को उसके माध्यम से प्रतिष्ठित किया बल्कि तत्कालीन समाज में व्याप्त मनस्थिति की गोपनीयता को भी सार्वजनिक करने का साहस भी जुटाया। 29 अगस्त, 1898 को 'हिंदी बंगवासी' में प्रकाशित उनका 'गर्दभ काव्य' में उनकी इन भावनाओं की प्रतिध्वनि सुनाई दे सकती है—

''शिशिर, बसंत, हेमंत, एक नहि;
ग्रीष्म हमको प्यारा है
तपती भूमि, गांव के बाहर,
बरफिस्थान हमारा है।
सन् सन् सन् सन् चलै लूह जब,
आंवां अस जग जारा है,
तबहि करै हम मौज मजे में;
सारा मुल्क इजारा है।।''

×××

''बड़े-बड़े कवि, पंडित, ज्ञानी,
जग निते उजियारा है;
तेऊ लहै उपाधि हमारी जब तब;
अस सत्कारा है।
मलिन, मंद, अपवित्र,
इते पर जिन हम काहि विचारा है;
हियो कपार द्वऊ में तिनके
उपज्यो चक्षु विकारा है।''[7]

पं. द्विवेदी की यथार्थवादी कविता में जहां जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का स्पष्ट चित्रण परिलक्षित होता है, वही अन्य भावप्रवण विषयों पर भी उनकी कविताएं बिना किसी लाग-लपेट के अपने कथ्य को निरूपित करने में सफल हुई है। यह समूचा भौतिक संसार आशाओं व तृष्णाओं का ही गुणनफल है। कोई भी महानतम उपलब्धि अथवा परिलब्धि तब तक अपना आकार ग्रहण नहीं कर सकती जब तक वह आशा

व तृष्णा के कैनवास में मानचित्र की सी भूमिका में परिलक्षित नहीं हो जाती। भावों का मानचित्र जीवन के किसी भी उपलब्धिपूर्ण बहुमंजिले भवन की आधारशिला है। इस अदृष्ट व आभासित आशा को पं. द्विवेदी ने अत्यंत प्रांजल शब्दों में पिरोने का प्रयास किया है। उनकी कविता 'आशा', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुई थी, जो स्वतः ही विषय को स्पष्ट करती प्रतीत होती है–

''बिना पैर के पंगु पाथोधि पारा,
क्षणैकार्द्ध में लांधि ऊंचे पहारा।
जहां जी चाहै, जाय, नाना प्रकारा,
विलोकै छटा पाय तेरो सहारा।
गए गर्भ ही में द्वऊ नैन जाके,
सुनौ, हौं सुनाऊं, समाचार ताकै।
अहो! सोउ, आशाकृपा पाय, तारा
गिनै सर्व आकाश के बीस बारा।।''[8]

निश्चित रूप से केवल कविता का प्रभामंडल ही नहीं बल्कि संसार का भव्य, रंगमंच भी बिना आशा के प्रेरक जल के मरुस्थल के समान ही नीरस और शक्तिहीन प्रतीत होता है। काव्य कलाओं की श्रेष्ठ कच्ची सामग्री से निर्मित कविता का वह आभासी भवन जीवंतता की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता जिसमें आशा सहधर्मिणी बन कर जीवन की अंगुली थामे गंतव्य की ओर लक्ष्योन्मुख करने की प्रेरणा नहीं देती। यही नहीं पं. द्विवेदी ने समय-समय पर संस्कृत में प्रेरक अनुवाद एवं भौतिक रचनाएं कर अपनी रचनाधर्मिता को विस्तारित किया है। 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित उनकी कविता 'मेघमालां प्रति चंद्रिकोक्ति' उनकी यथार्थवादी कविता की अनोखी छटा को प्रस्तुत कर नए सौंदर्यबोध का परिचय कराती है। वे रात्रि को केवल गहन अंधकार व अज्ञानतापूर्ण तमस का पर्याय ही नहीं मानते, बल्कि अनेक प्रकार के दुष्कृत्यों का संधिस्थल भी स्वीकारते हैं। उनके लिए रात्रि क्रूरता, बर्बरता, व्यभिचार एवं कुचिंतन के साथ-साथ कृकृत्यों की घोर कर्मस्थली भी है। इसीलिए वे उन सबका यथार्थवादी एहसास कराकर संस्कृत कविता के माध्यम से अपनी स्पष्टवादिता का परिचय इस प्रकार देते हैं–

''जानसि किं त्वन्न तवैव योगं
प्राप्य प्रियाः प्रेम परा निशायाम्
केलिस्थलं सतवरमेव गत्वा
कुर्वन्ति पापम व्यभिचारजातम्।''

×××

''तवैव योगेन निशि प्रहृष्टा-
श्चौरा धनं धान्यमहो हरन्ति।
दशन्ति सर्पा अपि घोररूपा
यदासि रात्रौ गगने त्वमेव।।''[9]

जहां पं. द्विवेदी ने समकालीन विसंगतियों का यथार्थवादी चित्रण अपनी कविता में किया है, वहां वे 'कथनी व करनी' के अंतर को भी रेखाकिंत करते हुए सामाजिक ढोंगों, बाह्याडंबरों धर्म, के नाम पर पनपते खोखले अंधविश्वासों व रूढ़िवादिता से पनपती मूल्यहीन संस्कृति से भी दो-चार होने में झिझके नहीं हैं। वे उन कठोर व्रतों, आडंबरपूर्ण अनुष्ठानों एवं धन-लोलुप पंडितों के दर्शन को भी नकारते प्रतीत होते हैं जो निजी स्वार्थपरायणता से ग्रसित हो देवत्व व धर्म के व्यामोह में सामान्य जनता को दिग्भ्रमित करते हुए निष्फल गंतव्य की ओर अग्रसर होने को विवश करते हैं। दिग्भ्रमित नारी की मानसिक मनोभावना को अनुगूंज एवं अंततः पश्चाताप की पीड़ा की प्रतिध्वनि पं. द्विवेदी की 8 जनवरी, 1900 को 'भारत मित्र' में प्रकाशित 'सुतपंचाशिका' कविता में दृष्टव्य है–

''मैं और बहु व्रत किए अनेक;
उपवास न जानहुं धौ कितेक।
सुरध्यान धरो; बहु करो दान;
सनमाने भूसुर, बुध, महान।।''

×××

''बरसों संतान-गोपाल मंत्र जप भयो,
बंधाए विविध यंत्र।
हरिवंश पुराणहु बार सात, उन सुन्यो;
न तउ कछु कहूं दिखाता।।''[10]

कवि ने अपनी कविता का विषय उन विकारी भावों को भी बनाने का प्रयास किया है जो महज दूसरे प्रकार की भावों की ही सृष्टि पूर्व में करते रहे हैं। इस स्वप्नमय संसार में स्वप्न ही वह अभूतपूर्व पूंजी है जिसके बीज रूप में प्रस्फुटित व पल्लवित होने पर संसार की कामनाओं, तृष्णाओं की वंश बेल न केवल गति पकड़ती है अपितु उन्हीं के आधार पर जीवन के सुख-दुःखों के प्रांगण की रचनाएं होती दिखाई देती हैं। सृजन हो अथवा विध्वंस उसके मूल में समाए स्वप्नों की अनुगूंज ही उसके सुखद व दुःखद भविष्य की पूर्वानुमानित नीव होती है। कवि ने निरे स्वप्न समझे जाने वाले भाव स्वप्न को 4 दिसंबर, 1899 के 'भारत मित्र' में प्रकाशित अपनी कविता 'स्वप्न' के माध्यम से इस प्रकार निरूपित किया है–

''रसके रुचिर भेद नहीं जानत
तद्यपि बाहु पसारी,
वा रसिका सो चहहिं, मोहवश,
आलिंगन, बलिहारी।
भागै दूरि घृणा करि जउ वह,
सरै न एको काज,
तऊ बलात्कार में इनको
आवै तनिक न लाज।।''

×××

''रसिक शिरोमणि कालिदास बिनु
अन्य पुरुष रसभाखी,
वाहि लखाहिं बिनु
अन्य पुरुष रसभाखी,
वाहि लखाहि हीन, पौरुष बिन,
अहहिं विबुध मन साखी।
पति अब वाहि और नहिं भावै
विधवा वर्ष करोरि,

चाहै रहै, सहै दुख दारुण
मिश्र बहोरि बहोरि।।''[11]

पं. द्विवेदी ने जहां जन-जीवन की विसंगतियों को अपनी कविता का माध्यम बनाकर अपने विचारों को सामाजिक पीड़ा से संलिप्त कर निरूपित करने का प्रयास किया है, वहीं ऐतिहासिक, पौराणिक व अन्यान्य संदर्भों का स्पर्श करते हुए तत्कालीन समाज के दुख-दर्द को भी प्रतिध्वनित करने का प्रयास किया है। उन्होंने केवल नाहक शब्दों के निरर्थक, खोखले व जीर्ण-शीर्ण भवन नहीं तैयार किए, अपितु कविता की वह स्पष्ट व पारदर्शी मूर्ति निर्मित की जो समकालीन परिस्थितियों व समय की भावाभिव्यक्तियों को प्रतिबिंबित करने में सक्षम हुई है। मार्च, 1900 को 'सुदर्शन' में प्रकाशित उनकी एक कविता 'अयोध्या का विलाप' इन्हीं भावनाओं को उद्घाटित करती प्रतीत होती है–

''हे कोसलस्थजन! रामपुरी दुखारी,
नाशोन्मुखी, नयननीर बहाय भारी।
सारी विपत्ति अब आजु तुम्है सुनाई,
मांगै विदा अहूह! अंतिम शीश नाई।।''

×××

''जो प्रीतिलेश कछु होहि स्वधर्म माहीं;
जो पै दया तुमहिं वंचित कीन नाही।
जो देश-भक्ति हिय में कछुहू तिहारे;
तो धाय शीघ्र अब कष्ट हरौ हमारे।।''[12]

प्रकृति की ही तरह पारदर्शी व यथार्थमय व्यक्तित्व के धनी पं. द्विवेदी के चिंतन व काव्यात्मक सृजन में जीवन की अनुभूतियों के वे यथार्थ रंग-चित्र मिलते हैं जो धरती व जगती की पीड़ा को आत्मसात करते हुए जड़ व चेतन के भेद मिटाते हुए बेबाकपने से वाणीहीन मवेशियों के दुःख-दर्द की अभिव्यंजना करने में भी उसी चातुर्य के साथ परिलक्षित होती है जो चेतन मनुष्यों की स्थितियों, परिस्थितियों, पीड़ाओं, चिंताओं एवं जीवनानुभूतियों का चित्रण करते हुए देखी जाती हैं। एक बैल पर किए जा रहे अनवरत अत्याचारों की शृंखला जहां मानवीय कुकृत्यों की पराकाष्ठा को दर्शाती हैं वही अत्यंत सहिष्णुतापूर्वक उस वाणी विहीन बैल की शक्ति, सामर्थ्य व पीड़ा भी कवि को कम भावविह्वल नहीं करती जब वे 19 अक्टूबर, 1900 को 'वेंकटेश्वर समाचार' में प्रकाशित अपनी कविता 'बलीवर्द' में बैल को संबोधित करते हुए कहते हैं–

''बूढ़े हो जाने पर भी तुम कभी
विरक्त न होते हो;
मार तड़ातड़ खाने पर भी
सिर तक नहीं हिलाते हो।
छिले हुए कंधे से भी तुम छकड़े
नित्य चलाते हो;
बहुत कष्ट पाने पर मग में;
गिरते हो, उठ आते हो।।''[13]

पं. द्विवेदी ने अपनी ओजस्वी कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त उन कुरीतियों, विसंगतियों तथा अनैतिकताओं का बेबाकपने से पर्दाफाश ही नहीं किया बल्कि अपनी काव्य प्रतिभा से उसके प्रयोक्ताओं को गहरा झटका देकर इस पाशविकवृत्ति को छोड़कर मानवता व सद्चिंतन की भावनाओं को विस्तारित करने हेतु उत्प्रेरक भी किया। कविता उनके लिए मनोरंजन का साधन मात्र नहीं थी बल्कि अपने युग की समाज को खोखली करती कुरीतियों के विरुद्ध एक ऐसा अस्त्र भी था जो मानवीय गुणों के अवमूल्यन को दूर कर मूल्यों की स्थापना के प्रति मानवीय सरोकारों को आकर्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। मांस भक्षकों को जहां द्विवेदी जी पाशविकता व दानवीय हरकतों से कहीं ऊपर समाधिष्ट करते है वहीं उनसे कई गुणा श्रेष्ठतर पशु समुदाय को समझते हैं। 19 नवंबर, 1900 को 'हिंदी बंगवासी' में प्रकाशित अपनी कविता 'मांसाहारी को हंटर' में वह अपना प्रतिशोध व आक्रोश इन पंक्तियों में करते दृष्टिगोचर होते हैं–

''धिक्कार तोहिं; नर-जन्म वृथाहि पायौ;
आहार मांस करि मानुषता नसायौ।
तो सो भले पशु; असभ्य मनुष्य आदि;
हा हन्त!! तव जीवन-जाल बादि!!!''

×××

''लै अस्थि, ताहि अपने मुख माहि डारी,
चूसै शुनी शुनक हर्ष विशेष धारी।
जो तुहु मोद-युत चाबतु हाड़ हा हा!
तो श्वान-वर्ग अरु तो महं भेद काहा?''[14]

कविवर द्विवेदी एक ऐसे अहिंसात्मक समाज के नवनिर्माण के समर्थन थे जहां एक जीव के द्वारा दूसरे जीव का अनावश्यक शोषण न हो। इसीलिए मांस भक्षण को वह पाशविक एवं अमानवीय व कृत्य करार करते हैं। सद्चिंतन एवं सौहार्द से परिपूर्ण द्विवेदी जी के मस्तिष्क में बार-बार यह बात कौंधती है कि श्रेष्ठतम व निकृष्टतम की जन्मदात्री जब एक ही वसुंधरा है तो चिंतन की तारतम्यता में एकाएक फिर इतना विरोधाभास क्यों? विधि की इस विडंबना के प्रति भी उनके मन में अत्यंत आक्रोश समाया रहता है जब सत्य की रक्षा करने वाले असत्य के अनुयाइयों द्वारा प्रताड़ित किए जाते हो व असत्य एवं कुविचारों के धनी लोग सीमा तानकर धरती पर विचरण करते हों। इस प्रकार की असामाजिकता व सत्य और असत्य के बीच में खाई उत्पन्न करने वाले विधि के विधान व स्वयं ब्रह्म को ललकारते हुए कवि के आक्रोशित स्वरों को मई 1901 में 'सरस्वती' में प्रकाशित उनकी कविता 'विधि विडंबना' में देखा जा सकता है–

''नित्य असत्य बोलने में
जो तनिक नहीं सकुचाते है
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर
बड़े-बड़े उग जाते हैं?
घोर घमंडी पुरुषों की
क्यों टेड़ी हुई न लंक?
चिह्न देख जिसमें सब

उनको पहचानते निःशंक।।''

×××

''दुराचारियों को तू प्रायः
धर्माचार्य बनाता है;
कुत्सित-कर्म-कुशल कुटिलों को
अक्षरज्ञ उपजाता है।
मूर्ख धनी, विद्वद्जन निर्धन;
उलटा सभी प्रकार।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा!
बार बार धिक्कार!!''[15]

भाषाई गौरव, सांस्कृतिक स्वाभिमान तथा व्याकरणसम्मतता के धनी कवि श्रेष्ठ द्विवेदी को हिंदी की गरिमामय परंपरा से होती अनावश्यक अज्ञानपूर्ण छेड़छाड़ कदापि सह्य नहीं थी। 'सरस्वती' के संपादन के दौरान भी वे ठोक-पीट कर रचनाओं की व्याकरणसम्मतता तथा भाषाई शुद्धियों के परिमार्जन में तब तक जुटे रहते जब तक उन्हें कृति के कलवेर में एक ऊर्जावान व प्रवाहमयी भाषा का लावण्य न दिखाई दे देता। वे जब-तब तत्कालीन समालोचकों, हिंदी सेवियों व विद्वानों से भी इस संबंध में निरंतर विचार-विमर्श करते व खंडित होते, हिंदी के सम्मान को रोकने का भरसक प्रयास करते। इसीलिए भाषाई विकृति की पीड़ा इनके गद्य आलेखों के साथ-साथ कवितामय अभिव्यक्तियों में भी स्पष्टतः परिलक्षित होती है। अगस्त, 1901 में 'सरस्वती' में प्रकाशित 'ग्रंथकार लक्षण' कविता में वे व्यंग्यात्मक रूप में ग्रंथकार के लक्षणों का बखान करते हुए कहते हैं–

''शब्द-शास्त्र है किसका नाम?
इस झगड़े से जिन्हें न काम;
नहीं विराम चिह्न तक रखना
जिन लोगों को आता है।
इधर-उधर से जोर बटोर
लिखते हैं जो तोड़ मरोड़;
इस प्रदेश में वे ही पूरे
ग्रंथकार कहलाते हैं।''

×××

''भला बुरा छपवाए सिद्ध;
धन न सही; नाम ही प्रसिद्ध
नाटक, उपन्यास लिखने में
जरा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूद का सार
बंगला भाषा का भंडार
वे ही महामहिम-विद्वद्जन
ग्रंथकार कहलाते हैं।''[16]

अतः साहित्यिक समालोचना, 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से स्तरीय पत्रकारिता तथा अन्यान्य विधाओं में अपनी ओजस्वी वाणी से हिंदी साहित्य के भंडार को संमृद्ध करने वाले पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता में असंख्य छवि-चित्र यथार्थवादी कविता के दृष्टिगोचर होते हैं जो तत्कालीन समाज के सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक चिंतन के प्रतिबिंब को कविता के माध्यम से उकेरती है। निश्चित रूप से भाषाई अनुशासन के साथ-साथ छंदोबद्धता व भावप्रवणता में मनीषी द्विवेदी की ये परिपक्व कविताएं, जो उनके वृहद चिंतन को दर्शाती हैं, हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि के रूप में स्मरण की जाएंगी। यद्यपि उनकी समग्र यथार्थपरक कविताओं का खंड-चित्र ही इस लघु आलेख के माध्यम से संभव हो सका है किंतु मात्र इन्हीं अभिव्यक्तियों से उनके वृहद चिंतन, स्पष्टवादिता, बेबाकपने तथा विपरीत स्थितियों से दो-चार होने की दृढ़-शक्ति स्पष्टतः प्रतिबिंबित होती है। जो साहित्यकार अथवा कवि समाज की विसंगतियों से दो-चार होकर अवमूल्यन की आंधी में मूल्यों के दीप न जला सके वह भी भला क्या साहित्यसेवी? यह समग्रतः भाषाई स्वाभिमान व चिंतन को हृदय की गहराइयों से जीने वाले समर्थ व सक्षम भावप्रवण कविहृदय कवि प्रवर महावीर प्रसाद द्विवेदी की सशक्त लेखनी से परिचित होकर जाना जा सकता है।

संदर्भ–

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली, खंड-13, संपादक–भारत यायावर, पृष्ठ-32
2. वही, पृष्ठ- 37
3. वही, पृष्ठ-53
4. वही, पृष्ठ- 55
5. वही, पृष्ठ- 66-67
6. वही, पृष्ठ- 70
7. वही, पृष्ठ- 71
8. वही, पृष्ठ- 75
9. वही, पृष्ठ- 87
10. वही, पृष्ठ- 801
11. वही, पृष्ठ- 107
12. वही, पृष्ठ- 123
13. वही, पृष्ठ- 127
14. वही, पृष्ठ- 133
15. वही, पृष्ठ- 144
16. वही, पृष्ठ- 149-150

'अभिव्यक्ति', गढ़ विहार, म. नं.–157,
फेज–1, मोहकमपुर, देहरादून–248005

हिंदी के युग प्रर्वतक साहित्यकार-संपादक

डॉ. भावना शुक्ल

हिंदी के युग प्रवर्तक साहित्यकार और संपादक आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी के उन्नायकों में अग्रगण्य हैं। द्विवेदी जी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली अंचल के ग्राम दौलतपुर में वैशाख शुक्ल 4, सं. 1921 को, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. रामसहाय दुबे के पुत्र के रूप में हुआ था, जो उस सेना के सैनिक थे, जिसने अंग्रेज शासन के विरुद्ध विद्रोह किया था।

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता की स्थिति को सुधारने के लिए जिस सक्षम व्यक्तित्व की आवश्यकता थी, वे थे पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी। हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभिक भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण का काल था। उस दौरान भारत की राष्ट्रीय, जातीय व भाषाई चेतना जागृत हो रही थी। इस दौर की पत्रकारिता एक मिशन के तौर पर काम कर रही थी। उस दौर के पत्रकारों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में जो आयाम और जो आदर्श स्थापित किए, वे आज भी पत्रकारिता की उदीयमान पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का स्रोत हैं। ऐसे ही पत्रकार थे आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, जिन्हें हिंदी पत्रकारिता जगत में संपादकों का आचार्य भी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

द्विवेदी जी प्रतिभा संपन्न थे। रेलवे में कार्यरत रहते हुए उन्होंने तार संबंधी एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी। वे रेलवे की नौकरी के दौरान मध्य प्रदेश में भी रहे। कुछ दिन जबलपुर में भी बीते। द्विवेदी जी हिंदी की स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। वे उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। संयोग यह हुआ कि काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना सं. 1950 में हुई और उसके तत्वावधान में इंडियन प्रेस इलाहाबाद ने श्यामसुंदर दास के संपादन में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। द्विवेदी जी 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ लेख भेजने लगे। लेख ससम्मान प्रकाशित होने लगे।

जब बाबू श्यामसुंदर दास ने संपादन में असमर्थता व्यक्त की तब इंडियन प्रेस स्वत्वाधिकारी चिंतामणि घोष ने पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी को आमंत्रित किया। द्विवेदी जी रेलवे से त्यागपत्र दे चुके थे, अतः उन्होंने 'सरस्वती' के संपादन का दायित्व स्वीकार कर लिया।

द्विवेदी जी जनवरी सन् 1903 में कानपुर में रहकर 'सरस्वती' का संपादन करने लगे। उन्होंने लगभग बीस वर्ष तक पूरी दक्षता और समर्पण से 'सरस्वती' का संपादन कर लेखकों की पीढ़ियों का निर्माण किया। लेखक ऐसे जो पत्रकारिता में भी निपुण थे जैसे—गणेश शंकर विद्यार्थी, लल्ली प्रसाद पांडे, बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि द्विवेदी जी की ही प्रेरणा की उपज थे।

द्विवेदी जी की पत्रकारिता और उनकी संपादन शैली के बारे में जानने के लिए बाबूराव विष्णु पराड़कर की पंक्ति प्रस्तुत है—''सन् 1906 से जब मैंने स्वयं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया प्रति मास 'सरस्वती' का अध्ययन मेरा कर्तव्य हो गया। मैं सरस्वती देखा करता था संपादन सीखने के लिए।''

द्विवेदी जी ने हिंदी पत्रकारिता में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वे सदैव नवोदित पत्रकारों को मार्गदर्शन देते रहे। हिंदी पत्रकारिता और भाषा की प्रगति को लेकर आचार्य द्विवेदी जी जीवनपर्यंत प्रयास करते रहे। हिंदी पत्रों की कम होती संख्या पर चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है—''हमारे प्रांत की मातृभाषा हिंदी ही है परंतु स्वदेश और स्वभाषा के शत्रु उसे अपाठ्य समझते हैं। इसी कारण उर्दू के पत्रों की अपेक्षा हिंदी पत्रों की संख्या कम हो रही है। मातृभाषा के इन द्रोहियों को भगवान ठिकाने लावै। इनमें पांच फीसदी अंग्रेजी के धुरंधर पंडित जरूर होंगे। इन्हें रोज पायनियर और इंगलिश मैन पढ़े बिना चैन नहीं पड़ता। इनकी शिकायत है कि हिंदी में कोई अच्छा पत्र है ही नहीं पढ़ें क्या? पर इनको यह नहीं सूझता कि अच्छे हिंदी पत्र निकालने वाले क्या किसी लोक से आवेंगे। या तो खुद निकालो या औरों के पत्र लेकर उन्हें उत्साहित करो, या अच्छे पत्र निकालने वालों की मदद करो। सिर्फ प्रलाप करने से हिंदी के अच्छे पत्र पैदा नहीं हो सकते।''[1]

द्विवेदी जी की पत्रिका 'सरस्वती' से ही हिंदी पत्रकारिता में शीर्ष स्थान रखने वाले संपादकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया था। सीखने की प्रवृत्ति रखने वाले पत्रकारों को द्विवेदी जी सदा ही प्रोत्साहित करते थे। उनका मानना था हमें सर्वज्ञता का घमंड नही करना चाहिए और हमें अपने लिखे हुए में परिशोधन को अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

आचार्य द्विवेदी जी ने हिंदी पत्रकारिता को साहित्य के सरोकारों से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके संपादन में निकलने वाली

'सरस्वती' पत्रिका का हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट स्थान है।

'सरस्वती' के कुशल संपादन से द्विवेदी जी का यश दिगंत व्यापी हो गया। उनकी विद्वता सर्वमान्य हो गई। इसीलिए इस काल को 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। अपने प्रकांड पांडित्य के कारण इन्हें काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें 'आचार्य' की उपाधि से सम्मानित किया। एक अपूर्व अभिनंदन ग्रंथ भी भेंट किया गया। प्रयाग में डॉ. गंगानाथ झा की अध्यक्षता में आयोजित द्विवेदी मेला में द्विवेदी जी को 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि से अलंकृत किया गया।

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा को त्रुटिरहित एवं व्याकरण सम्मत बनाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है। द्विवेदी जी के योगदान को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—''यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण-विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती।'' द्विवेदी जी श्रेष्ठ साहित्यकार होने के साथ-साथ एक कुशल संपादक भी थे। उनकी प्रतिभा से तत्कालीन विद्वानों ने बहुत कुछ ग्रहण किया। राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के गौरव को प्राप्त करने तथा भाषा के परिनिष्ठित रूप निर्धारण करने में उनका योगदान वंदनीय है।

'सरस्वती' के संपादक के रूप में हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में महान कीर्तिमान स्थापित करने वाले द्विवेदी जी हिंदी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिंदी की कविता के महत्त्वपूर्ण कवि थे। वे भाषा शास्त्री थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो युग निर्माता थे।

आचार्य किशोरी दास बाजपेयी ने उनके विषय में लिखा है—''उनके सुदृढ़, विशाल और भव्य कलेवर को देखकर दर्शक पर सहसा आतंक छा जाता था और यह प्रतीत होने लगता था कि मैं एक महान ज्ञानराशि के नीचे आ गया हूं।'' द्विवेदी जी का मानना था कि 'ज्ञानराशि के संचित कोष' का नाम ही साहित्य है। द्विवेदी जी स्वयं एक महान ज्ञानराशि तो थे ही उनका संपूर्ण वाङ्मय भी संचित ज्ञानराशि है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है—''द्विवेदी जी ने अपने साहित्य के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में उनकी और पुस्तकों से बड़ी है, वह संपत्ति शास्त्र है। अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण द्विवेदी जी बहुत से विषयों पर ऐसी टिप्पणी लिख सके जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएं लांघ जाती हैं।''[2]

अतः हिंदी में द्विवेदी जी के पदार्पण का अर्थ एक युग का प्रारंभ है। एक क्रांति का सूत्रपात हुआ, निश्चय ही उनके पारस स्पर्श से हिंदी साहित्य और पत्रकारिता कुंदन हो गई।

द्विवेदी जी धन से गरीब, मन से अमीर थे। उन्होंने अपना निजी पुस्तकालय काशी नागरी प्रचारिणी सभा को दान स्वरूप भेंट कर दिया था। परम विद्वान, बहुश्रुत, बहुपठित, बहुभाषाविद्, कुशल लेखक, अनुवादक, संपादकाचार्य पं. महावीर प्रसाद 21 दिसंबर सन् 1936 को चिरनिद्रा में लीन हो गए।

द्विवेदी जी के मौलिक ग्रंथ—1. नैषध चरितचर्चा, 2. हिंदी कालिदास की समालोचना, 3. लालसीता राम की रचनाओं की आलोचना, 4. दार्शनिक परिभाषा शब्दकोष, 5. हिंदी रीडर की आलोचना, 6. नाट्यशास्त्र, 7. विक्रमांक देव चरित चर्चा, 8. हिंदी भाषा की उत्पत्ति, 9. संपत्ति शास्त्र, 10. कालिदास की निरंकुशता, 11. शिक्षा, 12. वनिता विलास, 13. औद्योगिकी, 14. सज्ञरंजन, 15. कालिदास और उनकी कविता, 16. सुकवि संकीर्तन, 17. वक्तृत्व काला, 18. अद्भुत आलाप, 19. साहित्य संदर्भ, 20. अतीत स्मृति, 21. कोविद कीर्तन, 22. विदेशी विद्वान, 23. पुरावृत्त, 24. अध्यात्मिका, 25. आलोचनांजलि, 26. समालोचना समुच्चय, 27. प्राचीन चिह्न, 28. लेखांजलि, 29. वैचित्र-चित्रण, 30. पुरातत्व प्रसंग, 31. साहित्य सीकर, 32. संकलन, 33. विचार विमर्श, 34. अवध के किसानों की बर्बादी, 35. दृश्य दर्शन, 36. चरित्र चित्रण, 37. चरित्र चर्चा, 38. विज्ञ विनोद, 39. साहित्यालाप, 40. वाग्विलास, 41. महिला मोद, 42. विज्ञान वार्ता।

अनुवादित ग्रंथ—1. शिव महिम्न स्त्रोत, 2. गंगा लहरी, 3. बेकन विचार, 4. भामिनी विलास, 5. अमृत लहरी, 6. जल चिकित्सा, 7. स्वाधीनता, 8. हिंदी महाभारत, 9. शिक्षा शास्त्र, 10. रघुवंश, 11. कुमार संभव, 12. किरातार्जुनीय, 13. मेघदूत, 14. वेणीसंहार, 15. प्राचीन पंडित और कवि, 16. आख्यायिका सप्तक।[3]

सरल, स्वाभिमानी और निर्भीक पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की तपस्या का फल है कि आज हिंदी उन्नत अवस्था में है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' के पृष्ठों पर अपने साहित्य गुरु द्विवेदी जी का स्मरण जिस रूप में किया है, वह पूरे हिंदी जगत का स्वर है—

''करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद।
'महावीर' का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।।''

संदर्भ ग्रंथ—

1. 'सरस्वती' मई, 1908, पृष्ठ 194 (avadhbhumi.wordpress.com/2012/01/25
2. हिंदी लेखक—राजेंद्र सिंह गौड़।
3. दिवंगत हिंदी सेवी—छेमचंद सुमन।

एफ-19, मोती नगर, नई दिल्ली-1100015

एक संपूर्ण साहित्यिक आत्मा

डॉ. सारिका कालरा

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारंभिक चरणों को दो रचनाकारों के नाम से जाना जाता है—भारतेंदु युग और दूसरा द्विवेदी युग संभवतः इसके पीछे दोनों ही व्यक्तियों की बहुमुखी प्रतिभा थी जिसके फलस्वरूप दोनों अपने-अपने साहित्यिक समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतेंदु युग से महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिंदी नई चाल में ढलकर मिली थी लेकिन अभी उस हिंदी ने अपना बाना पूरी तरह से पहना नहीं था। प्रदेशगत विभिन्नताओं के कारण उसमें अनेकरूपता थी। उन अनेक रूपों को एक रूप प्रदान करने और उस समय के युवा उभरते हुए लेखकों को भावगत और भाषागत नया संस्कार देने का अधिकांश श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की खोज का श्रेय सरस्वती पत्रिका के संपादक बाबू चिंतामणि घोष को जाता है। सरस्वती केवल साहित्यिक पत्रिका मात्र नहीं थी। उसमें मानव जीवन के सभी पक्षों—विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, इतिहास आदि विषयों के लेख भी प्रकाशित होते थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी से पहले बाबू श्यामसुंदर दास सरस्वती के संपादक थे। द्विवेदी जी सरस्वती के संपादक कैसे बने इसके पीछे एक रोचक प्रसंग है। इंडियन प्रेस से प्रकाशित हिंदी की एक पुस्तक थी, जिसमें भाषागत त्रुटियां बहुत अधिक थीं। द्विवेदी जी ने उन त्रुटियों को रेखांकित कर चिंतामणि बाबू के पास भेजा। चिंतामणि बाबू अपनी प्रकाशित कृति की इतनी त्रुटियां देख अचंभित हुए और कुपित होने के बजाए उन्होंने द्विवेदी जी की अत्यंत सराहना की। श्यामसुंदर दास ने जब सरस्वती का संपादन छोड़ा तो घोष बाबू ने द्विवेदी जी से सरस्वती पत्रिका का संपादन भार संभालने का अनुरोध किया। इस तरह सन् 1903 में द्विवेदी जी सरस्वती के संपादक बने और हिंदी साहित्य को अपना (1900-1918) का युग निर्माता मिला। आचार्य द्विवेदी एक सफल संपादक थे। सरस्वती का संपादन उन्होंने 1903 से 1920 तक किया। उस समय प्रत्येक लेखक और कवि के लिए यह गौरव का विषय होता था कि उसकी रचना 'सरस्वती' पत्रिका में छपे। सरस्वती का प्रत्येक संस्करण द्विवेदी जी के अथक परिश्रम से हिंदी साहित्य और भाषा की श्रीवृद्धि करता है। द्विवेदी जी समय के पाबंद थे। यह अनुशासन केवल उनके व्यक्तित्व में ही नहीं बल्कि उनके कार्यों में भी झलकता है। सरस्वती के प्रकाशन में विलंब उन्हें असह्य था। सरस्वती का प्रत्येक अंक उन्होंने समय से पूरा और प्रकाशित किया। 1903 की सरस्वती में 109 रचनाओं में से 70 स्वयं उनकी लिखी हुई हैं। उन्होंने सरस्वती में कल्पित नामों से भी लेख लिखे। गजानन गणेश गर्वखंड, श्रीखंड एम.ए. कमला किशोरी त्रिपाठी, नियम नारायण शर्मा आदि उन्हीं के कल्पित नाम थे। सरस्वती के लिए वे छह माह आगे की सामग्री तैयार रखते थे और प्रकाशन से पहले ही अंक की सामग्री यथास्थान सजी रहती थी। बाबू विष्णु पराड़कर ने द्विवेदी जी की संपादन कला की प्रशंसा करते हुए लिखा है—''आचार्य द्विवेदी के समय की 'सरस्वती' का कोई अंक निकाल देखिए, मालूम होगा कि प्रत्येक लेख, कविता और नोट का स्थान पहले निश्चित कर लिया गया था।... सरस्वती का प्रत्येक अंक अपने रचयिता के व्यक्तित्व की घोषणा अपने अंग-प्रत्यंग के सामंजस्य से देता है। मैंने अन्य भाषाओं के मासिकों में भी यह विशेषता बहुत कम पाई है और विशेषकर इसी के लिए मैं स्वर्गवासी पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी को संपादकाचार्य मानता हूं।''—(बाबू विष्णु पराड़कर—साहित्य संदेश, द्विवेदी अंक)

भारतेंदु युग में खड़ी बोली साहित्य का माध्यम तो बनी पर पूरी तरह नहीं। पद्य ब्रजभाषा में ही लिखा जाता रहा। यद्यपि भारतेंदु की कुछ कविताएं खड़ी बोली में मिलती हैं। भारतेंदु द्वारा यह भी एक नया प्रयोग था कि माध्यम रूप में तो उन्होंने कुछ कविताओं में खड़ी बोली को अपनाया पर छंद ब्रजभाषा के ही थे। इस तरह हिंदी साहित्य में गद्य का माध्यम तो खड़ी बोली बनी और काव्य मुख्यतः ब्रजभाषा में लिखा जाता रहा।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती की संपादन नीति द्वारा इस बात पर बल दिया कि दुनिया के अन्य साहित्यों के अनुरूप हिंदी में भी गद्य और कविता की रचना का माध्यम एक ही होना चाहिए। खड़ी बोली का खुरदरापन भारतेंदु युगीन कवियों के लिए समस्या थी। ब्रजभाषा की मृसणता, कोमलता उन्हें कविता के अनुकूल प्रतीत होती थी परंतु द्विवेदी जी का मत था कि खड़ी बोली का अधिकाधिक प्रयोग ही इस समस्या का समाधान है। खड़ी बोली का खुरदरापन कविता में प्रयोग होते-होते ही समाप्त हो सकता है और यह प्रयोग सफल भी रहा। हिंदी साहित्य के लिए यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था और इस परिवर्तन के पुरोधा थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

द्विवेदी जी अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी आदि कई भाषाओं के विषेशज्ञ थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती के संपादक बनने से पूर्व रेल-विभाग में तार बाबू थे। रेल के तारों से प्रेषित संदेशों से उलझा रहने वाला व्यक्ति हिंदी साहित्य के महान लेखकों का पथ प्रदर्शित करता है, यह एक आश्चर्यजनक सच्चाई है। हिंदी भाषा की अस्थिरता मिटाने में उनका प्रमुख हाथ रहा। मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, पं. रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' सरीखे साहित्यकारों की भाषा को उन्होंने साधा। अपने लेखन में वे ग्रामीण एवं देशीय शब्दों का प्रयोग भरसक नहीं करते थे। प्रारंभ में उनकी शैली में शुद्ध संस्कृत के वाक्य-विन्यास के साथ-साथ उर्दू की मुहावरेबाजी भी दिखाई देती है, परंतु बाद में उर्दू वालों के प्रभावों से तत्कालीन बढ़ते हुए नए प्रयोगों की भी उन्होंने आलोचना की है। द्विवेदी जी जब हिंदी के क्षेत्र में आए तो उन्होंने हिंदी भाषा की प्रकृति और प्रवृत्ति को अच्छी तरह से परखा। द्विवेदी जी से पूर्ववर्ती सभी गद्य लेखकों की रचनाओं में व्याकरण की अशुद्धियां विद्यमान थीं, विराम चिह्नों आदि का भी अशुद्ध प्रयोग रहता था। द्विवेदी जी ने इन सभी लेखकों को सरस्वती पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली की कमजोरियों से अवगत कराया, उन्हें दूर करने का मार्ग सुझाया और स्वयं ही इसके मार्गदर्शक बने।

हिंदी में व्याकरण का अभाव उन्हें बहुत खटका। हां, छोटे-छोटे व्याकरण अवश्य विद्यमान थे। यह द्विवेदी जी के लिए सबसे बड़ा प्रश्न था कि जब भाषा के लिए कोई नियम ही नहीं रहेगा तो सभ्य और उच्च साहित्य का निर्माण कैसे होगा? और यही से उन्होंने हिंदी भाषा की रचना को व्याकरणानुकूल बनाना आवश्यक समझा। 1905 में उन्होंने सरस्वती में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक एक सशक्त लेख लिखा। इस निबंध में भाषा और व्याकरण की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया और साथ ही व्याकरण विरुद्ध रचनाओं के दो-चार उदाहरण भी प्रस्तुत किए। हिंदी क्षेत्र में द्विवेदी जी के इस कदम से हलचल तो अवश्य मची। कई प्रतिष्ठित रचनाकारों के द्वारा विरोध भी उन्हें सहना पड़ा। पर यह लेख आज भी हिंदी भाषा और व्याकरण के अध्येताओं के लिए एक मील का पत्थर है।

खड़ी बोली के प्रबल समर्थक होने के साथ-साथ द्विवेदी जी स्वयं एक कवि, कुशल आलोचक और निबंधकार भी थे। उन्होंने इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, पुरातत्व, समाजशास्त्र, विज्ञान, साहित्य, काव्य-सभी विषयों पर लिखा। हिंदी भाषा का संस्कार तो द्विवेदी जी ने किया ही परंतु उन्होंने अपने समय की काव्य की मूल चेतना में आमूल-चूल परिवर्तन किया। नए युग के नए जीवन-दर्शन को वाणी देने के लिए उन्होंने तत्कालीन कवियों को मार्ग सुझाया। नायक-नायिका, अलंकार, समस्या पूर्ति श्रृंगार की परंपरागत परिपाटी से ऊपर उठकर उन्होंने कविता को देश, समाज, प्रकृति तथा आदर्श चरित्रों को लेकर कवियों को काव्य लिखने की प्रेरणा दी। द्विवेदी जी के लिए कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और प्रमोद दान रहा है। वे लिखते हैं—''कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और प्रमोद दान है। चाहे जिस विषय का कवित्व हो, यदि उससे चित्त चमत्कृत और हृदय प्रफुल्लित न हुआ हो, तो यह समझ लेना चाहिए कि कवित्व सफल हो गया।''

(सरस्वती, 1901, महिशशतक की समीक्षा)

द्विवेदी युगीन काव्यधारा पर द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की छाप अमिट है द्विवेदी जी की कविताओं का संग्रह 'काव्य-मंजूषा' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस अप्राप्य पुस्तक को मैथिलीशरण गुप्त जी ने पुनः 'सुमन' शीर्षक से प्रकाशित किया। इन कविताओं में विषयों की विविधता देखते ही बनती है। कान्यकुब्ज लीलामृतम, समाचारपत्रसंपादककस्तवः, विधि-विडंबना, ग्रंथकारों से विनय, कान्यकुब्ज—अबला-विलाप आदि ऐसी कविताएं हैं, जिनमें द्विवेदी जी निर्भीकतापूर्वक नग्न व कटु सत्य का उदघाटन करते हैं। समाज के उपेक्षित पात्रों को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। नारी के प्रति विशेष दृष्टिकोण द्विवेदी युगीन कविता का प्राण है। जहां मैथिलीशरण गुप्त 'एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से भारी नारी' की उद्घोषणा करते हैं, वहीं द्विवेदी जी की नारी अपनी सहनशक्ति खंडित होने पर भगवान से प्रश्न करती है—

''हे भगवान! भला फिर क्यों तुम
हमें हाय उपजाते हो?
क्या न हमारे लिए ठिकाना कहीं
और तुम पाते हो?
नारी नर दोनों ही जग में यदि
प्रभु तुम पठाते हो?
तो कहिए किस लिए दया-मय
पक्षपात दिखलाते हो?''

(कान्यकुब्ज-अबला-विलाप)

स्वयं सरस्वती पत्रिका के संपादक होते हुए वे ऐसे संपादकों पर व्यंग्य करते हैं, जो ईमानदारी और सच्चाई से काम न कर पहले तो अपमानजनक लेख छापकर लोगों को अपमानित करते हैं और फिर हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते भी करते हैं—

''शुद्धाशुद्ध शब्द तक का
जिनको नहीं विचार
लिखवाता है उनके कर से
नए-नए अखबार।''

(विधि विडंबना)

द्विवेदी जी ने आलोचना कर्म को एक तप के रूप में स्वीकार किया। उनके पास एक कुशल आलोचक दृष्टि थी। उनका मानना था कि साहित्यिक आलोचना के लिए आलोचक को न्यायाधीश के समान निष्पक्ष प्रवृत्ति वाला होना चाहिए। आलोचकीय दायित्व संबंधी उनके विचार अप्रैल 1911 की सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुए जो इस प्रकार हैं– ''समालोचक की उपमा न्यायाधीश से दी जा सकती है जैसे न्यायाधीश राग-द्वेष और पूर्व संस्कारों से दूर रहकर न्याय का काम करता है, सच्चा समालोचक भी वैसा ही करता है। ... बड़े-बड़े कवि, विज्ञानवेत्ता, इतिहास-लेखक और वक्ताओं की कृतियों पर फैसला सुनाने का उसे (सच्चे समालोचक को) अधिकार है।'' इस समयावधि में उन्होंने न केवल एक समालोचक की दृष्टि से काल की सामग्री को परखा बल्कि इस समय का मार्गदर्शन भी किया। उनका संपूर्ण आलोचकीय व्यक्तित्व दो पक्षों पर केंद्रित है–एक है–प्राचीन कवियों की आलोचना, उनकी विशेषता तथा प्राचीन और पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों का निरूपण और द्वितीय पक्ष है–उनके अपने समय के साहित्य की अस्तव्यस्तता, अनिश्चितता, उद्देश्यहीनता, संकुचित दृष्टिकोण, भाषा की निर्बलता, व्याकरणीय दोष आदि अपनी निर्भीक आलोचनाओं के कारण कभी-कभी उन्हें तद्युगीन आलोचकों का कोप भाजन भी बनना पड़ता था। कुमारसंभव भाषा, विक्रमांक देव चरित चर्चा, कालिदास की निरंकुशता, आलोचनांजलि, साहित्य सीकर, विचार विमर्श आदि उनकी ऐसी ही आलोचनात्मक रचनाएं हैं जिन पर आलोचकों की तीखी प्रतिक्रिया उन्हें झेलनी पड़ी। उनका आलोचना साहित्य उनके युग के अनुकूल है। आलोचना का गंभीर और ठोस साहित्य भले ही उनकी रचनाओं में नहीं मिलता फिर भी युग निर्माण की दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व है।

द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ संस्कृत ग्रंथों के अनुवादों से हुआ। उन्होंने संस्कृत, महाभारत कथा का हिंदी रूपांतर 1908 में किया कालिदास के रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव का भावार्थबोधक गद्यानुवाद, भारवि के 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य का हिंदी गद्य में भावार्थबोधक अनुवाद उनके प्रसिद्ध अनुवाद हैं। इन सभी गद्यानुवादों का उद्देश्य हिंदी पाठकों को संस्कृत महाकाव्यों से परिचित करवाना है।

हिंदी साहित्य में निबंध का उद्भव और विकास भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु युग के निबंधों में विषयों की विविधता देखने को मिलती है किंतु इन निबंधों में साहित्यिकता की कमी झलकती है इस अभाव की पूर्ति द्विवेदी जी ने की। द्विवेदी जी का निबंधकार रूप उनके साहित्यिक रूपों में सर्वप्रमुख है। उनके निबंधों में साहित्यिकता के साथ-साथ ज्ञान वृद्धि, नैतिक सुधार आदि उद्देश्य निहित हैं। साहित्यिक, चरित प्रधान, वैज्ञानिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, पुरातत्व यहां तक की धर्म तथा अध्यात्म विषयक निबंध भी उन्होंने लिखे साहित्य की महत्ता, कवि और कविता, नाट्यशास्त्र, हिंदी नवरत्न, कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा बुद्ध, श्री शंकराचार्य, भीष्म पितामह, महाकवि होमर, मिर्जा गालिब, भाषा और व्याकरण, कौटिल्य कुठार आदि उनके अत्यंत ही सफल तथा रोचक निबंध हैं। उनके ये निबंध समय-समय पर सरस्वती में प्रकाशित हुए। उनके निबंधों की शैली प्रधानतः विवेचन प्रधान हैं। निबंधों के विषय के अनुरूप ही उन्होंने शैली का चयन किया है। इन विविध शैलियों में भाषा का वैविध्य भी सहज परिलक्षित होता है। उनके निबंधों के विषय में समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य की इस महत्त्वपूर्ण गद्य विधा को समृद्ध करने में उनका योगदान महनीय है। उनके आलोचक, संपादक, अनुवादक आदि सभी रूपों का दिग्दर्शन उनके निबंधों में एक साथ किया जा सकता है।

उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की विलक्षण विशेषता उसमें निहित विविधता है। इस कथन के संदर्भ में उनकी पुस्तक 'संपत्ति शास्त्र' का उल्लेख किया जा सकता है, जो उन्होंने 1907 में लिखी थी। इस पुस्तक में संपत्ति का स्वरूप, वृद्धि, विनिमय, वितरण और उपयोग, बैकिंग, बीमा, व्यापार आदि के बारे में द्विवेदी जी ने विस्तृत रूप में लिखा है।

हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग को हिंदी भाषा का संस्कार युग कहा जा सकता है। द्विवेदी युग में भाषा ही नहीं वरन साहित्यिक विषयों में लोकोन्मुखता दृष्टिगत होती है। इस युग में साहित्य का नया आदर्श स्थापित होता है। आज हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य ने द्विवेदी युग के प्रारंभ से अब तक एक शताब्दी का समय पूर्ण कर लिया है। वृक्ष की शाखाओं की ऊंचाई उसकी आधार जड़ों पर निर्भर होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के भाषाई संस्कार रूपी आधार को पाकर आज हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा विविध रंगों विविध भाषाई तेवरों के साथ अपने नए प्रतिमानों की खोज में प्रयासरत और विकासमान है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
लेडी श्रीराम कॉलेज,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. सुनीति रावत

युग प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 में, उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा भी गांव में ही हुई। तेरह वर्ष की आयु में अंग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली के जिला स्कूल में भर्ती हुए, स्कूल में वैकल्पिक विषय संस्कृत न होने से उन्हें फारसी पढ़नी पड़ी, वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने विद्यालय छोड़ दिया और कुछ समय बाद पिता के साथ बंबई चले गए, वहां संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया। जीविका हेतु कुछ वर्षों तक रेलवे में कार्यरत रहे। पांच वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात् नौकरी छोड़कर वे लेखन कार्य में ही जुट गए। लेखन के प्रति अनुराग होने के कारण नौकरी के मध्य ही उन्होंने संस्कृत के कुछ ग्रंथों का हिंदी अनुवाद भी किया और कुछ आलोचनाएं भी लिखी।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक योगदान विशद है। सन् 1889 ई. से उनका निरंतर लेखन-प्रकाशन दिखाई देता है। उनके अनूदित एवं मौलिक पद्य एवं गद्य ग्रंथों की संख्या लगभग अस्सी है। पद्य साहित्य में ही उनकी विशिष्ट आठ पुस्तकें अनूदित तथा नौ पुस्तकें मौलिक हैं। गद्य साहित्य में उनके चौदह अनुदित तथा पचास मौलिक ग्रंथ हैं। सन् 1889 ई. से उनका लेखन सन् 1931 तक निरंतर चलता रहा। पद्य साहित्य में उन्होंने अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया, उनकी कृतियों में विनय विनोद (1889 ई.) है। इस कृति में भर्तृहरि के वैराग्य शतक का दोहों में अनुवाद है, 'विहार वाटिका' (1890 ई.) में लिखा 'गीत गोविंद' का भावानुवाद है। द्विवेदी जी ने (1891 ई.) में 'गंगा लहरी' का सवैया शैली में अनुवाद किया। सन् 1891 में ही 'ऋतु तरंगिणी' का छायानुवाद किया। तथा सन् 1902 ई. में कालीदास कृत 'कुमार संभव' के प्रथम पांच सर्गों का सारांश लेखन भी किया। उपरोक्त संस्कृत काव्यों के अनुवाद कार्य में उनके लेखन के विविध पक्ष सामने आते हैं, दोहा, सवैया, पद्यति, भावानुवाद छायानुवाद एवं सार लेखन इन काव्य विधाओं पर अपनी विद्वता सिद्ध करने वाले द्विवेदी जी ने पद्य के प्रति अधिक रुचि न होने पर भी, अनेक मौलिक कृतियों की रचना करके, काव्य लेखन पर भी अपना अधिकार सिद्ध किया। यद्यपि अपनी काव्य रचनाओं को वे तुकबंदी मात्र कहते थे। मौलिक काव्य कृतियों में— देवी स्तुति शतक (1892 ई.) कान्य कुंजावली व्रतम (1898 ई.) नागरी (1900 ई.) सुमन (1923 ई.) कविता कलाप (1909 ई.) और द्विवेदी काव्य माला (1940 ई.) आदि सभी कृतियों का वैविध्य उनके काव्य कार स्वरूप का पारिचारक है। गद्य रचनाओं में भी अनेक कृतियों का अनुवाद कार्य उन्होंने किया। पंडित राज जगन्नाथ के 'भामिनी विलास' का 'भामिनी विलास' नाम से सन (1896 ई.) में भावानुवाद किया, पंडित राज जगन्नाथ की कृति यमुना स्त्रोत का अमृत लहरी नाम से सन् (1896 ई.) में भावानुवाद किया, सन् 1908 में 'महाभारत' का हिंदी रूपांतर, 1920 ई. में 'रघुवंश' महाकाव्य का भावानुवाद, सन् 1913 में 'बेणी संहार' नाटक का अनुवाद, तथा सन् 1917 में 'किरातार्जुनीयम' आदि अनेक ग्रंथों का अनुवाद जहां द्विवेदी जी की विविध भाषा ज्ञान का सबल प्रमाण है। वही विदेशी रचनाकारों की प्रसिद्ध कृतियों का अंग्रेजी से हिंदी रूपांतरण, अंग्रेजी भाषा पर उनके अधिकार को सिद्ध करता है। उनकी कुछ अनूदित विदेशी पुस्तकों का संदर्भ देना भी समीचीन होगा—बेकमविचार रचनावली (सन् 1901 ई.) में निबंधकार बेकन के प्रसिद्ध निबंधों का अनुवाद है, तो सन् (1906 ई.) में हरबर्ट स्पेन्सर के 'एजूकेशन' का अनुवाद 'शिक्षा' तथा जान स्टुअर्ट के 'आन लिबर्टी' का 'स्वाधीनता' नाम से (सन् 1907 ई.) में अनुवाद किया इस तरह द्विवेदी जी ने देशी-विदेशी अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों को जन साधारण तक पहुंचाने का सराहनीय कार्य भी किया।

आचार्य जी के मौलिक लेखन में विविधता उनकी विद्वता की द्योतक है, —इतिहास अर्थशास्त्र, जीवनी, विज्ञान, पुरातत्व, राजनीति, चिकित्सा आदि विविध विषयों, पर लेखन इसका प्रमाण है। कुछ मौलिक कृतियों का उल्लेख करना भी समीचीन होगा, ताकि विषय वैविध्य प्रस्तुत किया जा सके।

सन् (1899 ई.) में 'हिंदी शिक्षावृत्ति, तृतीय भाग की समालोचना', (सन् 1900 ई.) में नैषध 'चरित चर्चा', (1910 ई.) में 'वैज्ञानिक कोश', (1906 ई.) में 'नाट्य शास्त्र', (1912 ई.) में 'संततिशास्त्र', (1907 ई.) में 'वनिता विलाप', (1918 ई.) में 'आध्यात्मिकी', (1928 ई.) 'साहित्यालाप', (1929 ई.) में 'चरित-चित्रण' व (1903 ई.) में 'विज्ञान वार्ता' आदि अनेक रचनाओं को देखकर यह सिद्ध होता है कि, द्विवेदी जी के विविध लेखन, कुशल संपादन व अनुकरणीय व्यक्तित्व के कारण ही उन्हें आचार्य पद दिया गया, और इस रचना—संरचना व संपादन त्रयी के दीर्घकाल व साहित्य निर्माण काल को द्विवेदी युग कहा गया।

आचार्य द्विवेदी जी का रचना पक्ष जितना सुदृढ़ है उनका संपादन पक्ष भी उतना ही प्रबल है। जो 'सरस्वती' पत्र के लगभग अठारह वर्षीय (1903 से 1920) तक के संपादन काल में सामने आया, बीसवीं सदी का आरंभ अनेक प्रकार की देशी-विदेशी घटनाओं का समय था। उन्हीं दिनों भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की

सूत्रधार संस्थान 'अखिल भारतीय कांग्रेस' में उग्रवाद का जन्म हुआ था। लॉर्ड कर्जन की स्वेच्छिक नीतियां और स्वदेशी आंदोलन का आरंभ, मुस्लिम लीग का अभ्युदय आदि ऐसी घटनाएं हुई जिसके कारण बुद्धिजीवी वर्ग ने पत्रकारिता को माध्यम बनाया। जिससे पत्रिकाओं का प्रकाशन बढ़ गया, इन पत्र-पत्रिकाओं ने देश को एक नई दिशा की ओर प्रवृत्त किया, साथ ही स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीयता, आत्मविश्वास और देश हेतु बलिदान का जनसाधारण में भी उदय हुआ। इसी समय आचार्य जी ने पत्रिका के माध्यम से युग परिवर्तन का शंखनाद छेड़ा, वह समय हिंदी के अभावों की पूर्ति का था, इसीलिए द्विवेदी जी ने विविध लेखन किया। हिंदी गद्य एवं पद्य की भाषा के एकीकरण व खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार हेतु उन्होंने प्रबल आंदोलन छेड़ा तथा हिंदी गद्य की अनेक विधाओं का विकास भी किया। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त यदि उन्हें अपना गुरु मानते थे तो महाकवि निराला का कथन था कि सरस्वती के माध्यम से उन्होंने हिंदी सीखी।

यद्यपि 'सरस्वती' नामक पत्रिका का अभ्युदय सन् 1900 ई. में ही हो गया था। सरस्वती के प्रथम संपादन मंडल में पांच संपादक थे जिनमें से बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कांतिप्रसाद खत्री, लाला जगन्नाथदास रतनाकर व पंडित किशोरी लाल गोस्वामी थे। एक वर्ष के संपादन के पश्चात दूसरे वर्ष के संपादक श्यामसुंदर दास बने और प्रकाशन के तीसरे ही वर्ष अर्थात सन् 1903 ई. से सरस्वती का संपादन कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संभाला जिसका निर्वाह उन्होंने सन् 1920 ई. तक किया। पत्रिका को अपने संपादन कौशल से द्विवेदी जी ने संवारा ही नहीं अपितु अपने कार्य कौशल से नई भाषा शैली से सुसज्जित भी किया। सत्य तो यही है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने ही आधुनिक संपादन कला की नींव रखी। इसी पत्रिका के माध्यम से ही हिंदी साहित्य के अनेक प्रखर साहित्यकारों का जन्म भी हुआ।

सरस्वती के प्रकाशन के प्रथम वर्ष में आचार्य जी ने स्वयं अनेक लेखों को लिखा, उनके साथ मात्र पं. गिरिजा दत्त बाजपेयी ही दूसरे लेखक थे। पत्रिका के लिए विद्वान लेखकों का आह्वान भी किया गया, इस आह्वान पर विदेशों में बसे स्वामी सत्य देव परिव्राजक, भोला नाथ पांडेय, राज कुमार खेमका, संत निहाल सिंह, बेनी प्रसाद शुक्ल आदि रचनाकार जुड़े। स्वदेशी रचनाकारों ने भी लेखन में सहयोग दिया। यद्यपि अनेक रचनाकार ऐसे भी थे जो हिंदी भाषा से अनभिज्ञ थे, वे भी रचनाएं भेजने लगे। द्विवेदी जी रचनाओं का व्याकरण और भाषा परिष्कार करके प्रकाशन योग्य स्वरूप, रचना को देने का कार्य भी कर लिया करते थे। उनके निरंतर प्रयास से ही 'सरस्वती' एक संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका के रूप में लोकप्रिय होती गई। पत्रिका में उच्चकोटि की कविताएं, कहानियां, लेख, निबंध, आलोचना, समीक्षा के साथ-साथ सामयिक विचार, विज्ञान की करामात, पुस्तक परिचय, विचार-विमर्श, जागृत महिलाएं, हास्य-विनोद, पाठकों के पृष्ठ, चिट्ठी-पत्री आदि अनेक स्तंभ भी थे। पत्रिका के विशेषांक भी समय-समय पर निकलते थे—'कहानी अंक', 'स्वराज अंक', 'श्रद्धांक' व 'द्विवेदी स्मृति अंक' इनमें से प्रमुख हैं।

अपने विशद लेखन व संपादन, भाषा परिष्करण और हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप निर्धारण के विशेष योगदान के कारण वे युग परिवर्तक बने और सन् 1923 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदित भी किए गए। सन् 1933 में द्विवेदी मेला के अवसर पर उनके भाषणों का संकलन करके उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करना, उनका सच्चा सम्मान था। ऐसा एक विराट व्यक्तित्व एक लेख में समा सके, यह असंभव है। उनका कृतित्व महत्त्वपूर्ण है और व्यक्तित्व श्रद्धापूर्ण है। वे वास्तव में ऐसे व्यक्ति थे, जिनके जिह्वाग्र सरस्वती थी और हस्ताग्र भी सरस्वती थी।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य राम चंद्र शुक्ल—संस्करण 2000, पृष्ठ 459-60
2. हिंदी के निर्माता—लेखक कुमुद शर्मा, पृष्ठ 7
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—डॉ. नगेंद्र—पृष्ठ 496
4. हिंदी पत्रकारिता व समाचार पत्रों की दुनिया—रत्नाकर पांडेय—पृष्ठ 3320-21
5. हिंदी पत्रकारिता का अभिर्भाव—डॉ. मधु अस्थाना—पृष्ठ 54-55
6. हिंदी पत्रकारिता का इतिहास—एन. सी. पंत, पृष्ठ 111-12
7. हिंदी साहित्यकोश भाग 2, नाम वाची शब्दावली—संपादक धीरेंद्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. रघुवंश—पृष्ठ 438-440
8. हिंदी पत्रकारिता के बदलते संदर्भ—सुनीति रावत—पृष्ठ 221-23
9. समाचार पत्रों का इतिहास—अंबिका प्रसाद वाजपेयी—पृष्ठ 238

भाषाविद् महावीर प्रसाद

जागरण काल था, वह जब
जाग रहा था हिंदुस्तान
गोरी सत्ता के विरुद्ध
जन-जन ने छेड़ा था, अभियान
मनमानी थी सभी नीतियां
गोरे कर्जन की
अस्थिर सी थी दशा-दिशा
भारतीय जन-जीवन की
भरतीय प्रबुद्ध जगत में
हलचल थी कुछ करने की
पत्रकारिता के माध्यम से
जन-जन को, चेताने की
ऐसे समय द्विवेदी जी ने
'सरस्वती' का कार्य संभाला
अगढ़ रूप था हिंदी का
सुगढ़ रूप में ढाला
हिंदी पत्रकारिता को भी
भव्य-विशद स्वरूप दिया
पत्र संपादन कला को भी
निश्चित् सा प्रारूप दिया
भाषाविद, कर्मठ, तेजस्वी
थे 'महावीर प्रसाद'
रची कई मौलिक रचनाएं
दिए सहज अनुवाद।

म. नं.-590, ब्लाक सी-1
अंसल, पालम विहार, गुड़गांव–122017

दूरदर्शी और कठोर परिश्रमी

अवतार कृष्ण राजदान

आधुनिक खड़ी बोली के प्रणेता, हिंदी व्याकरण पर गहरी पैठ रखने वाला, त्रि-भाषा विज्ञ, हिंदी भाषा प्रचारक, कुशल संपादक, आलोचक, निबंधकार, भाषा-शिक्षक व आधुनिक लेखन से जुड़ी लेखक-लेखिकाओं को एक नई दिशा प्रदान करने वाले महामानव आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम हिंदी साहित्य के साहित्याकाश पर, रहती दुनिया तक, इसलिए याद की जाएगी क्योंकि यह उन्हीं के भरसक प्रयत्नों का परिणाम है कि जिन्होंने सर्वप्रथम हिंदी गद्य और पद्य को व्याकरण सम्मत बनाने तथा हिंदी भाषा को परिपक्व रूप प्रदान कर परिवर्तित व व्यवस्थित रूप में लाए। इसके साथ ही हिंदी विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोलियों में समाहित व सीमित होकर न रह जाए। आज हिंदी जानने वाला सुधीजन इस हिंदी सेवी का 150 वां जन्मदिन मना रहा है, जिसने अपनी प्रखर प्रभु-प्रदत्त एवं रचनात्मक प्रतिभा का विशिष्ट परिचय दिया है और उसका इस तरह का सृजनात्मक एवं महत्त्वपूर्ण योगदान कभी विस्मृत नहीं किया जाएगा।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई. में उत्तर-प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गांव में हुआ। अपने ही गांव में, सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद जी.आर.पी. रेलवे में सिग्नलर का पदभार ग्रहण करने के बाद वह पहले हिंदी सेवक हैं जिसका स्वाभिमान एक अंग्रेजी अधिकारी के सामने झुकने पर विवश नहीं हुआ। उसका मन कुछ नया करने को चाहता था और रेलवे में अच्छा वेतन पाकर भी वह इस नौकरी को छोड़ देता है और मात्र बीस रुपए मासिक वेतन मिलने पर उन दिनों के इलाहाबाद के 'इंडियन-प्रेस' द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' का संपादन करने पर संतोष करने लगा। यह वही प्रेस है, जिसकी स्थापना सन् 1900 ई. में बंगला के हिंदी प्रेमी हरिकेश घोष ने की थी। ताकि यहां कोई उच्च-स्तरीय साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से हो जाए। पत्रिका तो निकल गई किंतु इसके संपादन करने का श्रेय पहले उनके पदाधिकारियों को प्राप्त हो गया, तदंतर आचार्य जी सामने आकर इसके संपादन करने में तन-मन-धन से लगे और इस सिलसिले में उनका पहला काम रहा उन कलम वीरों को प्रोत्साहित करना, जो खड़ी बोली में अपनी रचनाएं पत्रिका के लिए प्रकाशनार्थ भेज दें क्योंकि उनके अनुसार हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार का और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा का उपयोग होता है। जहां गद्य-लेखन खड़ी-बोली में होता है, वही काव्य में ब्रज-भाषा का प्रयोग उपयुक्त समझा जाता है। उसका यह प्रयोग सफल रहा और उक्त पत्रिका के अपने संपादन-काल में अन्य-अनेक कलमवीरों ने सामने आकर खड़ी बोली से अपनी रचनाओं को नया आयाम दिया जिसे हिंदी भाषा में तरह-तरह के प्रयोग होते रहे हैं। यह सही है कि इन कलमवीरों ने काव्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में, अपनी लेखनी का कौशल दिखाया तथापि काव्य के क्षेत्र में उनका उत्कृष्ट योगदान, विशेष रूप से चर्चित व प्रशंसित है। इस तरह से 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक बड़ी दुविधा को समाप्त कर, रचनाकारों की एक बड़ी पंक्ति को सामने लाए जो खड़ी-बोली में गद्य और पद्य लिखते रहे जिनमें सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और जयशंकर प्रसाद का नाम आदर-सम्मान और श्रद्धापूर्वक लिया जा सकता है। इनके समय हिंदी साहित्य में कई तरह की विचारधाराएं या बाद में जैसे छायावाद, प्रगतिवाद एवं स्वच्छंदतावाद आदि भी समय-समय पर पनपते रहे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी दो दशक तक 'सरस्वती' का संपादन करते रहे जबकि इसमें इनका प्रवेश सन् 1903 ई. में हुआ और इस बीच यहां अपनी भूमिका निभाकर इसके माध्यम से अपने भाषा-संस्कार के अभियान को पूर्ण करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और संपादन कला का आदर्श स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरूप आज के सरल हिंदी लेखन का स्वरूप पाठकों के सामने आया है। द्विवेदी जी का यह मानना था कि कोई भी रचना करने से पूर्व इसको बिना रचना रचने कोई सार नहीं। आखिर अनुशासित भाषा का उसका क्या मतलब था? किंतु यह इसका उत्तर स्वयं यह कहकर देते हैं कि पद्य लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है, अशुद्ध का नहीं। शब्दों का मूल रूप बिगड़ना नहीं चाहिए। बे-मुहावरा भाषा अच्छी नहीं लगती। इस तरह से साफ लगता है कि द्विवेदी जी को हिंदी व्याकरण पर अच्छी-खासी पैठ थी और उन्होंने अपने समय जिन कलमवीरों को प्रोत्साहित किया, वह उनके ही नक्शे-कदम पर अपनी रचनाओं से हिंदी-साहित्य को मालामाल करते रहे किंतु खेद इस बात का है कि आजकल की हिंदी रचनाओं में वह बारीकी नहीं मिलती जो द्विवेदी युग के समय के लेखकों की रचनाओं में मिलती है। किंतु यह भी सत्य है कि समय बदलने के साथ-साथ भाषा भी किसी हद तक अपना रंग-रूप बदलती रही है और यही हाल आज की हिंदी का भी देखने को मिलता है। ऐसी प्रक्रिया चलती रहेगी जब तक हिंदी भाषा जीवित है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में 'सरस्वती' पत्रिका मात्र हिंदी लेखकों की संस्था नहीं बनी बल्कि इसने कई लोगों के लिए पत्रकारिता के द्वार खोल दिए और इस तरह से यह शैक्षणिक संस्था भी बनी। इसके द्वारा कई पत्रकार सामने आए जिनमें बाबू विष्णु राव पराडकर और गणेश शंकर 'विद्यार्थी' के नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है—''सरस्वती ने हिंदी साहित्य में व्यापक स्तर पर भारतीय साहित्य और पत्रकारिता में प्रतिष्ठा पाई, वह बीसवीं शती की किसी भी पत्रिका को प्राप्त नहीं हुई है।'' यह सही है कि आजकल कई स्तरीय हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है या हम इस तरह भी कहें कि आजकल उतने पाठक नहीं जितनी कि पत्र-पत्रिकाएं देखने को मिलती हैं। इसका प्रमुख कारण है कि प्रचार के अन्य माध्यमों के आने से आजकल पाठक या श्रोता भटक कर रह गया है और साहित्य पढ़ने वालों की संख्या घटती जा रही है। यह बात द्विवेदी जी के समय नहीं थी और यदि होती भी तो क्या पता, उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से कोई दूसरा प्रयोग किया होता जिसके द्वारा पाठकों की ऐसी कमी नहीं दिखती। वस्तुतः द्विवेदी जी की अपनी पहचान थी। साहित्य-सृजन के अपेक्षा वे युग-निर्माण के प्रति अधिक प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने लेखकों को भाषा-संस्कार के साथ-साथ, अभिनव विषयों का ज्ञान कराकर, उनको एक अलग एवं नूतन राह दिखाई। यही कारण है कि लेखकों ने इनसे भाषागत प्रेरणा व शिक्षा पाकर, अपने रचना-कर्म को सशक्त किया। यही देखकर मैथिलीशरण गुप्त यह कहने पर मजबूर हो गए—''मेरी उल्टी-सीधी प्रांरभिक रचनाएं पूर्ण शोध के बाद 'सरस्वती' में प्रकाशित करते रहे और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढ़ाना द्विवेदी महाराज का ही काम था।' किंतु आजकल यह बात किसी भी पत्रिका के संपादक में देखने को नहीं मिलती है। उसके अनुसार लेखक की रचना अच्छी हो तो छप जाएगी वरना लेखक की रचना के लिए कोई मापदंड जरूरी नहीं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य-सृजन में बहुमुखी अध्याय देखने को मिलते हैं। कवि होने के साथ-साथ वे एक निबंधकार एवं सफल समालोचक थे। इन सभी रूपों में इन्होंने अपना एक अलग मकाम बनाया था। इतना ही नहीं, भाषा व साहित्य के लिए उनका किया गया कार्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। उनकी रचनाओं में अनुभव की गहराई होने के साथ-साथ अर्थ-गांभीर्य देखने को मिलता है। साथ ही इनके एक सुधारक का उत्साह और प्रचारक का समर्पण देखा जाता है। उसने संघर्षरत जीवन व्यतीत किया है। मुंशी प्रेमचंद्र के पत्र 'हंस' के आत्मकथा विशेषांक के लिए भेजे गए अपनी आत्मकथा के एक अंश में उनका कहना है कि—''मैं एक देहाती का एकमात्र आत्मज हूं जिसका मासिक वेतन मात्र दस रुपए था... थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर 13 वर्ष की आयु में, मैं 36 मील दूर रायबरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने लगा... संस्कृत उस समय अछूत भाषा समझी जाती थी किंतु मैंने इसे पढ़ा।... मेरी स्कूली शिक्षा फतेहपुर में समाप्त हुई... आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी त्रि-भाषा विज्ञ थे। हिंदी तो उनकी अपनी भाषा थी किंतु ये संस्कृत और अंग्रेजी में भी पारंगत थे। संस्कृत का ज्ञान उन्हें पारिवारिक परंपरा से प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि ये संस्कृत की कालजयी कृतियों की व्याख्या करने में सफल हुए हैं। संस्कृत की इन रचनाओं में 'मेघवचरित' 'कुमार संभव सार 'विक्रमादेव चरित चर्चा' जैसी रचनाएं शामिल हैं, जहां तक संस्कृत कृतियों के पद्यानुवाद का संबंध है, उनमें 'कालीदास' का 'मेघदूत' उल्लेखनीय है। इनके समय अंग्रेजों का राज होने के कारण और रेलवे में नौकरी करने से उनके लिए अंग्रेजी में लिखना और पढ़ना एक जरूरी बात बन गई थी। किंतु उन्होंने इसमें भी लेखन के प्रति अपनी सफलता का भरपूर परिचय दिया। अंग्रेजों के चिंतकों व दार्शनिकों पर उनकी पहले से नजर थी। उन्होंने इनकी कुछ कृतियों का हिंदी में भाषानुवाद किया। जे.एस.मिल्स की प्रसिद्ध रचना 'लिवटी' हाबर्ट स्पेन्सर की कृति 'एजुकेशन' तथा बाईरन के ब्राइड़ल-नाईट और हिंदी में इनका क्रमशः अनुवाद इन शीर्षकों से मिलता है यथा 'स्वाधीनता', 'शिक्षा' तथा 'सुहागरात'। इनमें से अंतिम के विषय में यह कहा जाता है कि पत्नी के मना करने पर उसने इसको प्रकाशित नहीं किया। इसे यह बात साफ लगती है कि द्विवेदी जी ज्यादा से ज्यादा भाषाएं सीखने के कायल थे। इसे लेखक और पाठक एक दूसरे के विचारों से जुड़ते हैं और किसी समय कुछ ऐसा भी होता है कि कोई नई बात सामने निकलकर आने से ज्ञान बढ़ता है। आजकल का संसार सिमटकर रह गया है और भाषाओं की अनुवाद प्रक्रिया द्विवेदी जी ने यह बात अपने जीवनकाल में ही समझी होगी जिसे अपने वाल पीढ़ी के लिए लेखकों के एक दूसरे की भाषाओं का अनुवाद करने का प्रोत्साहन मिले जबकि आलम यह है कि मूल लेखन से ज्यादा किसी भाषा की कृति का अनुवाद करना एक दुष्कर कार्य है।''

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित थे और गांधी परिवार और उनकी जन्म स्थली दौलतपुर का रिश्ता बराबर 39 वर्ष तक रहा है। यह इसलिए हो सका है कि गांधी जी स्वयं हिंदी प्रेमी थे और उन्हीं के कर्मोत्साह से आचार्य जी ने हिंदी की खड़ी बोली को परस्पर एकता के सूत्र से संबंद्ध कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप आज हम इसको देश की राष्ट्र-भाषा के रूप में देख सकते हैं। स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी की अमृतवाणी से शंखनाद बजाकर, फिरंगियों से लड़ने की हुंकार भर दी। सभी भारतीय भाषाओं की आत्मा हिंदी से जुड़ गई और इस समय आलम यह है कि विश्व में हिंदी बोलने की संख्या दूसरे स्थान पर मानी जाती है और यह सब आचार्य जी की दूरदर्शिता, कठोर परिश्रम और सद्प्रयासों से संभव हो पाया है और खड़ी बोली हिंदी का झंडा फहराया जिसके लिए ये हमेशा के लिए याद किए जाएंगे।

डी–255, गली–14/15, लोअर शिवनगर,
जम्बू–180001

व्यवस्थापक से सर्जक तक

पराक्रम सिंह

लेखक, आलोचक, अनुवादक से कहीं अधिक संपादक के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका को निभाने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 15 मई, 1864 को दौलतपुर रायबरेली, उ.प्र. में हुआ था। ग्रामीण पृष्ठभूमि में बचपन और शिक्षा के अभाव का दंश द्विवेदी जी को बना रहा। दादा पं. हनुमंत द्विवेदी, नाना, मामा, संस्कृत के अच्छे जानकार थे जिन्होंने घर पर ही संस्कृत की शिक्षा पर जोर दिया। गरीबी और अभाव तथा पिता के बचपन में मृत्यु के कारण शिक्षा प्रभावित होना तय था। गांव के मदरसे में उर्दू की शिक्षा के लिए जाने वाले महावीर सहाय का नाम गलती से अध्यापक द्वारा महावीर प्रसाद हो गया जो जीवन पर्यंत बना रहा। चाचा के साथ उन्नाव और फतेहपुर में रहते हुए अंग्रेजी, फारसी का अवसर प्राप्त हुआ। आर्थिक स्थिति से जूझते हुए परिवार को देखकर इनका नाता शिक्षा से सदैव के लिए दूर जाता रहा और मात्र 18 वर्ष की आयु में नौकरी के लिए रेलवे विभाग अजमेर जाकर नियुक्त हो गए। नौकरी के दौरान चार संकल्प सूत्र द्विवेदी जी ने अपने मन में लिये—वक्त की पाबंदी, रिश्वत न लेना, अपने काम को ईमानदारी से करना तथा जीवनभर ज्ञान वृद्धि के लिए सतत प्रयासरत रहना। डाक के तारबाबू से लेकर स्टेशन मास्टर, रेल की पटरियों को बिछाने, प्रधान निरीक्षक, डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट जैसे पदों को भी आपने सुशोभित किया।

नौकरी के साथ ही हिंदी लेखन का भी कार्य नियमित ढंग से करते हुए द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका के संपादन का कार्य संभाल लिया था। सहसा एक दिन अंग्रेज अधिकारी द्वारा नौकरी से निकाल देने की धमकी ने मानो उनके संपूर्ण जीवन को बदल दिया और ऐसे में वे सदैव के लिए स्वतः नौकरी छोड़कर साहित्य सेवा के लिए समर्पित हो गए। गद्य साहित्य लेखन का सूत्रपात्र भारतेंदु के माध्यम से हो गया था। ऐसे में स्वयं भारतेन्दु जी के 1885 में आकस्मिक निधन ने साहित्य जगत और हिंदी भाषा के लिए क्षति का कारण बन गया। द्विवेदी जी लगातार हिंदी के उन्नति के लिए विशेष ध्यान देने लगे। हिंदी की शुद्धता, वाक्य रचना और पद विन्यास की एकरूपता पर बल देते हुए हिंदी गद्य में नई-नई विधाओं को लाने के लिए लेखकों को प्रोत्साहित और प्रेरित करना मानो धर्म सा बना लिया हो। चिंतन के साथ चेहरे पर स्वाभिमान की सहजता से बंधकर समय के प्रति सदैव सजगता लिए हुए द्विवेदी जी मितभाषी बने रहे।

द्विवेदी जी विभिन्न क्षेत्रीय भाषा-बोलियों को महत्त्व देने पर सदैव प्रयास करते रहे, उनके स्थानीय भाषा के आधार पर अलग होते देश को एक में जोड़ कर रखना। ब्रज से अधिक खड़ी बोली में कविता लिखने पर बल देकर सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं को कविता के द्वारा जन-सामान्य में लाने पर जोर देते रहे। रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन—''गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।'' सरस्वती में भाषा और व्याकरण की शुद्धता को आधार बनाकर लिखा गया लेख, शब्द समूह और भाव व्यंजक शक्ति के साथ साहित्य में जनपदीय भाषा के आगमन को साहित्य के लिए अधिक ऊर्जावान और समृद्धि की सूचकता पर प्रकाश डाला। सरस्वती के साहित्य के लिए अधिक ऊर्जावान और समृद्धि की सूचकता पर प्रकाश डाला। सरस्वती के माध्यम से ज्ञान, कलात्मक साहित्य, टिप्पणी, मनोरंजक, व्यंग्यादि चित्रों का यत्र-तत्र समावेश कर रीतिवादी रूढ़ियों को तोड़ते हुए नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुसार सामग्री को पत्रिका में स्थान देकर संपूर्ण भारतीय साहित्य की प्रतिष्ठा को द्विवेदी जी ने स्थापित किया।

द्विवेजी जी किसी भी देसी या विदेशी भाषा के प्रति कोई ईर्ष्या न करने की सलाह तत्कालीन लेखकों, कवियों को देते रहे। उनका मानना था कि जब तक हम दूसरी भाषा को नहीं जानेंगे तब तक हम उनके साहित्य से परिचय प्राप्त नहीं कर सकते। संस्कृत के कालिदास, भट्टनारायण, भारवि, पंडित जगन्नाथ आदि की रचना, रघुवंश, कुमार सम्भव, वेणी संहार, मेघदूत, किरातार्जुनीय, भामिनी विलास आदि का हिंदी में अनुवाद किया।

द्विवेदी जी की प्रारंभिक शिक्षा अच्छे ढंग से न होने के बावजूद उनके लेखन में शुद्धता मूल विषय था। अंग्रेजी के लेखक बेकन, हवर्टस्पेंसर और गिल की ज्ञानोपयोगी पुस्तक का अंग्रेजी से हिंदी में क्रमशः बेकन विचार रत्नावली, शिक्षा और स्वाधीनता, जल, चिकित्सा के माध्यम से साहित्य के भंडार

को समृद्ध किया। रस और काव्यशास्त्र जैसे विषयों पर सरस्वती के माध्यम से साहित्य और साहित्यकार के संबंधों की परिभाषा शास्त्रीय ढंग से करते हुए उपयोग, नैतिक दृष्टियों और आलोचक की भूमिका को आगे तक बढ़ाते रहे। कवि और गद्य की भाषा को एक ही प्रकार से प्रयोग करने पर उसे और व्यवहारिक, प्रभावशाली बनाया जा सकता है जिसे द्विवेदी ने स्वयं कहा था—''बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।'' स्थूल पौराणिक कथा-वृत्त, सीधी वर्णन की प्रणाली, गद्य जैसे वाक्य विन्यास के ढंग इन सबको मिलाकर इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा जिसका प्रभाव तत्कालीन कवि, लेखकों, समालोचकों के यहां तेजी से हुआ। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से नित नवीन संपत्ति शास्त्र विषय के साथ ग्रामीण एवं शहरी जीवन के लिए उपयोगी लेख लिखना, ग्रामीण जीवन का चित्र बगैर किसी हीन कुंठा भावना से लेखनी में लाना, कई भाषाओं की पुस्तकों की समीक्षा को द्विवेजी जी उसकी गहराई से पड़ताल करते थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म गुलामी के समय हुआ था। ऐसे में उन्होंने देश की स्थिति को अच्छे ढंग से देखा-भोगा था। अंग्रेजी हुकूमत और उनके अत्याचार और ग्रामीण भारत के संघर्ष को अपने आसपास देखकर उससे मुक्ति दिलाना चाहते थे। शिक्षा को लेकर हिंदी की पहली किताब 'अपर प्राइमरी', 'शिक्षा सरोज', 'हिंदी भाषा उत्त्पत्ति' आदि को लिखा। द्विवेदी जी का मानना था कि शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाकर रोजगार का अवसर प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे में उन्होंने 'संपत्ति शास्त्र', 'औद्योगिकी', 'विज्ञानवार्ता', 'वैज्ञानिक कोश' और बच्चों के मन को देखते हुए 'बालबोध' तथा किसानों की दशा और उनकी दिशा को भी अपने लेखन के द्वारा बताया। द्विवेदी जी अतीत और वर्तमान की धर्म, संस्कृति, सभ्यता को जोड़कर समान रूप से लेखक चलने तथा संजोने से ही विकास किए जाने के पोषक थे। अतीत-स्मृति, महिला-मोह, आध्यात्मिकी, प्राचीन-चिह्न, चरित्र-चर्चा, विदेशी विद्वान, चरित्र-चित्रण, विचार-विमर्श, आत्म निवेदन, वनिता विलास, नाट्यशास्त्र आदि पर ध्यानाकर्षण अपने इन रचनाओं के माध्यम से कराया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य और साहित्यकारों केा लेकर सदैव चिंतन करते हैं। ग्रामीण जीवन से लेकर अंग्रेजी शासन की समस्याओं से सदैव कैसे बचा जा सकता है इन सबको अपने पत्रिका के लेखों आदि के द्वारा समाज को देते रहे। शुद्ध लेखन और समय की प्रतिबद्धता में स्वयं रहकर दूसरे के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में स्मरणीय बनते रहेंगे। खड़ी बोली गद्य और पद्य के बीच की जड़ता को तोड़ते हुए शुद्ध परिष्कृत खड़ी बोली को मजबूती प्रदान कराते हैं।

द्वारा डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा,
हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.)

कविता

आचार्य ने रचा एक इतिहास

डॉ. बीना बुदकी

महावीर आचार्य हैं, क्या द्विवेदी प्रसाद
शीष जागरण काल के विषय रहा आह्लाद।
बर्क, मिल, स्पेंसर, रूसो, बड़े विचारक जान,
इनसे राष्ट्रीयता मिली, रखा देश का मान।
बाल, तिलक से गोखले, के वे प्रखर प्रहार,
स्वराज्य स्वधीनता, जन्म सिद्ध अधिकार।
आत्मोत्सर्ग सिखा दिया, और कहीं बलिदान,
यही देश की शक्ति का, रहा बड़ा अवधान।
गद्य, पद्य को साथ ले, और व्याकरण मंत्र,
साहित्य समुधा लिए मुक्ति हेतु गणतंत्र।
विषयों के बहुकाव्य ले छंदों के बहुरूप,
किया व्यवस्थित बुद्धि से, गद्य का सुदृढ़ स्वरूप।
बहुल रूप साहित्य के उपजे निज, निज क्षेत्र,
इनके उद्भव से कहीं, खुले सभी के नेत्र।
राष्ट्रप्रेम से जागरण चित्रण कहीं समाज,
धार्मिक से बौद्धिक रहे, वे अतीत के काज।
चित्रण प्रकृति कहीं रहे, कहीं भूल आदर्श,
कहीं नीति का मर्म का, भाषांतर विमर्श।
भारत भारती गुप्त की, हरिऔध प्रवास,
हीन दशा गोपाल की, मिलन कृपा की आस।
संपादन के क्षेत्र में, शीर्ष सफलता पाएं,
क्या सेवा आचार्य की, भाषांतर में कार्य।
इस प्रकार आचार्य ने, रचा एक इतिहास,
स्वयं साहित्याकाश, ध्रुव नक्षत्र प्रवास।

102-ए, एम.जी. इंप्रेशन (मेवाड़ कॉलेज के पास),
सेक्टर-4 बी, बसुंधरा, (गाजियाबाद-उ.प्र.) 201012

नए युग का सूत्रपात—द्विवेदी युग

सुरेंद्र कुमार

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से हिंदी साहित्य के एक कालखंड को 'द्विवेदी युग' से अभिहित किया जाता है। हिंदी काव्य की नई धारा से उनका अभिप्राय रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियों, अभिव्यंजना रूढ़ियों तथा संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकरण पर रीतिबद्ध शास्त्रीय रचना को छोड़कर नई अभिव्यक्तियों और नई अभिव्यंजना शैलियों के ग्रहण से था। रीतिकालीन काव्य विषय वस्तु की दृष्टि से भी नवीनता लाने की चेष्टा थी। किंतु सब प्रयत्नों के बावजूद काव्य प्रयोक्ताओं की संपूर्ण आस्था अभी तक नई काव्यधारा के प्रति सजग नहीं हो पाई थी और शिल्पगत संकीर्णता और ब्रजभाषा की परंपरागत समृद्ध परिपाटी तथा रीतिकालीन गतानुगतिकता बनी हुई थी।

द्विवेदीयुगीन कविता—द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवियों में भारतीयता एवं अतीत गौरव के प्रति मोह प्रारंभ से ही बना हुआ था। सन् 1900 से लेकर 1925 तक भारतीय इतिहास का आधुनिक काल एक विशिष्ट प्रकार की मनोवृत्ति से प्रभावित रहा है। 1851 के विद्रोह के बाद प्रबुद्ध भारतीयों की मानसिकता में एक बड़ा अंतर आया था जिसकी अभिव्यक्ति भारतेंदुयुगीन साहित्य में खुलकर नहीं हो सकी थी। ब्रिटिश राज्य के आतंक से भयभीत होकर भारतेंदु जैसे जागरुक कवि भी अंग्रेजी राज के प्रति प्रत्यक्ष रूप से कुछ कहने में समर्थ नहीं थे, किंतु भीतर-ही-भीतर उस युग के रचनाकारों के मन में भारतीयता के प्रति एक गौरवपूर्ण भाव उत्पन्न हो गया था। तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक नेताओं ने जनता के मन में एक प्रकार का उद्‌बोधन उत्पन्न कर दिया था। स्वामी विवेकानंद स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि के उपदेशों से जन-जागरण का जो वातावरण बना या उसका प्रत्यक्ष प्रभाव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही स्पष्टतः लक्षित हुआ और द्विवेदीयुगीन कवियों को परंपरागत रूढ़ मान्यताओं से विलग करके संपृक्त किया। द्विवेदी युग के कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि के पुरुषोत्तम परब्रह्म की लीलाओं के स्थान पर राम-कृष्ण आदि की चारित्रिक क्षमता को स्थान देकर उन्हें नवीन जागरुक संचेतना के साथ अपने काव्य ग्रंथों में प्रस्तुत किया। द्विवेदीयुगीन काव्य की नवीन धाराओं में स्वात्मवाद की चर्चा करना इसलिए आवश्यक है कि उस युग का कवि अपने परिवेश से रूढ़ि मुक्त होकर नए युग की संवेदनाओं को ग्रहण करना चाहता था। भारतेंदु युग का कवि मुक्ति के लिए धार्मिकता और अध्यात्म से जुड़ा था। किंतु द्विवेदी युग में मुक्ति का प्रश्न नैतिक आदर्शपरक चरित्र निष्ठा से संबद्ध हो गया। इसीलिए इस युग के कवि समाज-सुधार जैसे विषयों की ओर प्रवृत्त हुए। आदर्श, त्याग, बलिदान आदि की भावनाएं प्रबल होती गई। आदर्शवाद इस युग में काव्य का मुख्य विषय बन गया। फलतः उस युग के कवियों ने अपने काव्यों में चरित्र नायकों का वर्णन किया है। राम और कृष्ण के भावगत तत्त्व से पृथक उनके भारतीय व्यक्तित्व को आधार बनाकर उन्हें बुद्ध, कर्ण, लक्ष्मण, महाराणा प्रताप, शिवाजी ही नहीं अत्याधुनिक महात्मा गांधी जैसे नेताओं के चरित्र को काव्य के लिए विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया। भले ही परिष्कृत साहित्यिक स्तर पर उसे मान्यता नहीं मिली थी। उन्होंने खड़ी बोली की परिमार्जित शैली अपनाकर कई रचनाएं प्रस्तुत कीं। उनकी परिष्कृत भाषा जब खड़ी बोली के प्रति जनमानस आश्वस्त हो गया। तब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा परिष्कार के लिए जो प्रयास किए उन्हीं का फल है कि खड़ी बोली गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रों में समान रूप से स्थापित हो गई। इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी की प्रांजल एवं परिमार्जित रूप से स्थापित करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है। इसी कारण इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ गया है। भारतेंदु की मृत्यु के बाद (1885 ई.) आंदोलन के स्तर पर अयोध्याप्रसाद खत्री ने जो बीड़ा उठाया था वह भाषा क्षेत्र में अराजकता के बीज तो बो गया किंतु खड़ी बोली को व्याकरण तथा शब्द-प्रयोग की कसौटी पर खरा नहीं ठहरा सका। जब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस दिशा में प्रयास शुरू किया तो उन्होंने भाषा-परिष्कर्ता के संपादन का दायित्व ग्रहण किया और इस माध्यम से उन्होंने अपने सिद्धांतों

एवं विचारों को हिंदी पाठकों के समक्ष योग्यता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया। इसके साथ ही द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से साहित्य की विधाओं तथा वर्णित विषयों की ओर भी ध्यान दिया। पुस्तक-परिचय के स्तम्भ में समीक्षा का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ। स्वदेश की राजनीति, अर्थनीति के साथ विदेश की राजनीति पर भी द्विवेदी जी टिप्पणियां लिखते थे। समाज-सुधार के विषयों को स्थान देकर उन्होंने अपनी एक समाज सुधारक की छवि बना ली थी। इसके साथ ही उन्होंने अनुवाद का नया क्षेत्र भी खड़ी बोली हिंदी के लिए उद्घाटित किया। संस्कृत और अंग्रेजी के प्रसिद्ध ग्रंथों का स्वयं खड़ी बोली हिंदी में अनुवाद किया और सुयोग्य विद्वानों से अनुवाद कराकर उसे सरस्वती में प्रकाशित किया। इस प्रकार सरस्वती के माध्यम से हिंदी में विषयों का विस्तार हुआ। हम विषयवस्तु साहित्य-विधा, अभिव्यंजना, शिल्प आदि की दृष्टि से कई वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। दूसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जो पहले से ही शास्त्रीय पद्धति से काव्य साधना में रत थे और द्विवेदी जी के संपर्क में आने के बाद स्वयं को उनके अनुकूल ढालते रहे। इन कवियों में प्रमुख हैं—श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम शंकर सेठ, कन्हैयालाल पोद्दार, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, मुकुटधर पांडे, लोचन प्रसाद पांडे, सियाराम शरण गुप्त, लक्ष्मीधर वाजपेयी, गोपालशरण सिंह आदि। तीसरे वर्ग में हम उन कवियों को रख सकते हैं जिन्होंने उनका परोक्ष प्रभाव ग्रहण किया। उनमें प्रमुख हैं—गिरिधर शर्मा कविरत्न, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी, बद्रीनाथ भट्ट आदि। सरस्वती में भी द्विवेदी जी अपनी रचनाओं को प्रकाशित करते रहते थे। द्विवेदी जी के काव्य भाषा संबंधी मंतव्यों का सफल अनुकरण करने वाले मैथिलीशरण गुप्त थे। गुप्त जी अपनी रचनाओं को सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजा करते थे और द्विवेदीजी उनकी रचनाओं में अपनी दृष्टि से समुचित संशोधन कर दिया करते थे। उनके द्वारा किए गए संशोधनों को वे प्रामाणिक मानकर सहर्ष स्वीकार करते थे। उसके बाद मैथिलीशरण गुप्त की दूसरी रचना जयद्रथ वध द्विवेदी जी का हाथ था। वीर और रोद्र रस की ये रचना कई संदर्भों में ब्याज रूप से ब्रिटिश हुकूमत पर प्रहार करती थी किंतु महाभारत का एक मिथक साख्यान होने के कारण उसे पकड़ पाना साधारण पाठक के लिए सरल नहीं था। वीर रस की यह रचना उस समय अत्यंत लोकप्रिय हुई और पांडवों के वर्चस्व को सहज सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सफल मानी गई। देश-भक्ति का भाव गुप्तजी के मन में इसी काल में उदय हुआ और उन्होंने भारत-भारती जैसी लोकप्रिय रचना के द्वारा जनमानस में अपना स्थान बना लिया।

लोचन प्रसाद पांडे की मृगी, दुखमोचन और आत्म त्याग शीर्षक कविताएं इसी प्रकार के रसों में लिखी गई हैं। रामचरित उपाध्याय ने द्विवेदी युग में छोटे-बड़े कई काव्य लिखे जिनमें रामचरित चिंतामणि प्रमुख हैं।

महाकाव्य के लक्षणों की दृष्टि से यह रचना महाकाव्य की कोटि में स्थान पाती है। इसके अनेक स्थल बहुत मार्मिक तथा रमणीय हैं। लाला भगवानदीन ने वीर पंचरत्न, वीर क्षत्राणी और वीर बालक शीर्षक से वीर रस की रचनाएं प्रस्तुत की। काव्य गुण की दृष्टि से यद्यपि उनका विशेष महत्त्व नहीं है किंतु उन्होंने खड़ी बोली में उर्दू शब्दों का प्रयोग करके भाषा का सीमा विस्तार किया। नाथूराम शंकर शर्मा प्रारंभ में ब्रजभाषा में कविता लिखते थे किंतु द्विवेदी जी के अनुरोध से उन्होंने खड़ी बोली को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया। इन्होंने छंदों के भी कई नूतन प्रयोग किए। मात्रिक छंदों का प्रयोग शर्माजी ने किया वैसा कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। उन्होंने श्रृंगार रस की जैसी सरस रचनाएं लिखी वैसी काव्यपूर्ण उस काल के कवियों में प्रायः दुर्लभ थी। द्विवेदी युग में महाकाव्य तथा खंडकाव्य की रचनाओं का सूत्रपात हो चुका था। उस समय प्रिय प्रवास, साकेत, रामचरित्र, चिंतामणि आदि महाकाव्य लिखे गए। इनकी परंपरा द्विवेदी युग के बाद भी सतत चलती रही। खंडकाव्य की परंपरा भी गुप्तजी ने प्रारंभ की जिसमें जयद्रथ-वध, किसान और पंचवटी, रामनरेश त्रिपाठी का पथिक और मिलन आदि है। द्विवेदी युग में मुक्तक रचना का भी प्राचुर्य रहा। मुक्तक के रूप में कवियों की अनेक प्रवृत्तियां कार्य कर रही थी। कहीं अलंकारिक चमत्कार के रूप में, कहीं उक्ति वैचित्र्य के रूप में और कहीं मार्मिक अनुभूतियों के रूप में कवियों की सुंदर अभिव्यंजना प्रकट हो रही थी।

द्विवेदी युगीन प्रमुख कवियों का प्रदेय– श्रीधर पाठक (1860-1929)—कालक्रम की दृष्टि से श्रीधर पाठक ऐसे रचनाकार हैं जो ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली के क्षेत्र में सबसे पहले आगे आए थे। उन्हें अंग्रेजी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। वे फिरोजाबाद (आगरा) परगने के जौधरी ग्राम के निवासी थे। यह प्रदेश पूर्णतः ब्रजक्षेत्र तो नहीं है किंतु ब्रजभाषा अंचल से सटा हुआ होने के कारण पाठक जी की भाषा पर भी प्रारंभ में ब्रजभाषा का प्रभाव था। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने भारत भारती काव्य में पाठक जी की पद्धति का अनुशरण करके अतीत गौरवगान किया है। ब्रजभाषा छोड़कर जब पाठक जी का ध्यान खड़ी बोली की ओर गया उसी समय उन्होंने अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के काव्य हरमिट का अनुवाद किया और उनका रुझान खड़ी बोली

की ओर अधिकाधिक जाने लगा। इसके बाद उन्होंने गोल्डस्मिथ के दूसरे काव्य डेजर्टेड विलेज का अनुवाद ऊजड़ गांव शीर्षक से किया जिसकी भाषा ब्रज ही है। पाठक जी की तीसरी रचना गोल्डस्मिथ दी ट्रेवलर का अनुवाद है, जिसका श्रांत पथिक के नाम से अनुवाद किया है। इन तीनों रचनाओं का समय 1886 से लेकर 1902 ई. है। मौलिक रचनाओं का एक संकलन मनोविनोद शीर्षक से सन् 1917 में प्रकाशित हुआ। राष्ट्रीय भावना भारतेंदु युग से प्रारंभ हुई थी, श्रीधर पाठक की वाणी में उसे अधिक बल और ऊर्जा प्राप्त हुई। उसका प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी लक्षित होता है। पाठक जी के काव्य में प्रकृति प्रेम के सुंदर वर्णन मिलते हैं। कश्मीर, देहरादून, मंसूरी, नैनीताल आदि पर्वतीय प्रदेशों में रहकर उन्होंने जिस प्राकृतिक सौंदर्य को देखा था, उसका स्वाभाविक वर्णन किया है। श्रीधर पाठक के काव्य विषय तो अनेक हैं किंतु उनकी ख्याति प्रकृति वर्णन, देश प्रेम वर्णन तथा कृष्ण भक्ति वर्णन के कारण ही है। संक्षेप में पाठक जी की संपूर्ण काव्य यात्रा को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने खड़ी बोली हिंदी के विकास के लिए नए वातायन खोले। अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद से उन्होंने स्वच्छंदतावादी कविता को हिंदी पाठक के सामने प्रस्तुत किया था। गांव के गीतों और छंदों के प्रयोग से उन्होंने सामान्य पाठक को भी अपनी कविता की ओर आकृष्ट किया था।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938)—आचार्य द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में दौलतपुर नामक ग्राम में सन् 1864 में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा इन्होंने गांव में प्राप्त की। तदन्तर रायबरेली, उन्नाव तथा फतेहपुर के स्कूलों में प्रविष्ट हुए। उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती, मराठी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। फारसी भाषा का ज्ञान इन्होंने मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए प्राप्त किया था। आजीविका के लिए द्विवेदीजी ने रेलवे में नौकरी कर ली और उन्नति करते हुए बाबू के पद तक पहुँचे। इसके बाद ये 1903 में सरस्वती के संपादक बने और 1920 तक सरस्वती का संपादन किया। इनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से अनेक कवियों और लेखकों को खड़ी बोली हिंदी के प्रति आकर्षण पैदा हुआ और उन्होंने स्वयं भी गद्य और पद्य में अनेक ग्रंथों की रचना की। इनके कृतित्व का आकलन भी खड़ी बोली हिंदी के परिष्कर्ता के रूप में किया जाता है। द्विवेदीजी को वर्तमान युग में हिंदी भाषा व्याकरण के संशोधनकर्ता के रूप में याद किया जाता है किंतु उनके कवि रूप की उपेक्षा होती रही है। द्विवेदीजी ने तत्कालीन युवा कवियों और लेखकों को प्रांजल एवं परिष्कृत खड़ी बोली हिंदी में कविता करने की प्रेरणा अवश्य दी। जिसके फलस्वरूप खड़ी बोली के पांव दृढ़ता के साथ काव्य क्षेत्र में स्थापित हो सके। जब उन्होंने कविता लिखना शुरू किया था तब स्वदेश-प्रेम, धर्म-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि विषयों पर कविताएं लिखी जा रही थीं। अतीत गौरव गान भी कविता का एक मुख्य विषय था। द्विवेदीजी ने अपनी फुटकर कविताओं में इन सभी विषयों का समावेश किया है।

''लोचन चले गए भीतर कह,
कंटक सम कच छाए,
कर में खप्पर लिए अनेकन
जीरण पर लपआए।''

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'(1865-1947)—'हरिऔध' का जन्म उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ जिले की निजामाबाद तहसील में वैशाख कृष्णा 3, संवत् 1922 (1865 ई.) को हुआ था। 'हरिऔध' की प्रारंभिक शिक्षा निजामाबाद के मिडल स्कूल में हुई। 'हरिऔध' ने अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य किया और वहां से सन् 1941 ई. में सेवानिवृत्त हो अपने घर पर ही रहकर साहित्य सेवा करते रहे। 'हरिऔध' का निधन 6 मार्च 1947 को हुआ। 'हरिऔध' ने ब्रजभाषा में कविता करना प्रारंभ किया था। उस समय ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली आन्दोलन चल रहा था। 'हरिऔध' का रुझान ब्रजभाषा से हटकर खड़ी बोली की ओर कैसे गया, इसका मूल कारण हम सरस्वती के प्रकाशन को ही मानते हैं। उन्होंने खड़ी बोली (हिंदी) में सर्वप्रथम प्रियप्रवास नामक महाकाव्य की रचना की। प्रियप्रवास से पहले उन्होंने सत्रह वर्ष की उम्र में श्रीकृष्ण शतक की रचना की। उनके तीन संग्रह और प्रकाश में आए वे भी ब्रजभाषा में ही हैं—प्रेमाम्भुवारिध, प्रेमाम्भुप्रश्रव, प्रेमाम्भुप्रवाह। इन संकलनों में 'हरिऔध' परंपरा प्रेमी कवि के रूप में सामने आते हैं। सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ जब द्विवेदीजी ने खड़ी बोली के पक्ष में स्वयं कविता लिखना तथा समकालीन कवियों को ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली में रचना के लिए प्रेरित करना आरंभ किया तब 'हरिऔध' भी खड़ी बोली में कविता करने लगे। सन् 1914 ई. में उनका प्रियप्रवास नामक प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ। 'हरिऔध' की रचनाएं काव्य क्षेत्र में पर्याप्त हैं। उन्होंने 'हरिऔध' सतसई शीर्षक से भी एक सतसई लिखी है। प्रबंध काव्यों में उनके दो काव्य विख्यात हैं—प्रियप्रवास और वैदेही वनवास। इनके दो मौलिक उपन्यास भी हैं—अधखिला फूल और ठेठ हिंदी का ठाठ। एक अनूदित उपन्यास वेनिस का बांका भी है। दो नाटक हैं—रुक्मणि परिचय और प्रद्युम्न विजय। 'हरिऔध' के दो-तीन ग्रंथ और प्रसिद्ध हैं जिनमें परिजात में विविध विषयों और शैलियों के दर्शन होते हैं। परिजात में विभिन्न विषयों का समाहार है तो चोखे चौपदे, चुभते चौपदे तथा बोलचाल शीर्षक रचनाओं में उन्होंने प्रियप्रवास वाली

तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ शैली को छोड़कर एकदम चलती सहज भाषा का प्रयोग किया है। एक पुस्तक का नामकरण ही उन्होंने बोलचाल शीर्षक से किया।

जगन्नाथदास रत्नाकर (1866-1932)—रत्नाकर का जन्म 1866 ई. में काशी में हुआ था। 21 जून सन् 1932 ई. में उनका देहान्त हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी के भाषा-विषयक विचारों से प्रभावित होकर उस समय के कई कवियों ने ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली में काव्य रचना प्रारंभ कर दी थी। किंतु जगन्नाथदास रत्नाकर ने ब्रज भाषा का त्याग नहीं किया क्योंकि यह उनके संस्कार की सहज भाषा थी। ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली ने जब आन्दोलन का रूप धारण कर लिया तब जगन्नाथदास रत्नाकर ने अपने समालोचनादर्श पत्र में इस विषय पर छंदोबद्ध टिप्पणी की थी। उन्होंने उसी समय उद्धवशतक शीर्षक से ब्रज भाषा का एक सुंदर काव्य ग्रंथ लिखा। यह रचना भाव, भाषा, शैली, रस, व्यंजना, अलंकार, बिंब, प्रतीक आदि समस्त गुणों से परिपूर्ण होने के कारण बीसवीं शती की सर्वश्रेष्ठ ब्रजभाषा काव्य कृति है। रत्नाकरजी केवल एक ही कृति उद्धवशतक ही लिखते तो भी वे हिंदी साहित्य में अमर ही रहते और उनकी ख्याति आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वोत्तम कवि के रूप में सदैव बनी रहती।

मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964)—गुप्त का जन्म झांसी जनपद के चिरगांव नामक कस्बे में 1886 ई. में हुआ था। गुप्त जी के पिता वैष्णव भक्त थे तथा रामकथा से उनका विशेष अनुराग था। इसका प्रभाव शैशव से ही गुप्तजी पर पड़ा। उनकी प्रारंभिक रचनाएं वैश्योपकारक पत्र में प्रकाशित होती थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आने के बाद उन्होंने अपनी रचनाएं सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजनी प्रारंभ की। गुप्त जी शनैः-शनैः उनके बताए मार्ग पर चलने लगे और उनका पहला खंडकाव्य रंग में भंग 1909 में प्रकाश में आया। भारत भारती में देश के प्रति प्रेम, गर्व और गौरव की भावनाएं प्रस्तुत की गई हैं। राष्ट्र भावना से परिपूर्ण इनकी रचनाएं जातीय अस्मिता का जो चित्र प्रस्तुत करती हैं वह केवल अतीत गौरव गान ही न होकर युगबोध की प्रेरणाप्रद चेतना से आपूर्ण है। उन्होंने जयभारत शीर्षक रचना में भी महाभारत के अनेक खंडकाव्य लिखे हैं उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया, कैकयी हिडिम्बा आदि नारियों का वर्णन सामाजिक तथा पारिवारिक स्थिति को ध्यान में रखकर समीचीन शैली से किया गया है। गुप्तजी को राष्ट्रकवि का पद तो भारत भारती की रचना के साथ ही प्राप्त हो गया था। उसके बाद की विपुल रचनाओं से उन्होंने अपने राष्ट्र प्रेम को राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से सर्वत्र सुदृढ़ रूप से स्थापित कर दिया।

पं. नाथूराम शंकर शर्मा (1859-1932)—शर्मा का जन्म अलीगढ़ जनपद के हरिदागंज में हुआ था। इनके परिवार में संस्कृत भाषा के अध्ययन की परंपरा चली आ रही थी। शर्माजी ने संस्कृत के साथ हिंदी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं को अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संपादित ब्राह्मण पत्र में इनकी कविताएं छपने लगी थी। प्रारंभ में ये ब्रजभाषा के कवि थे किंतु सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के बाद जब इनका संपर्क आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से हुआ तब उन्होंने ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और द्विवेदी मंडल के प्रमुख कवियों में गिने जाने लगे। उर्दू भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था, इसलिए उन्होंने उर्दू शायरी में भी अच्छी रचनाएं की। सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, परंपराजन्य आडंबरों पर तीखे व्यंग्य करते हुए उन्होंने अच्छी उपदेशात्मक, कविताएं लिखी है। श्री मिश्र शंकर छंद शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे और समास्यापूर्ति के लिए आशुकवि के रूप में रचना प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। उन्हें कवि समाज द्वारा अनेक मानद उपाधियां प्राप्त थी। साहित्य सुधाकर, कविता कामिनी कांत आदि उपाधियों से इन्हें विभूषित किया गया। अनुरागरत्न, शंकर सरोज, गर्भाखंडरहस्य, शंकर सर्वस्व इनके प्रमुख उपलब्ध काव्य ग्रंथ हैं।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही (1883-1972)—सनेही का जन्म उन्नाव जिले के हड़हा ग्राम में सन् 1883 ई. में हुआ था। सनेही जी पर भी महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव पड़ा और उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में सरस शैली में रचना करना प्रारंभ किया। शृंगार, प्रेम और परंपरागत विषयों पर कविता लिखते समय वे अपने 'सनेही' उपनाम का प्रयोग करते थे। बलिदान गीत, उत्सर्ग गीत, राष्ट्र गीत, प्रयाण गीत लिखकर इन्होंने बड़े निर्भीक भाव से अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय दिया। सनेहीजी ने अपने कानपुर प्रवास में सुकवि नाम से एक काव्य पत्रिका निकाली जिसमें कवि अपनी कविताएं प्रकाशनार्थ भेजते थे। सनेही जी समस्यापूर्ति की कविताएं लिखते थे। इनकी रचनाओं में त्रिशूल, तरंग, राष्ट्रीय वीणा, कृषक क्रंदन, करुणा कादंबिनी आदि प्रमुख हैं। सनेही की रचनाओं में वाग्वैदग्ध्य, शब्द चमत्कार उक्ति वैचित्र्य आदि भाषिक संरचना के अनूठेपन के दर्शन होते हैं।

मुकुटधर पांडेय (1895-1984)—पांडेयजी ने द्विवेदी युग के प्रथम दशक में ही कलम पकड़ ली थी। प्रकृति के उपासक होने के कारण इनके काव्य में आतंरिक संवेदना और रहस्यात्मक अनुभूतियों के वर्णन में इन्हें कुशलता प्राप्त थी। हिंदी साहित्य के कुछ

इतिहास लेखकों ने पांडेयजी को छायावाद के रूप में स्मरण किया है। पूजा, फूल और कानन, कुसुम उनकी प्रकाशित रचनाएं हैं। समीक्षक इनमें छायावाद का पूर्वाभास देखते हैं।

रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962)—श्री त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद के कोइरीपुर नामक ग्राम में सामान्य कृषक परिवार में भाद्रपद शुक्ला 13 संवत् 1946 वि. को हुआ था। नेवटिया परिवार साहित्य प्रेमी था और उनके यहां हिंदी की पत्र-पत्रिकाएं आती रहती थीं। त्रिपाठी जी को वही अध्ययन का व्यसन हुआ और उन्होंने कविता लिखना भी प्रारंभ कर दिया। उनकी कविताएं सरस्वती और प्रवाह नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई और राजस्थान में उनका संपन्न मारवाड़ी परिवारों से भी संबंध हो गया। काव्य रचना के प्रारंभिक काल में त्रिपाठी जी प्रायः प्रार्थना, गीत, राष्ट्र प्रेम के गीत, प्रकृति वर्णन के गीत अधिक लिखा करते थे। त्रिपाठी जी स्वच्छंदतावादी कवि थे, लोकगीतों के सर्वप्रथम संकलनकर्ता थे। बाल-साहित्य प्रणेता थे और सुरुचिसंपन्न संपादक थे। उन्होंने 1917 में अपने ही प्रेस से कविता कौमुदी का प्रकाशन किया। उसके बाद शेष छः भागों का प्रकाशन परवर्ती पंद्रह वर्षों में किया। त्रिपाठीजी का पहला खंडकाव्य 'मिलन' हिंदी मंदिर द्वारा सन् 1917 व दूसरा 'पथिक' नाम से सन् 1920 में प्रकाशित हुआ। त्रिपाठी जी ने साहित्य की अनेक विधाओं में यथा कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, जीवनी और संस्मरण, साहित्य का इतिहास, बाल साहित्य तथा संपादन कार्य दिया। त्रिपाठी जी का तीसरा खंडकाव्य 'स्वप्न' सन् 1928 में रचना की थी।

रामचरित उपाध्याय (1872-1938)—उपाध्याय जी का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में 1872 ई. में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत भाषा में हुई। काव्य रचना का प्रारंभ इन्होंने ब्रजभाषा से किया था किंतु महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आने पर इन्होंने खड़ी बोली पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। इन्होंने युगधर्म के अनुकूल राष्ट्र प्रेम और समाज-सुधार विषयक की कुछ रचनाएं लिखी। इनकी रामचरित चिंतामणि नामक, प्रबंधात्मक महाकाव्य के रूप में प्रसिद्ध है। इन्होंने सूक्ति मुक्तावली में नीति-विषयक कुछ सुंदर सूक्तियां लिखी हैं जो इनके व्यापक अनुभव, लोक-व्यवहार ज्ञान की सूचक हैं।

राय देवीप्रसाद पूर्ण (1868-1915)—द्विवेदी युग के कवियों में ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों पर समान अधिकार रखने वाले पूर्ण जी व्यवसाय से वकील थे और सामाजिक कार्यकलाप में भी गहरी रुचि रखते थे। प्रकृति प्रेमी होने के कारण उन्होंने धाराधर धावन शीर्षक से मेघदूत का सरस शैली में पद्यबद्ध अनुवाद किया। इनकी रचनाओं में राम, रावण विरोध, वसन्त वियोग, मृत्युंजय आदि उल्लेखनीय हैं। ब्रजभाषा से अपनी कविता यात्रा का आरम्भ कर वे खड़ी बोली की ओर अग्रसर हुए।

वियोगी हरि (1895-1988)—वियोगी हरि कवि एवं साहित्यकार होने के साथ तपोनिष्ठ साधक परमभक्ति दार्शनिक चिंतक एवं यशनिरपेक्ष समाजसेवी थे। भक्ति संबंधी रचनाएं तो उन्होंने महारानी कमल कुमारी के साथ यात्रा करते समय ही लिखी थीं।

ठाकुर गोपालशरण सिंह (1891-1960)—ठाकुर जी खड़ी बोली में कवित्त सवैया छंदों की रचना करके ब्रजभाषा को खड़ी बोली के साथ जोड़ने में अच्छा योग दिया। कवित्त सवैया जैसे सुंदर छंदों का प्रयोग ब्रजभाषा में संभव नहीं है। गोपालशरण सिंह की कविता में जीवन की विविध दशाओं के सुंदर भावपूर्ण चित्र मिलते हैं। माधवी, मानवी, सचिता तथा ज्योतिषमती इनकी प्रमुख काव्य-कृतियां हैं।

सियारामशरण गुप्त (1895-1963)—गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव में इन्होंने सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा और दया आदि विषयों को स्वीकार कर कविता, कहानी और निबंध लेखन में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तामक काव्य सृजन से हटकर इन्होंने वैचारिक तथा चिंतनपूर्ण साहित्य का सृजन किया।

गद्य-साहित्य—द्विवेदीयुगीन साहित्य की मूल चेतना का अनुसंधान करने पर जो लहर भारतेंदु युग में उठी थी उसमें समाज-सुधार के नाम पर अनेक रचनाओं में स्थान दिया। विदेशी शासन के प्रति राजनीतिक आंदोलनों विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेश के प्रति प्रेम इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति बनती जा रही थी। गद्य साहित्य की विविध विधाएं द्विवेदी युग में अपने पूर्ण विकास के साथ सामने आई। इनमें उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना, जीवनी, संस्मरण, पत्र-साहित्य आदि प्रमुख हैं।

उपन्यास—द्विवेदी युग में उपन्यास की रचना लिखने वालों का ध्यान पहले रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं, तिलस्मयी-ऐय्यारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास तथा सामाजिक उपन्यास, प्रमुख रूप से लिखे गए। देवकीनंदन खत्री के प्रसिद्ध उपन्यास चंद्रकांता संतति और भूतनाथ ने प्रचार की दृष्टि से द्विवेदी युग में ही लोकप्रियता प्राप्त की। काजर की कोठरी, अनूठी बेगम, गुप्त गोदना आदि उपन्यास भी सामान्य जन के मनोरंजन के साधन बने। किशोरीलाल गोस्वामी ने भी तिलिस्मी शीशमहल उपन्यास लिखा। जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तन गोपाल राम गहमरी (1866-1946 ई.) ने किया।

सरकटी लाश, जासूस की ऐय्यारी। उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी को अच्छी सफलता प्राप्त हुई। सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य, समाज-सुधार ही था। उसी युग में प्रेमचंद्र के उपन्यासों की विशेषता यही थी कि उन्होंने जीवन की वास्तविक समस्याओं को बीच में रखा और सुरूचिपूर्ण प्रसंगों की उद्‌भावना की। गोद, अंतिम आकांक्षा तथा नारी शीर्षक गुप्त जी के उपन्यास द्विवेदीयुगीन उपन्यासों की शृंखला से बिलकुल हटकर हैं। गुप्त जी ने अपने उपन्यासों में जिन विषयों का चयन किया है उनमें सात्विक भाव को ही प्रधानता दी है और शृंगार में भी यही उभरता है।

कहानी—भारतेंदु युग में कहानी का वास्तविक रूप सामने नहीं आया था। जिसे कहानी की शिल्प विधि के स्तर पर आज कहानी कहा जाता है। वह किशोरीलाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी शेक्सपियर के टैम्पेस्ट नाटक के आधार पर लिखी गई थी। सरस्वती में ही रामचंद्र शुक्ल की ग्यारह वर्ष का समय शीर्षक कहानी और षंग महिला की दुलाईवाली कहानी, सरस्वती में प्रकाशित हुई। जयशंकर प्रसाद ने भी छाया शीर्षक से अपनी कहानियों का संकलन प्रकाशित किया। राधिकारमण प्रसाद सिंह की भावपूर्ण कहानी कानों में कंगना इंदु में ही 1913 में प्रकाशित हुई थी। इस समय तक प्रेमचंद्र की अनेक कहानियां जमाना में उर्दू भाषा में प्रकाशित हो चुकी थी। पंच परमेश्वर सज्जनता का दंड और दुर्गा का मंदिर शीर्षक कहानियां सरस्वती में ही प्रकाशित हुई थी। गुलेरी जी ने कुल मिलाकर तीन कहानियां लिखीं। प्रेमचंद्र जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं को लेकर यथार्थवाद की प्रतिष्ठा करने में संलग्न थे, जबकि जयशंकर प्रसाद मनुष्य के आभ्यंतर भाव-द्वंद्व को अलंकृत शैली में व्यक्त करने में तल्लीन थे। प्रेमचंद्र वर्तमान जीवन के दुख-द्वंद्व, न्याय-अन्याय की कहानी कह रहे थे जबकि प्रसाद कल्पना के योग से अतीत के काल्पनिक क्षेत्रों को कहानी में प्रस्तुत कर रहे थे। द्विवेदी युग की कहानी का रूझान थोड़ा बहुत इतिहास की ओर भी था और संक्षेप में द्विवेदीयुगीन हिंदी कहानी को शिल्प की दृष्टि से स्तरीय नहीं कहा जा सकता। उस युग की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी विद्या बहुत समृद्ध हुई और उसने अपना स्वरूप स्थापित कर लिया।

निबंध—द्विवेदीयुगीन निबंध साहित्य का क्षेत्र बहुविस्तृत है। अंग्रेजी साहित्यकारों ने निबंध की जो परिभाषा की है वह इतनी व्यापक है कि कोई भी विषयवस्तु या भाव निबंध क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। द्विवेदी युग ने इस परिभाषा को एक सीमा तक स्वीकार किया और निबंध के लिए कुछ विषय चुने। निबंध की जो परंपरा भारतेंदु युग में प्रारंभ हुई थी। वह उसी ऊर्जा के साथ द्विवेदी युग में अपनी जड़ें नहीं जमा पाई। बालमुकुंद गुप्त ने शिव शंभु का चिट्‌ठा शीर्षक से भारतमित्र में अपने लेख प्रकाशित कराए थे। ये पत्र तत्कालिक गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन को संबोधित थे। गुप्त जी उर्दू से हिंदी में आए थे इसलिए उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, चुटीली, व्यावहारिक एवं सर्वजन ग्राह्य है। सरदार पूर्णसिंह द्विवेदी युग के एक श्रेष्ठ निबंधकार हैं और उनके निबंध सामाजिक एवं वैचारिक दृष्टि से बहुत गंभीर शैली में लिखे गए हैं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी के कछुआ धर्म और मारेसि मोहि कुठाऊ इनके बहुचर्चित निबंध हैं। माधव प्रसाद मिश्र के निबंधों का संग्रह माधव मिश्र निबंधमाला के नाम से प्रकाशित है जिसमें सभी प्रकार के निबंध हैं। पुष्पांजलि शीर्षक पुस्तक में इनके खोजपूर्ण साहित्यिक निबंध संकलित हैं जो शोध की दृष्टि से पठनीय हैं।

नाटक—हिंदी में गद्य का सुव्यवस्थित रूप से परिनिष्ठित विकास नहीं हुआ था। नाटकों में प्रयुक्त होने वाली प्रवाहपूर्ण भाषा तथा रमणीय शैली के संवाद लिख पाना संभव नहीं था। भारतेंदु ने नाटक रचना में रुचि लेकर इस विधा को रंगमंच के साथ जोड़ने का उपक्रम किया। सन् 1912 में बद्रीनाथ भट्‌ट ने कुरूपन दहन शीर्षक से एक नाटक लिखा जो संस्कृत नाटक वेणी संहार को जयों का त्यों अनूदित न कर नवीन पात्रों की अवतारणा से इसे नया रूप दिया गया। अभिनय की दृष्टि से यह नाटक सरल, सुंदर है तथा रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत हो सकता है। इसके बाद माधव शुक्ल ने महाभारत शीर्षक से एक नाटक लिखा। इस नाटक में भद्रजन तो खड़ी बोली में साहित्यिक शैली से उद्‌गार प्रकट करते हैं पर ग्रामीण मजदूर आदि अपनी बोलियों में वार्तालाप करते दिखाई पड़ते हैं। कविवर जयशंकर प्रसाद ने नवीन शैली के नाटकों की परंपरा चलाई। इसकी भाषा-शैली कवित्वपूर्ण, कथानक, जटिल, चरित्र चित्रण आदर्शवादी और नाटक का संपूर्ण वातावरण स्वच्छंद और कवित्वपूर्ण है। प्रसाद जी की दृष्टि से ये नाटक, नाट्य, साहित्य की विभूति और सौन्दर्य हैं। चरित्र-चित्रण, भाव-विचार, संगीत सभी कवित्व रस में सराबोर होते हैं किंतु रंगमंच पर सफलता की दृष्टि से उनमें कुछ ऐसी त्रुटियां लक्षित होती है जो उन्हें जनरुचि से जोड़ नहीं पातीं। तत्कालीन नाटकीय रचनाओं में अनेक परिवर्तन आए। संस्कृत नाटकों का आदर्श उस युग के नाटकों में अश्रुण्ण बना रहा। इन नाटकों में अस्वाभाविकता भी विशेष मात्रा में थी। नाटकीय प्रसंगों की बहुलता रहती है। इनका हास्य प्रायः अश्लील, अरुचिपूर्ण और अनाटकीय सामग्री से भरा हुआ है। उस युग में फारसी नाटकों का रंगमंच पर आधिपत्य था। जयशंकर प्रसाद ने राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी, विशाख और अजातशत्रु शीर्षक ऐतिहासिक नाटक लिखे। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में हिंदी नाट्य कला का चरम विकास मिलता है। इनके नाटकों में कथानक का विकास स्वच्छंदतावादी है जिसमें कथानक उलझा हुआ तथा मिश्र होता है। इनके नाटकों में एक-दो पात्र संगीतप्रिय होते हैं। प्रतीकवादी नाटक का प्रारंभ भी उस युग में हो गया था

जो बहुत उत्कृष्ट कोटि तक नहीं पहुँच सका। सुमित्रानन्दन पंत ने ज्योत्सना शीर्षक से छाया, तारा, जुगनू, लहर आदि प्रतीकात्मक पात्रों की अवतारणा की। हिंदी का नाटक साहित्य रंगमंच की दृष्टि से पारसी थियेटर से टाकिज के उदय से पहले तक अटूट प्रभाव में चलता रहा। कुछ नाटक कंपनियां और मंडलियां भी नाटक के विकास में योग देती रही। आधुनिक रंगमंच की कुछ योजनाएं जैसे पर्दा, प्रकाश, ध्वनि आदि का समुचित विकास न होने से उस समय का नाटक साहित्य अभिनय की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

आलोचना—द्विवेदी युग में निबंध विद्या के अंतर्गत ही समालोचना का एक रूप देखा जा सकता है। सैद्धांतिक समालोचना की दृष्टि से भी इस युग में कई लेखकों ने अच्छा कार्य किया। संस्कृत समालोचना के सिद्धांत, पाश्चात्य समालोचना के सिद्धांत तथा संस्कृत और पाश्चात्य समालोचना के सिद्धांत तथा संस्कृत और पाश्चात्य समालोचना का समन्वित रूप प्रस्तुत करने वाले कुछ ग्रंथ इस युग में प्रकाश में आए। मिश्रबंधुओं द्वारा रचित हिंदी नवरत्न पुस्तक में हिंदी के नौ कवियों पर विस्तारपूर्वक समालोचना लिखी गई। हिंदी नवरत्न के द्वितीय संस्करण में कबीर को भी स्थान मिला। इस ग्रंथ से तुलनात्मक समीक्षा का भी हिंदी में श्रीगणेश हुआ। देव और बिहारी विषयक समीक्षा का यह सूत्रपात था। उसी युग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी समालोचना के क्षेत्र में पदार्पण कर लिया था। तुलसी और सूर की रचनाओं को केन्द्र में रखकर व्यावहारिक समीक्षा का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया। शुक्लाजी की व्यावहारिक समीक्षा में समीक्षा सिद्धांतों का उपयुक्त शैली से प्रयोग देखा जा सकता है। संस्कृत और अंग्रेजी ग्रंथों के आधार पर समीक्षा सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया।

गद्य-साहित्य : अन्य विधाएं—द्विवेदी युग में हिंदी गद्य की सभी विधाओं का विकास तो नहीं हुआ था किंतु इतिहास-भूगोल जीवनी संस्मरण, यात्रा-वृत्त, शोधपूर्ण लेख तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रचलन हो गया था। इतिहास से संबंधित कई उच्चकोटि के ग्रंथ लिखे। हिंदी में वीरों और महापुरुषों के जीवन चरित्र नई शैली में लिखे गए। इस युग के जीवनी साहित्य में वैज्ञानिक पद्धति को स्वीकार किया गया और अतिप्राकृत तथा कल्पनाप्रधान संदर्भों को निरस्त करके शोध-दृष्टि से उपयुक्त संदर्भों का उल्लेख किया गया। द्विवेदी युग में यात्रावृत्त संबंधी अधिक पुस्तकें नहीं लिखी गई, किंतु अपने देश के तीर्थ स्थानों की यात्रा का वर्णन मिलता है। चीन, जापान, अमेरिका आदि विदेशों की यात्राओं के वर्णन लिखे गए। भाषा-संबंधी कुछ विवाद भी उस समय खड़े हुए और विद्वानों ने अपनी-अपनी शंका-समाधान का वातावरण उस समय बना रहा। साहित्य की अनेक विधाओं का सर्जनात्मक साहित्य भी द्विवेदी युग में रचा गया और हिंदी साहित्य पद्य और गद्य दोनों दिशाओं में विकसित हुआ। कहानी, नाटक, जीवनी आदि के क्षेत्र में भी नवीन उद्भावनाओं के साथ लेखन कार्य चलता रहा। द्विवेदी युग में गद्य और पद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली के माध्यम से जो रचनाएं प्रकाश में आई उनसे खड़ी बोली हिंदी अपने सौष्ठव में निखार पाती रही। इस युग में हिंदी के तीन कालजयी साहित्यकार उत्पन्न हुए, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद्र का नाम सदैव अमिट अक्षरों में लिखा रहेगा। जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार-स्तंभ बने।

उपसंहार—द्विवेदीयुगीन साहित्य के विविध पक्षों पर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में खड़ी बोली के विपक्ष में खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा तथा बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में एक आंदोलन खड़ा हुआ था। महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप की स्थापना हुई। द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से हिंदी राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार, अतीत गौरवगान, समाज विज्ञान, पुस्तक आलोचना, देश-विदेश की गतिविधि की समीक्षा आदि नए विषयों पर स्वयं लिखकर सामग्री उपलब्ध कराई। नाटकों का जैसा सूत्रपात भारतेंदु युग में हुआ था वह इस युग में पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सका। नाटक कंपनियों के लिए जो नाटक लिखे गए उनमें साहित्यिक सौष्ठव का अभाव था। निबंध के क्षेत्र में भी दो-एक लेखकों को छोड़कर उच्च कोटि के निबंधकार उत्पन्न नहीं हुए। उपन्यास के क्षेत्र में अवश्य नए विषयों का समावेश हुआ। प्रेमचंद्र जैसे समर्थ यथार्थवादी समाजोन्मुख उपन्यासकार का जन्म इसी युग में हुआ। कहानी के क्षेत्र में भी अच्छी प्रगति हुई थी और उनमें विविध विषयों के लेख, नई शैली की कविता, कहानी, निबंध, समीक्षा आदि का प्रकाशन होने लगा था। इस युग के साहित्य ने इतिवृत्त, अतीत गान, समाज-सुधार, आदर्शवाद, राष्ट्रीय भावना आदि को उस सीमा तक स्वीकार कर लिया था कि वह साहित्य उपदेशात्मक जैसा बन गया था जिसकी प्रतिक्रिया परवर्ती साहित्य पर हुई और नवीन उन्मेष के साथ वह साहित्य अपना स्वरूप निर्धारित कर सका।

द्वारा सस्ता साहित्य मंडल
एन-77 पहली मंजिल
कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110001

नवयुग के संवाहक

साधना श्रीवास्तव 'कल्याणी'

''मातृ भाषा के उपासक,
मानव धर्म के सेवी।
गद्य विधा के युग प्रणेता,
महावीर प्रसाद द्विवेदी।।''

हिंदी साहित्य के नवयुग के संवाहक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी दी ऐसे अप्रतिम रचनाकार हैं, जिन्होंने न केवल नवल रचनाएं की, अपितु आलोचना, समीक्षा के माध्यम से हिंदी साहित्य की अव्यवस्थित धारा को परिमार्जित एवं परिष्कृत किया। पंडित जी का जन्म सन् 1864 में ग्राम दौलतपुर, जिला बरेली (उ. प्र.) में हुआ था। इनका जन्म ग्रामीण परिवेश में हुआ, इसी कारण वे सामान्य जन-जीवन की कठिनाइयों से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने स्वयं ही अपने आत्म कथात्मक निबंध 'मेरी जीवन रेखा' में इसका उल्लेख किया है।

''मैं एक ऐसे देहाती का एक मात्र आत्मज हूं, जिसका मासिक वेतन दस रुपए था। अपने गांव के देहाती मदरसे में थोड़ी सी उर्दू और घर पर थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर तेरह वर्ष की उम्र में मैं छब्बीस मील दूर रायबरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने गया। आटा, दाल घर से पीसकर लाद कर ले जाता था। दो आने महीने फीस देता था। दाल में ही आटे के पेड़े या टिकियाएं पका करके पेट पूजा करता था। रोटी बनाना मुझे आता ही न था। संस्कृत भाषा उस समय स्कूल में अछूत समझी जाती थी। विवश होकर अंग्रेजी के साथ फारसी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहां काटा। फिर पुरबा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरावस्था के कारण मैं इससे आगे न पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा की वही समाप्ति हो गई।''1

अपने जीवन की कठिनाई भरे दिनों में भी द्विवेदी जी के पारिवारिक संस्कारों ने उनके व्यक्तित्व को सुदृढ़ एवं विचारशील बनाने में अप्रतिम योगदान दिया। उन्होंने स्वंय लिखा है– ''बचपन से ही मेरी प्रवृत्ति सुशिक्षित जनों की संगति करने की ओर थी। दैव योग से हरदा और होशंगाबाद में मुझे ऐसी संगति सुलभ रही, फल यह हुआ कि मैंने अपने लिए चार सिद्धांत या आदर्श निश्चित किए यथा–(1) वक्त की पाबंदी करना (2) रिश्वत न लेना (3) अपना काम ईमानदारी से करना और (4) ज्ञान वृद्धि वे लिए सतत् प्रयत्न करते रहना। पहले तीन सिद्धांतों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था, पर चौथे के अनुकूल सचेष्ट रहना कठिन था, तथापि सतत् अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई।'' 2

एक साल अजमेर में नौकरी करके, पिता के पास बंबई पहुंचे और तार का काम सीखकर जी.आई.पी. रेलवे में पचास रुपए महीने पर तार बाबू बन गए। बंबई से हरदा, होशंगाबाद स्थानांतरित होने के साथ तार बाबू होते हुए भी ज्ञान लिप्सा के चलते टिकिट, बाबू, स्टेशन मास्टर और प्लेटियर तक का काम उन्होने सीख लिया, फलतः नौकरी में भी तरक्की होती गई साथ ही स्वाध्याय भी जारी रहा। उनके वक्त की पाबंदी के सिद्धांत के चलते उन पर तो कोई आंच नहीं आई, पर उनके द्वारा मातहतों पर अत्याचार होने की आशंका से उन्होंने पद से त्याग पत्र दे दिया। एक समय उनकी पत्नी ने उनका भरपूर सहयोग किया एवं कम खर्च में ही गृहस्थी की बागडोर संभालने का दृढ़ संकल्प लेकर, उन्हें चिंतामुक्त किया।

तब निश्चिंत होकर वे 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन में दत्तचित्त हिंदी भाषा की सेवा में जुट गए। उनके संपादन काल में कोई सिफारिश या लालच उन्हें पथ से विचलित नहीं कर सका इस महान लेखक, भाषाशिक्षक, सुधारक, हिंदी भाषा प्रचारक, संपादक, आलोचक और निबंधकार ने 21 दिसंबर सन् 1938 को राय बरेली में देह त्याग किया।

रचनाएं–द्विवेदी जी ने मौलिक रचना सृजन के साथ-साथ अनेकानेक पूर्व लेखकों एवं कवियों की रचनाओं को हिंदी में सरल, सुबोध सुगम्य रूप से अनुवाद कर, पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर उनके ज्ञान वर्धन का अपूर्व कार्य भी किया। उनकी रचनाएं निम्नांकित हैं।

पद्य–मौलिक–(1) देवी स्तुति शतक (2) कान्य कुब्जावलिव्रतम (3) समाचार पत्र संपादक स्तवः (4) नागरी (5) कान्य कुब्ज अबला-विलाप (6) काव्य मंजूषा (7) सुमन (8) द्विवेदी काव्य माला (9) कविता कलाप।

पद्य–अनूदित–(1) विनय विनोद (2) विहार वाटिका (3) स्नेहमाला (4) श्री महिम्न स्तोत्र (5) गंगा लहरी (6) ऋतु तरंगिणी (7) कुमार संभव सार।

गद्य–मौलिक–(1) हिंदी-शिक्षावली, तृतीय भाग की समालोचना (2) नैषध चरित चर्चा (3) हिंदी कालिदास की समालोचना (4) वैज्ञानिक कोश (5) नाट्य शास्त्र (6) विक्रमांक देव चरित चर्चा (7) हिंदी भाषा की उत्पत्ति (8) संपत्ति शास्त्र (9) कौटिल्य कुठार (10) कालीदास की निरंकुशता (11) वनिता विलाप (12) औद्योगिकी (13) रसज्ञ रंजन (14) कालिदास और उनकी कविता (15) सुकवि संकीर्तन (16) अतीत स्मृति (17) साहित्य संदर्भ (18) अद्‌भुत आलाप (19) महिला गोद (20) वैचित्य चित्रण (21) साहित्यालाप (22) विज्ञ विनोद (23) केविद कीर्तन (24) विदेशी विद्वान (25) प्राचीन चिन्ह (26) चरित चर्या (27) पुरावृत्त (28) दृश्य दर्शन (29) आलोचनांजलि (30) समालोचना-समुच्चय (31) लेखांजलि (32) चरित्र चित्रण (33) संकलन।

गद्य–अनूदित–(1) भामिनी विलास (2)

अमृत लहरी (3) वेकन विचार रत्नावलि (4) शिक्षा (5) स्वाधीनता (6) जल चिकित्सा (7) हिंदी महाभारत (8) रघुवंश (9) वेणी संहार (10) कुमार संभव (11) मेघदूत (12) किरातार्जुनीय (13) प्राचीन पंडित और कवि (14) आख्यायिका सप्तक।

सृजनात्मकता—सन् 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन से द्विवेदी जी ने पूर्ण कालिक साहित्यिक जीवन में पदार्पण किया। इस पत्रिका के माध्यम से द्विवेदी जी ने अपने भाषा संस्कार संबंधी अभियान को सुचारु रूप से संचालित किया एवं नवीन कवियों और लेखकों का पथ प्रदर्शन किया। आपने ज्ञान के विविध क्षेत्र यथा-इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्व चिकित्सा, राजनीति, जीवनी आदि से सामग्री लेकर हिंदी के अभावों की पूर्ति की। आचार्य जी ने देश व्यापक भाषा का सवाल उठाया। साथ में यह भी कहा था ''उर्दू में संस्कृत, फारसी, अरबी और तुर्की के जो शब्द बिगड़े हुए रूप में प्रचलित हैं, उन्हें अशुद्ध ठहराने की शक्ति किसी में नहीं। ठीक यही बात हिंदी भाषा में व्यवहृत विदेशी शब्दों के लिए कही जा सकती है।'' (उर्दू और आजाद)

वे साहित्यिक अंतःक्रिया पर जोर देते हुए कहते हैं—''बोलचाल की हिंदी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार के छंदों में अधिक खुलती है।'' (रसज्ञ रंजन)

उन्होंने स्पष्ट कहा—''संस्कृत को माता कहो या माताभ ही उससे हिंदी भिन्न भाषा है और भिन्न होने के कारण वह उन भाषाओं से अपनी निज की कुछ विशेषता रखती है।''

(कानपुर साहित्य सम्मेलन में भाषण)

द्विवेदी जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे, जो व्यंग्य को प्रधानता देते थे। नगर निगम के भ्रष्टाचार, अंधाधुंध प्रशासन, समाज में फैले अज्ञान, अंधश्रद्धा, छुआछूत आदि सब पर उन्होंने व्यंग्य कसे है। शिक्षा प्रणाली पर, व्यक्ति और समाज के विविध दोषों, विसंगतियों पर उन्होंने जो व्यंग्यों की मार की है उनकी चोटों से अपराधी बच नहीं पाता। व्यंग्य बाण के सही परिणाम के लिए उन्होंने छोटे-छोटे वाक्य, बोल चाल की भाषा तथा मुहावरों का यथायोग्य प्रयोग किया है। इसी से उनके व्यंग्य पैने, पर रोचक बनते थे।

संपादक निबंधकार और आलोचक के रूप में द्विवेदी जी को अधिक ख्याति मिली। इन सभी रसों में उन्होंने अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया। रचनात्मक साहित्य की अपेक्षा भाषा एवं साहित्य के लिए किया गया द्विवेदी जी का सृजनात्मक कार्य अधिक ऐतिहासिक महत्त्व का है उनकी रचनाओं में अनुभव की गहराई व विचार गाम्भीय भले ही न हों, किंतु सुधारक का उत्साह और प्रचारक का समर्पण कूट-कूट कर भरा है। साहित्य साधना के साथ-साथ वे युग निर्माण के प्रति अधिक प्रयत्नशील रहे। उन्होंने सम सामयिक लेखकों को, भाषा के संस्कार के साथ-साथ अभिनव विषयों और हिंदी साहित्य के रीते कोनों का ज्ञान कराकर, उनका निर्देशन किया। अनेक कवियों और गद्यकारों ने द्विवेदी जी से भाषागत प्रेरणा व शिक्षा पाकर अपने रचना कर्म को सशक्त एवं व्यवस्थित रूप दिया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे कर्मयोगी थे, जिन्होंने अपने कठोर परिश्रम और सजग प्रयासों से खड़ी बोली गद्य को शक्ति संपन्न बनाया। साहित्यिक भाषा के रूप सौष्ठव के प्रति सजगता लाने के लिए व्यापक स्तर पर हिंदी लेखकों को शिक्षित किया। साहित्य को विविधता और अभिनवता की ओर मोड़ा। पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त किया। अपने कृतित्व के साथ-साथ द्विवेदी जी का व्यक्तित्व भी महिमामय है। स्वाधीनता प्रेम, कर्तव्य परायणता, न्यायनिष्ठा, आत्म संयम, परहित कातरता और लोक संग्रह जैसे भारतीय सांस्कृतिक सभ्यता के गुण उनके व्यक्तित्व में समाहित होकर उन्हें एक युग निर्माता साहित्यकार के साथ-साथ एक श्रेष्ठमानव के रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं।

सहायक बिंदु–

(1) मेरी जीवन रेखा—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

(2) हिंदी निर्माता—महावीर प्रसाद द्विवेदी एक आचार्य एक निर्माता (पृष्ठ—71 से 74)

(3) हिंदी नव जागरण और संस्कृति, उपनिवेशवाद और हिंदी उर्दू, लेखक, शंभुनाथ, आनंद प्रकाशन पृष्ठ—47

(4) हिंदी के प्रमुख व्यंग्यकार—हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा, डॉ. श्रीमती स्मिता चिपळूणकर अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण—पृष्ठ—46-47

संदर्भ

(1) वासंती—'मेरी जीवन रेखा', लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, म. प्र. राज्य शिक्षा केन्द्र, भोपाल द्वारा मुद्रित (2012 में) पृष्ठ—9-10-11

(2) वासंती—उपरिलिखित।

हिंदी के गौरव तिलक

साहित्य दर्पण है समाज का।
लेखा है इसमें इतिहास का।।
खोला है द्वार द्विवेदी जी ने।
खड़ी बोली के मुक्त हास का।।
जन्म लिया दौलतपुर ग्राम में।
शिक्षा पाई जिला स्कूल में।।
स्वाध्याय के अभिनव प्रयास से।
पाई विजय जीवन संग्राम में।।
लेकर चले चार आदर्शों को।
जीवन के धवल सोपान पर।।
पाबंदी समय की, रिश्वत न लेना।
ईमानदारी और सतत् अभ्यास कर।।
संपादन कर 'सरस्वती' का।
ज्ञान बढ़ाया हिंदी पाठक का।।
आलोचना, समीक्षा, अनुवाद कर।
समृद्ध किया सागर हिंदी का।।
भाषा की संकीर्णता देख।
व्यापक भाषा का मार्ग चुना।।
निर्देशन दिया सम सामयिकों को।
समालोचना का जाल बुना।।
व्यंग्य वाक्यों की मार कर।
समाज की कुरीतियां काटीं।।
पत्रकारिता के माध्यम से।
ज्ञान सुमन की सुरभि बांटी।।
उपासना की हिंदी माता की।
संस्कृत भाषा का मान बढ़ाया।।
मनुज धर्म का परिपालन कर।
युग प्रवर्तक का गौरव पाया।।

श्री गणेश भवन, जीवाजी गंज
लश्कर, ग्वालियर (म. प्र.)

द्विवेदी की कविता में बोध के आयाम

डॉ. अलका चमोला

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 'सरस्वती' के माध्यम से किए गए अपने अप्रतिम योगदान से आचार्य प्रवर महावीर प्रसाद द्विवेदी के अवदान से कौन परिचित नहीं है। हिंदी की अन्यान्य विधाओं में लेखन से आचार्य द्विवेदी ने अपनी सोच व लेखनी से लोहा भरवाया है। गद्य के साथ पद्य में भी द्विवेदी जी अपनी विचारोत्तेजक भावाभिव्यक्ति को निखारने का प्रयास किया, भावप्रवण कवि का मन अपनी युगीन स्थितियों से न केवल द्रवित हुआ वरन् उसकी व्यथा-कथा का लेखा-जोखा उनकी कविता काकथ्य बनकर उनकी यथार्थवादिता व बोध को अनेक आयामों से मुखरित करने में सक्षम हुई है। 1 मार्च, 1897 को 'हिंदोस्थान' में प्रकाशित उनकी रचना 'भारत दुर्भिक्ष' में कव मन की राष्ट्रीय चेतना व अपने देश के प्रति उमड़ते भावों की पराकाष्ठा को देखा जा सकता है–

''हे रघुनाथ! लाज भारत की
आज रहै कि हि भांती।।
अति विकराल काल की
भीषण भेरी सुनी न जाती।
नाती पूत ममता तजि
भए सुजाति कुजाती
हा हा कार सुनत लोगन के
काकी फटै न छाती?''[1]

दुर्भिक्ष का चित्र कवि ने एक सजग कलाकार की भांति इतनी भावप्रवणता से खींचा है कि मानो एक चित्र-बिंब जीवंतता लिए स्वयं संवाद ही करने लगा है। इन शब्दों की मार्मिकता व भावों की बेलाग प्रस्तुति कवि के अंतर्मन की निर्मलता व पारदर्शिता को दर्शाती है। इन पंक्तियों में कवि की सपाटबयानी देखी जा सकती है–

''अतिहि कराल काल के मुख ते
किहि किहि कौन बचै हैं
मृतक देखि पति पुत्र प्राण
सम नारी गरल अचै है।
बैठि उलूक मंदिरन ऊपर
बांधी ध्वजा लचै है
वायस श्वान शृंगाल पैठि
घर हा हा कार मचै है।''[2]

द्विवेदी जी ने अपने हास-परिहास के माध्यम से भी युगीन स्थितियों को बिंबात्मक रूप से अभिव्यक्ति देने का सुखद प्रयास किया है। 'गदर्भ काव्य' में अपने समय की परिस्थितियों के अंकन के साथ-साथ युगबोध को कविता में उतार देने का भरसक प्रयास कवि द्विवेदी ने किया है–

''हरी घास खुरखुरी लगै
अति भूसा लगै करारा है,
दाना भूलि पेट अति पहुंचै,
काटें जस जगजारा है।
लच्छेदार चीथड़े कूड़ा,
जिन्हें बुहारि निहारा है,
सोई, सुनौ सुजान शिरोमणि!
मोहनभोग हमारा है।''[3]

बोध के आयाम आचार्य द्विवेदी की कविता में अपनी उपस्थिति यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई देती है। द्विवेदी जी का भावप्रवण कवि हृदय उन सभी महीन विसंगतियों को अपनी काव्य-कला का विषय बनाने में सक्षम हुआ है जो किंचित भी उन्हें प्रभावित अथवा दुष्प्रभावित कर सका है। हिंदी की दुर्दशा को एक अभिव्यक्ति इस प्रकार देखी जा सकती है–

''हा! हन्त हिंदी सुइ तासु कन्या
सर्व प्रकार व्यवहार धन्या
गली-गली आज मलीन दीना
मारी फिरै है अवलंब हीना।''[4]
–('प्रार्थना' से)

'सुतपंचाशिका' नामक कविता में पुत्र प्राप्ति की चाह को कवि ने निज व्यथा के रूप में अनुभूत कर अभिव्यक्ति देने का सकल प्रयास किया है। कई प्रकार के कर्मकांड, व्रत, तप, मंत्र आदि के उपरांत भी अपने लक्ष्य में सफल न हो पाने का संताप कवि की इन पंक्तियों में स्वतः ही परिलक्षित हो जाता है–

''मैं और बहू व्रत किए अनेक
उपवास न जानहुं धौ कितेक
सुर ध्यान धरो; बहु करो दान
सनमाने भू सुर, बुध महान
बरसों संतान ोपाल मंत्र जप भयो
बंधाए विविध यंत्र
हरिवंश पुराण बार सातऋ उन सुन्यो
न तउ कछु कहु दिखात।''[5]

द्विवेदी जी की कविता में युग बोध के विविध मुखी चित्र यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। 4 दिसंबर, 1899 को 'भारत मित्र' में प्रकाशित उनकी कविता 'स्वप्न' में इसकी अनुगूंज इस प्रकार सुनाई देती है जिसमें युगबोध के साथ-साथ व्यंग्य भी सहज रूप में उपस्थित हो आया है–

''चित्र कला-कौशल्य सिजे बिनु
हस्त लेखनी धारी,

बैठहिं तत्प्रतिरूप उतारन
करि अभिलाषा भारी।
चित्र दुर्दशा देख उड़ैं
सब मेरे प्राण हवास;
उमगैं एक बारही तीनों
क्रोध, शोक, उपहास।''[6]

द्विवेदी जी को काव्य कला की गहरी समझ है। वे कहीं विवरणात्मक शैली में अपने भाव को विस्तारित कर उसमें बोध का प्रत्यारोपण करते हैं जबकि कहीं सहज रूप से अभिव्यक्ति चित्रात्मक रूप में उपस्थित होकर कथ्य का निरूपण करने में स्वतः सक्षम हो जाती है। 'बलीवर्द' नामक कविता में इसको स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। कवि का यथार्थपरक चित्रण इन काव्य पंक्तियों में देखते ही बनता है–

''जुतो तुम्हीं हल में, गाड़ी में,
चरखे तुम्हीं चलाते हो;
बनजारों के गोन हजारों,
तुम्हीं पीठ पर लाते हो।
तिस पर कभी कभी कौड़ी के
तीन-तीन बिक जाते हो;
बधिक-वेध में पड़ जीते ही,
अपनी खाल खिंचाते हो।''[7]

द्विवेदी जी की कविता में एक ओर उर्वरा धरती को अन्नमय बनाने वाले 'बलीवर्द' के पराक्रमी व वैभव शक्ति संपन्न चरित्र का गुणगान है दूसरी ओर उसकी उपस्थिति के बिना जीवन मूल्यों की कल्पना की रिक्तता की प्रतीति कवि को बराबर सालती है। मनुष्य संपूर्ण देश के लिए बैल के अवदान को कवि कदापि भूलने का साहस नहीं जुटा पाता है, इसीलिए कविता के पूर्वार्ध से उत्तरार्ध तक वह उसकी विशेषताओं को लिपिबद्ध करते हुए नहीं अघाते। धरा को अन्नमय बनाने से लेकर त्रिकालदर्शी शिव का सदैव सान्निध्य पाने वाले बैल के लिए कवि के भावुक मन में केवल आदर भाव है वरन् अपनी इस रचना की सृजन भूमि के श्रेय का प्रेय से कवि आह्लादित मन से उसी को देने में भी किंचित संकोच नहीं करते–

''चतुष्पाद-कुलकैरव-हिमकर,
हे वृष! हे अति उपकारी,
बना रहे यह देश तुम्हारी,
कृपा दृष्टि का अधिकारी।
बिना तुम्हारे शंकर का भी,
क्षण भर नहीं गुजारा है,
कारणवश, झटपट, यह हमने,
अल्प लेख लिख मारा है।''[8]

जीवन मूल्यों को बोा की माला में पिरोकर कविता रस से आप्लावित करने में द्विवेदी जी के कवि को आनंदानुभूति होती है। कहीं सत्य को तथ्य रूप में प्रस्तुत करने में उन्हें सुख मिलता है तो कहीं व्यंग्योक्ति के रूप में सम-सामयिकता की अनुभूति की पारदर्शिता अपने कथ्य को अभिव्यक्ति करने में स्वयं समर्थ हो जाती है। भावनाओं की इस अद्‌भुत छननी (छलनी) में कोई भी भाव बिना छने नहीं रह पाता, इसीलिए अभिव्यक्ति के सुख का आनंद कवि को दीर्घजीविता का सुख देकर चमत्कृत ही नहीं वरन आश्वस्त भी करता है। 'विधि विडंबना' नामक कविता में कवि युगबोध में व्याप्त सत्य को अंकित करने में किसी प्रकार भी स्वयं को पीछे नहीं छोड़ते। अपने पास-परिवेश के मूल्यों का बोध कवि अपनी भावप्रवण कविता से इस प्रकार करता है–

''नित्य असत्य बोलने में
जो तनिक नहीं सकुचाते हैं;
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर,
बड़े-बड़े उग आते हैं?
घोर घमंडी पुरुषों की क्यों,
टेढ़ी हुई न लंक?
चिह्न देख जिसमें सब उनको,
पहचानते निशंक।''[9]

गुरु-गंभीर विषयों पर द्विवेदी जी ने पर्याप्त लिखा है लेकिन कभी-कभी सहज लगने वाले विषयों को भी काव्य-सौंदर्य में अलंकृत करने में उन्होंने कोताही नहीं बरती हे। बाल सुलभ कविताओं में भी जीवन बोध के अनेक चित्र, जो उन्हें छू भर जाते, वे उन्हें अपने कला पारखी भावों से विरूपित करने में कदापि संकोच नहीं करते। 'जम्बुकी न्याय' नामक लंबी कविता में इस सहजता का चित्र देखा जा सकता है–

''गंगा जमुना का तालाब
जहां कहीं थोड़ा भी आब
वहीं पहुंच झट जाता हूं मैं
जाकर घात लगाता हूं मैं
पानी यदि कम हो जाता है,
मेरा भी दिल फट जाता है।
और कहीं मैं उड़ जाता हूं,
सजल देख फिर आ जाता हूं।''[10]

द्विवेदी जी के रचना संचयन में कविता का कैनवस बहुत व्यापक है। कभी उन्हें प्रकृति की सुंदरता मोहपाश में बांधती है; कभी प्राकृतिक अवयव जीवन को खूब भाते हैं जबकि कभी पौराणिकता में भी नव भौतिकता के उस पार निकल जाने का दार्शनिक बोध अभिव्यक्त होने के लिए व्यग्र रहता है। 'सरस्वती' के मार्च, 1906 के अंक में प्रकाशित 'गौरी' नामक कविता में इसका चित्रण देखा जा सकता है–

''हर को इसने वरना चाहा,
मोहित उनको करना चाहा।
बहुविधि हाव-भाव कर हारी,
विफल हुई पर इच्छा सारी।।
शिव ने काम भस्म कर डाला,
बहुत निराश हुई तब बाला।
कठिन तपस्या तब विस्तारी,
गौरी गौरी-श्खिर सिधारी।।''[11]

'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' की सूक्तिपरक अभिव्यंजना के अनुरूप ही द्विवेदी जी की कविता में नारी मन के लिए उदात्त प्रेम व आदर के भाव दिखाई देते हैं। नारी सृजन ही नहीं, चैतन्यता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। उसके अभाव में संपूर्ण सुख धूल-धूसरित हो उठता है व उसकी उपस्थिति सुख को चहुं ओर से समृद्धि व संपन्नता से ओत-प्रोत कर देती हे। कवि की पंक्तियों से यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है–

''जिस घर में हम नहीं,

शीघ्र ही बियावान हो जाता है,
कदम हमारे पड़ते ही
वह नंदन वन बन जाता है।
दुख में हम जी-जान होम कर,
साथ तुम्हारा देती हैं।
तुम्हें खिला कर, रूखा-सूखा,
जो बचता सो खा लेती हैं।''[12]
—('कान्यकुब्ज' अबला-विलाप)

द्विवेदी जी ने अपनी कविता में सामाजिक कुरीतियों पर जम कर प्रहार किया है। जो चीजें उन्हें समाज में जहर घोलती प्रतीत हुई हैं, उनके पीछे वह व्याध की तरह पड़ कर उन्हें उनके यथार्थ का दिग्दर्शन कराने की भी क्षमता रखते हैं। उनकी पारखी दृष्टि व भावप्रवण सृष्टि से कोई भी विसंमति लुप्त होने का साहस न जुटा सकी है। वे उन प्रदूषक तत्त्वों से अवश्य लड़ने का साहस जुटाते रहे हैं जो खिलखिलाते संसार को अपनी विकृति से विकृत करने पर तुले हैं। आक्रोश का ऐसा स्वर उनके लिए द्विवेदी जी के काव्य भवन के हर किनारे पर सजग व चौकन्ना होकर उन्हें दुत्कारने के लिए खड़ा मिलेगा। एक बानगी द्रष्टव्य है—

''लड़के के विवाह में कहिए,
मोल-तोल क्यों करते हो?
इस काले कलंक को हा हा!
क्यों अपने सिर धरते हो?
जिनके नहीं शक्ति देने की,
क्यों उनका धन हरते हो?
चढ़कर उच्च सुयश सीढ़ी पर,
क्यों इस भांति उतरते हो?''[13]
—('ठहरौनी')

अपने अस्तित्व व स्वाभिमान की रक्षा द्विवेदी जी के लिए राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। हिंदी, हिंदुत्व व हिंदुस्तानियत से जो वंचित है; जिसमें स्वभाषा प्रेम की ऊर्ध्वमुखी ज्योति प्रदीप्त नहीं होती उन्हें वे निर्मूल कर खदेड़ने में कोताही नहीं बरतते... इसीलिए उन्हें ये इस तरह लताड़ते-फटकारते प्रतीत होते हैं—

''हिंदू होकर भी हिंदी में,
यदि कुछ भी न भक्ति का लेश;
दूर देश की भाषाओं से
यदि इतना है प्रेम विशेष।
इंगलिस्तान, अरब, फारिश,
को तो अब तुम कर दो प्रस्थान,
वहां तुम्हारा काम नहीं कुछ,
छोड़ो मेरा हिंदुस्तान।''[14]

द्विवेदी जी की कविताओं में बोध के अनेक आयाम दृष्टिगत होते हैं, कहीं वे स्वाभिमान के पर्याय हैं तो कहीं राष्ट्र के गौरव का गुणगान उनकी कविताका कंठमाल है। इस प्रकार की भावनाओं की उदात्तता इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

''जै जै प्यारे देश हमारे
तीन लोक में सबसे न्यारे
हिमगिरि मुकुट मनोहर धारे
जै जै सुभग सुवेश
जै जै प्यारे देश हमारे।
हम बुलबुल तू गुल है प्यारा
तू सुम्बुल, तू देश हमारा
हमने तन-मन तुझ पर वारा
तेज पुंज विशेष।
जै जै प्यारे भारत देश।''[15]

द्विवेदी जी ने कविताओं में विविधमुखी प्रयोग किए। उनकी कविताएं जीवन में मूल्यों की स्थापना में जहां एक ओर सिद्ध होती हैं वहीं कवि की दार्शनिक व चिंतनपरक सोच की अभिव्यक्ति भी उनकी अनेक रचनाओं में बोध के नए क्षितिज का संस्पर्श करती दिखाई देती हैं। दोहा शैली में लिखी इन कविताओं में कवि के अध्यात्म-दर्शन प्रेरित मनोवृत्ति का आकलन स्वतः ही हो जाता है। एक बानगी प्रस्तुत है—

''आशा नदी विचित्र इक
सुजल मनोरथ जासु।
तृष्णा ऊर्ध्व तरंग सम,
कहिए अनेकन तासु।।
ग्राहवती जग प्रीति अरु,
तर्क विहंग अनूप।
तरुवर धैर्य, विध्यासिनी,
मोह समर के रूप।।''[16]

अतः स्पष्ट है द्विवेदी जी ने अपनी मूल्योन्मुखी रचनाधर्मिता के माध्यम से न केवल साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि ही की, वरन् उनकी काव्य रचनाओं में जीवन के सरोकारों से जुड़ी अनेक भित्तियों में मानव मूल्यों व बोध के विविध आयामों की वह मजबूत शृंखला अंतर्गुफिंत है जो उनके अनुभवी व चिंतनपरक स्वाध्यायी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराती है। कविता केवल शास्त्र ही नहीं, अपितु युगीन विसंगतियों से दो-चार होने का एक तेज-तर्रार व मजबूत शस्त्र भी है। मूल्य व जीवन बोध के सराबोर ये रचनाएं निरंतर एक स्वाभिमानी व आत्मनिर्भर सभ्य-समाज के निर्माण में सहायक हैं। निश्चित रूप से ये कविताएं द्विवेदी जी की अध्यवसायी अनुशासित, उद्यमी व साधनात्मक जीवन का ही प्रतिफल हैं जिनमें प्रेरणा, स्फूर्ति, चेतना व बोध के अनेक आयाम सम्मिश्रित हैं जिनसे जीवन मूल्यों के संरक्षण की प्रतिपाद्य सुनिश्चित होना तय है। अपने समग्र साहित्य में द्विवेदी जी की काव्य-धारा पाठकों को नई दिशा देने में सर्वथा सक्षम है।

संदर्भ

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली-13, सं. भारत यायावर, पृष्ठ-5
2. वही, पृष्ठ-12
3. वही।
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली, सं. भारत यायावर, पृष्ठ-79
5. वही, पृष्ठ-101
6. वही, पृष्ठ-109
7. वही, पृष्ठ-127
8. वही, पृष्ठ-130
9. वही, पृष्ठ-144
10. वही, पृष्ठ-201
11. वही, पृष्ठ-207
12. वही, पृष्ठ-229
13. वही, पृष्ठ-240
14. वही, पृष्ठ-254
15. वही, पृष्ठ-259
16. वही, पृष्ठ-264

157, गढ़ विहार फेज-1, मोहकामपुर, देहरादून-248005

हिंदी साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत

शिल्पी श्रीवास्तव

''करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।
'महावीर' का जो उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।।''

साकेत की भूमिका में लिखे गए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों को पढ़कर किसी को भी ये प्रतीत हो सकता है कि ये पंक्तियां राम भक्त हनुमान को समर्पित हैं। किंतु गुप्त जी की गुरु शिष्य परंपरा के प्रति आदर दिखाने वाली इन पक्तियों में महावीर पद शिलिष्ट है। कहने का आशय यह है कि तुलसीदास ने यदि महावीर हनुमान जी की कृपा से मानस की रचना की तो गुप्त जी ने साकेत लिखने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कृपा प्राप्त की ।

एक प्रकार से देखें तो बीसवीं शताब्दी के आरंभ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उस क्रांतिकारी बदलाव का जिम्मा संभाला जिसकी बुनियाद पर आधुनिक भारत की नींव रखी जानी थी। आचार्य जी ने हिंदी की शक्ति को भली भांति पहचान लिया था। काव्य में हो रहे लेखन में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल परिर्वतन की आवश्यकता को वे समझ चुके थे । इसलिए उन्होंने पूर्ववर्ती भारतेंदु युग की प्रवृत्तियों में से उन्हीं का चयन किया, जो नवजागरण का संदेश देने में सक्षम थी। देश प्रेम, राष्ट्रवाद, आदर्शवाद, नैतिकता, समाज सुधार जैसे नवजागरण के स्वर द्विवेदी युगीन काव्य में प्रमुख रूप से ध्वनित हुए। द्विवेदी जी ने अपने युग के कवियों को वह राह दिखाई जिससे वे देश की दुर्दशा का चित्रण करने में सफल हुए। वे कविता को समाज से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ने के हिमायती थे। इसीलिए इस काल की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का काव्य चित्रण इस युग के कवियों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, स्वामी श्रद्धानंद समेत कई नेताओं के क्रांति स्वर द्विवेदी युग की कविता में दिखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर तो इतना मुखर था कि उनकी रचित 'भारत भारती' को देशभक्तिपूर्ण कविताओं के कारण ही अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे काव्य में आदर्श और नैतिकता के घनघोर पक्षधर थे। नैतिकता के प्रति उनके अतिशय आग्रह का आलम तो यह था कि महाकवि निराला की लिखी हुई 'जूही की कली' नामक कविता को उन्होंने अपनी पत्रिका 'सरस्वती' में इसलिए प्रकाशित करने से इनकार कर दिया था क्योंकि वह नैतिकता के मापदंडों पर खरी नहीं उतरती थी। स्वामी दयानंद के दिखाए गए आर्य समाजी मार्ग को भी वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणाप्रद मानते थे। इसी के चलते उन्होंने ब्रह्मचर्य, नैतिकता, आदर्शवाद, कर्त्तव्यपरायणता और आत्म गौरव को काव्य में बढ़ावा दिया। यही कारण है कि प्रेम और श्रृंगार विषयक जो काव्य प्रवृत्ति रीति काल में दिखाई देती है, वह द्विवेदी युगीन कविता में रंचमात्र भी नहीं है। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध के 'प्रिय प्रवास' की राधा रीतिकालीन राधा न होकर लोक सेविका और समाज से सरोकार रखने वाली नारी के रूप में अवतरित होती है ।

आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती का संपादन कार्य 1903 ई. में संभाला और 1920 ई. तक वे इस कार्य में अनवरत लगे रहे। इस दीर्घावधि में उन्होंने समूचे हिंदी साहित्य की धारा बदल दी। एक ओर वे एक अध्यापक एवं संपादक के रूप में हिंदी को संशोधित, संवर्धित करते रहे, वहीं दूसरी ओर लेखकों और कवियों को खड़ी बोली में रचनाएं करने को प्रेरित करते रहे। खड़ी बोली को काव्य भाषा और गद्य भाषा बनाने में आने वाली व्याकरणिक बाधाओं को भी उन्होंने बखूबी दूर किया और खड़ी बोली का रूप स्थिर करने में वे सफल रहे। द्विवेदी युग के खड़ी बोली साहित्य का शुरूआती रूप भले ही अरुचिकर लगे और इस युग की प्रारंभिक कविताओं को नीरस एवं तुकबंदी की श्रेणी में रख दिया जाए किंतु द्विवेदी जी की योग्यता ने अंततः इसे एक समर्थ काव्य भाषा के रूप में स्थापित कर ही दिया। कालांतर में छायावादी कवियों ने कविता में खड़ी बोली के माधुर्य और विन्यास की ऐसी छटा विखेरी की ये कविताएं 600 सौ साल पुरानी ब्रज भाषा को टक्कर देने में समर्थ हो गई। मैथिलीशरण गुप्त कृत्य 'भारत भारती' खड़ी बोली का अपने युग में सबसे ज्यादा लोकप्रिय काव्य ग्रंथ बना। यहां तक कि डॉ. नगेंद्र ने इसकी लोकप्रियता को खड़ी बोली की विजय पताका की संज्ञा दे डाली।

द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य को और समृद्ध बनाने के लिए कवियों को भाषा की सरहद लांघने के लिए भी निर्देशित किया। इस युग के कवियों ने मौलिक रचनाओं के साथ कई श्रेष्ठ कृतियां भी अनूदित की। गुप्त जी ने माइकल मधुसूदन दत्त के बांग्ला काव्य 'मेघनाद वध' और 'विरहिणी ब्रजांगना' का काव्यानुवाद किया। वहीं श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' और ट्रेवेलर के 'डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से किया।

द्विवेदी जी वीसवीं सदी के हिंदी साहित्य के शलाका पुरुष रहे। उनकी इतिवृत्तात्मकता के साथ कर्तव्यपरायणता के पाठ ने हिंदी काव्य को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, रूढ़िवादिता से स्वच्छंदता और जड़ता से प्रगति की ओर ले जाने में महती भूमिका का निर्वाह किया, जो कालांतर में हिंदी की अमूल्य निधि का स्रोत बना।

मोहल्ला पूरब टोला, जनपद-बलरामपुर (यू.पी.)

आधुनिक कविता और जागरूक नारी का हिमायती साहित्यकार

कविता मालवीय

आधुनिक हिंदी भाषा के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864-1938) की उपलब्धियों और योगदान का खाका खींचते वक्त कागज का छोटा और स्याही का कम पड़ जाना बड़ी साधारण सी बात होगी। समाज हो या साहित्य दोनों में उन्होंने जो परिवर्तन के बीज बोए थे आज इतने सालों बाद भी हम उनसे उपजे पेड़ों की छाया का फल भोग रहे हैं।

हिंदी के सर्वमान्य समालोचक रामचंद्र शुक्ल भी कह उठे थे—''यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।''

जहां एक साहित्यकार के रूप में खड़ी बोली को साहित्य की भाषा के रूप में स्थापित करने तथा उसे व्याकरण सम्मत बनाने का श्रेय उनको जाता है तो वहीं एक संपादक के रूप में उन्होंने 'सरस्वती' और अपने प्रगतिवादी निबंधों और आलोचनाओं के माध्यम से चिंतन और लेखन के द्वारा हिंदी प्रदेश में पाठकों का हितचिंतन किया। लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित किया।

डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के बारे में लिखा, ''उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिंतन में कहां आगे बढ़े हुए हैं और कहां पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी संपादक ने नहीं की थी। परिणाम यह हुआ कि हिंदी प्रवेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।''

समकालीन लेखकों एवं कवियों को सही मार्गदर्शन प्रदान करके 'सरस्वती' के जुलाई 1901 ई. के अंक में द्विवेदी जी ने लिखा था—''कवियों को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज ही समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकमान्य होता है।'' मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इन्हें अपना गुरु माना।

गुप्त जी का कहना था, ''मेरी उल्टी-सीधी प्रारंभिक रचनाओं का पूर्ण शोधन करके उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढ़ाना द्विवेदी महाराज का ही काम था।'' द्विवेदी जी पर विलियम वड्र्सवर्थ के विचारों की गहरी छाप दिखलाई दी है। विलियम वड्र्सवर्थ आम आदमी को समझ में आने वाली आम आदमी से संबंधित कविताओं की खुली वकालत करते थे। व्यापक चेतना के धनी आचार्य जी का भी मानना था कि जनता की भाषा व साहित्य की भाषा एक ही होनी चाहिए। आज हिंदी का जो राष्ट्रीय स्वरूप उभर कर सामने आया है, उसका श्रेय उनकी हिंदी खड़ी बोली की मुहिम को जाता है।

आज की कविता की भविष्यवाणी उन्होंने बहुत पहले यह कह कर कर दी थी, ''कुछ लोग अकारण ही बोलचाल की कविता की निंदा किया करते हैं। नहीं मालूम उन्होंने कविता का क्या अर्थ समझ रखा है क्या कोमलकांत पदावली का नाम ही कविता है?... कविता यदि सरस और भावमयी है तो उसका अवश्य ही आदर होगा... सरस्वती में वही मसाला जाने देता हूं जिससे मैं पाठकों का लाभ समझता, मैं उनकी रुचि का सदैव ख्याल रखता और यह देखता रहता कि मेरे किसी काम से उनको सत्पथ से विचलित होने का साधन प्राप्त न हो, यह न देखता कि यह शब्द अरबी का है, फारसी का है या तुर्की का। देखता सिर्फ यह कि इस शब्द, वाक्य या लेख का आशय अधिकांश पाठक समझ लेंगे या नहीं।''

हिंदी भाषा के नवरूप प्रणेता महावीर प्रसाद द्विवेदी का उपर्युक्त कथन जोर-जोर से भाषा के निर्बाध, शुद्ध व कलकल प्रवाह के पक्षधर होने की गवाही देता है जो कल हो या आज साहित्य की मूलभूत आवश्यकता है।

कहते हैं कि साहित्य में हो रही हरकत भविष्य की शिरकत जताती है और खरा साहित्य वही कहलाता है जिसमें सार्वजनिक जीवन सांस लेता हो और खरा साहित्यकार वही है जिसकी आवाज में समाज की ज्वलंत समस्याओं की गूंज हो।

हिंदी के पुरोधा महावीर जी हिंदी कविता के नवीन व व्यवहारिक रूप की रूपरेखा के प्रति जितने प्रयासरत थे उनके निबंधों में स्त्री की सामाजिक दशा पर जागृति का घोष उतने ही जोर-शोर से सुना जा सकता है।

'परिवर्तन स्वयं से शुरू होता है' सिद्धांत को मानते हुए हिंदी साहित्य के उद्भट्ट विद्वान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बीसवीं सदी के प्रारंभ में सरस्वती और लक्ष्मी की मूर्तियों के बीच अपनी पत्नी की मूर्ति स्थापित करके नारी को शक्ति का पर्याय माना और छूआछूत पर प्रहार करते हुए अपने गांव दौलतपुर (रायबरेली) में एक अनुसूचित जाति की महिला को सांप के काटने पर उसके पैर के अंगूठे में अपना जनेऊ बांधने में संकोच नहीं किया। निस्संदेह आज भारतीय समाज में स्त्रियों के मौजूदा अधिकारों की चमकदार इबारत में द्विवेदी जैसे जागरणशील साहित्यकारों की कलम के स्वेद बिंदुओं का भी योगदान होगा। महिला विमर्श शुरू करने वाले आचार्य जी ही थे जो सरस्वती पत्रिका में 'कामिनी कौतूहल' कॉलम में जागरूक महिलाआं की कथाएं छापते थे।

उनकी पत्रिका सरस्वती के कई संपादकीय व निबंध उनके समाजवादी होने की घोषणा करते हैं। तभी आज से 94 साल पहले लिखे, 'स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार' निबंध में वे सूक्ष्म परंतु मूलभूत समस्या का जिक्र करना नहीं भूले, ''भारतवर्ष की शिक्षित स्त्रियों की अधिकार हानि का एक उदाहरण यह है कि हमारे देश में स्त्रियां वकालत नहीं कर सकती, यद्यपि कई महिलाएं ऐसी हैं जिन्होंने कानून की परीक्षाएं पास की हैं।''

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भी जब महिलाओं को पढ़ने और न पढ़ने देने की संकुचित विचारधाराएं जोर मार रही थीं तब उनको खरी-खोटी सुनाते हुए अपने निबंध 'पढ़े लिखों का पांडित्य' में वे व्यंग्य करते हैं—

''बौद्ध ग्रंथ त्रिपिटिक के अंतर्गत थेरीगाथा में जिन सैकड़ों स्त्रियों की पद्य रचना उद्धृत हैं वे क्या अपढ़ थीं?... अत्रि की पत्नी धर्म पर व्याख्यान देते समय घंटो पांडित्य प्रकट करें, गार्गी बड़े-बड़े ब्रह्मवादियों को हरा दे, मंडन मिश्र की सहचारिणी शंकराचार्य के छक्के छुड़ा दे, गजब...। ये सब पापी पढ़ने का अपराध है? न वे पढ़तीं, न पूजनीय पुरुषों का मुकाबला करती... समझे... एम.ए., बी.ए., शास्त्री और आचार्य होकर पुरुष जो स्त्रियों पर हंटर फटकारते हैं और डंडों से उनकी खबर लेते हैं वह सारा दुराचार पुरुषों की पढ़ाई का सुफल है। स्त्रियों के लिए पढ़ना कालकूट और पुरुषों के लिए पीयूष का घूंट। ऐसी ही दलीलों और दृष्टांतों के आधार पर कुछ लोग स्त्रियों को अपढ़ रख कर भारतवर्ष का गौरव बढ़ाना चाहते हैं।

आज की आधुनिक व आत्मनिर्भर नारी की कल्पना इस दूरदर्शी ने मानो सालों पहले ही कर ली थी और अपनी राय के रंग भर के भारत के सामने 'रोजगारी स्त्रियां' निबंध में यह कह कर परोसी, ''हमारे देश की तरह इंगलैंड की स्त्रियां निरुद्यम पुरुषों पर आश्रित रहना पसंद नहीं करती, वे देश-विदेश में अनेक प्रकार के रोजगार करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं... जिस देश की स्त्रियां आत्मबल की महिमा को इस कदर समझती हैं वह देश यदि उन्नति के शिखर पर विराजमान हो तो आश्चर्य ही क्या है?'' यहां तक कि उस समय जब यह मान्यता जड़ पकड़ी हुई थी कि वेदों को पढ़ने का अधिकार महिलाओं को नहीं है, उस समय नवजागरण के अवधूत आचार्य द्विवेदी जी ने बेबाक शब्दों में वेदों की रचना में स्त्रियों के योगदान का पक्ष लेने वाले वर्ग के विचारों को लोगों के सामने लाकर अपना समर्थन उजागर किया।

कहना न होगा कि हिंदी खड़ी बोली के शिल्पी महावीर जी जब अपनी साहित्य रचना के माध्यम से कविता की भाषा को परिष्कृत कर रहे थे उसके साथ ही भारतीय नारी के सामाजिक जीवन का परिमार्जन कार्य भी भली भांति चल रहा था। हिंदी भाषा को सामाजिक बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य द्विवेदी जी ने ही किया। परंपरा और आधुनिकता के बीच संबंध स्थापित करने वाले द्विवेदी जी जैसा बुनियादी समस्याओं को समझने वाला साहित्यिक जगत में दूसरा कोई व्यक्ति नहीं हुआ।

हिंदी अध्यापक,
भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, पैरामीबो, सूरीनाम

संकल्पों के गीत पत्र

सुविधा शर्मा

साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्कारों के साथ जीवन की यात्रा करने वाली इंदिरा मोहन लगभग पिछले तीन दशक से कविता और गीत की साधना में अनवरत लगी हुई हैं। अब तक उनकी अनेक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'पेड़ घनी परछाईयां', 'पीछे खड़ी सुहानी भोर' तथा 'कहां है कैलास' बहुचर्चित और प्रशंसित रही हैं। प्रचार-प्रसार के सभी माध्यमों से अपनी कविताओं और गीतों को जनमानस तक प्रसारित करने वाली इंदिरा मोहन अनेक साहित्यिक-सामाजिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़ी हैं।

इंदिरा मोहन के प्रस्तुत गीत-संग्रह 'धरती रहती नहीं उदास' में संकलित उनके गीत उनकी अपनी धरती पर हैं, जिसके पास अपनी जमीन होती है, आकाश भी उसी का होता है। उन्होंने उसे समाज और उसके परिवेश में ही पोषित किया है। लोकाचार, रीति-रिवाज, आस-पास से जुड़ना स्वाभाविक होता रहा है। काव्य के अंतरंग को पहचान कर अपनी बात कहने का प्रयास इंदिरा मोहन ने किया है। इसलिए यहां राग और बोध दोनों रच-बस गए हैं, आत्म-मुग्धता उनमें नहीं है। हां, आभिजात्य गौरव बोध है और सहज ऐंद्रिक अनुभवों की सघनता का सर्जनात्मक उत्सव पर्व भी है। वे तमाम अवरोधों को हटा कर बहना चाहती हैं रुकना नहीं। रुकना जीवन का चिह्न है भी नहीं। गति ही जीवन है, चलना ही परिवर्तन का नियामक है। अगर यह गति ऊंचाइयों पर बढ़ती है तो अपने नीचे की धरती को अनदेखा नहीं छोड़ती।

इंदिरा मोहन ने जीवन को ऊपर से ओढ़ने के बजाय उसके अंदर की परतों को निकट से जाना और जिया है। वे जो जीवन जी रही हैं उस जीवन की गंध उनके रोम-रोम में व्याप्त है, वही जीवन उनकी संवेदना का अंग बन चुका है, उसे ही 'पेड़ घनी परछाइयां' और 'पीछे खड़ी सुहानी भोर' गीत संकलनों के बाद वर्तमान गीत संग्रह 'धरती रहती नहीं उदास' में ढालने का इंदिरा मोहन ने प्रयास किया है। इस संग्रह के गीतों में कल्पना का यथार्थ भी है और यथार्थ की वेदना भी। इन प्रतीतियों में वर्तमान की आत्मकथा भी है और भविष्य का निबंध भी।

आज के समाज की विद्रूपताओं, बाजारीकरण, संबंधों की निःस्संगता का उन्होंने बड़ी खूबी से चित्रण किया है। आमतौर पर होता यह है कि जब हम आधुनिक जीवन की गद्यात्मकता का निरूपण करते हैं, तब कविता, चाहे वह गीत ही क्यों न हो, गद्यात्मक हो जाती है। बिंब कहीं खो जाते हैं, संकेतों की भाषा लड़खड़ा जाती है। परंतु यह दुर्घटना इंदिरा मोहन के साथ घटित नहीं हुई है। उनके समसामयिकता से जुड़े गीत भी सूक्ष्म बिंब विधान से कटे नहीं। यह उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इंदिरा मोहन के गीत भीड़ भरे कवि-सम्मेलनों

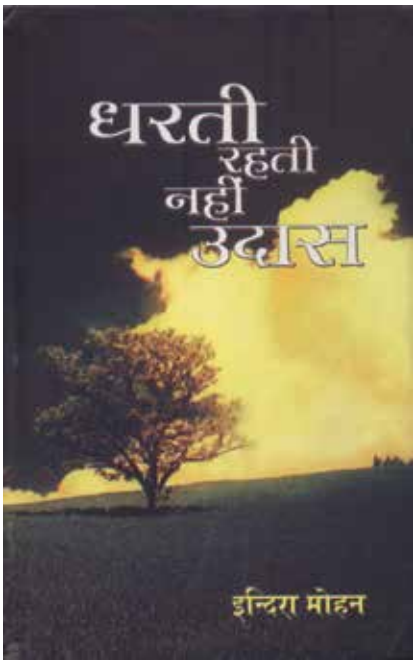

पुस्तक : धरती रहती नहीं उदास

लेखिका : इंदिरा मोहन

प्रकाशक : अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद

मूल्य : 160 रुपए

में वाह-वाही बटोरने के लिए नहीं रचे गए। वे तो कहीं आत्म-निवेदन और कहीं सामाजिक संवेदन की प्रेरणा की स्वाभाविक परिणति हैं। गीत-प्रेमियों के लिए यह संकलन एक अमूल्य निधि है।

शाश्वत भावों का सुंदर समावेश

डॉ. विवेक गौतम

सविता 'असीम' से मेरा परिचय हिंदी अकादमी की सन् 2003 में हुई एक बैठक में हुआ था और तब तक उनकी एक काव्य कृति 'रेशमी धूप' प्रकाशित हो चुकी थी। आज उनकी नई किताब 'मैं इंतजार में हूं' ग़ज़ल संग्रह के रूप में मेरे हाथों में हैं। सविता 'असीम' की रचनाएं नारी जीवन के विमर्श, हर्ष, अपेक्षाओं और मनोइच्छा के समीप ही रहना चाहती हैं। इसकी अनुभूति उन्हें जितनी तीव्रता से होती है, उतनी ही तीव्रता से उनके भाव भी शब्दों में प्रवाहित होते हैं, जिनकी सहजता देखते ही बनती है। उनकी ग़ज़लों में नारी सुलभ प्रेम, विह्वलता, तरलता, करुणा, दया सभी शाश्वत भावों का सुंदर समावेश है। उनकी नजर जीवन के अनेक पहलुओं व स्थितियों-परिस्थितियों पर जाती है, लेकिन उनमें एक सकारात्मक भाव ही उनकी ग़ज़ल की विषय-वस्तु अथवा केंद्र होता है। इसीलिए मुझे लगता है सविता 'असीम' वास्तव में संभावनाओं से पूर्ण कवयित्री हैं। उनकी कविता महज कविताई के लिए नहीं है। उनकी ग़ज़लों में नारी-विमर्श की जागरूक चेतना की अनुभूतियों पर आधारित मनोभावों ने शब्दों के परिधान धारण किए हैं। भाषा के संबंध में सविता 'असीम' की न कोई घोषित नीति है न कोई आग्रह या दुराग्रह। अधिकांश हिंदी-उर्दू ग़ज़लकारों की तरह सविता ने भी आमफ़हम बोल-चाल के प्रचलित शब्दों के प्रयोग का लाभ उठाया है। सविता की भाषा भी नानक, कबीर, दादू की भाषा और बोली के प्रयोग की तरह ही नजर आती है, जो एक शुभ संकेत है। सविता 'असीम' की ग़ज़लों की एक खूबी उनके शब्दों और विषयों का चयन भी है। उन्होंने अपने लेखन में शब्दों को गंगा-जमुनी तहजीब के परिचायकों के रूप में प्रयुक्त किया है, जो इस देश की मिट्टी की देन और पहचान हैं। हिंदी और उर्दू के तमाम शब्दों का एक साथ प्रयोग करना सविता 'असीम' के शे'र कहने के कैनवास को और बढ़ा देता है तथा शे'रों में एक अलग सी जादुई कशिश पैदा हो जाती है। 'मैं इंतजार में हूं' की ग़ज़लों को पढ़ते हुए कहीं-कहीं ऐसा भी महसूस होता है कि वे बहुत कुछ कहना तो चाहती हैं लेकिन इशारों में ही अपनी बात कह कर समाप्त कर देती हैं और यही ग़ज़ल कहने का अंदाज है और उसकी खूबी भी। वरना 'अखबार और अश्आ'र' में क्या अंतर रह जाएगा? खुशी की बात है कि नए सामाजिक परिवेश में सविता 'असीम' की सोच और कलम बदलाव की लहर की तरफ संकेत करती है। जिसमें रचनाकार को समय, समाज और वातावरण के बीच रहना भी है और उस पर शायरी भी करनी है।

अंत में मैं कहना चाहूंगा हूं कि 'मैं इंतजार में हूं' ग़ज़ल संग्रह में हिंदी-उर्दू परिवेश की रचनाएं हैं।, जिनमें भाषाई सभ्यता को जोड़ने का प्रयास किया गया है। ये रचनाएं एक

पुस्तक : मैं इंतजार में हूं

लेखिका : सविता 'असीम'

प्रकाशक : अमृत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32

मूल्य : 150 रुपए

ऐसे माहौल की मुंतज़िर हैं, जिसमें उनकी इच्छाओं के मुताबिक उनकी दुनिया हो। सब को हौसला देने वाली ये रचनाएं जिंदगी से रू ब रू होने की दाद चाहती हैं।

नई उम्मीद जगाती कविताएं

अश्विनी कुमार

राजस्थान की रेतीली धरती के नीचे पानी की कमी नहीं है। बस, जरूरत है तो इसे नीचे से ऊपर लाने के भगीरथ प्रयास की। इस बार यह प्रयास किया है युवा कवयित्री कविता भटनागर ने। अपनी कविताओं के माध्यम से कविता इस प्रयास में काफी हद तक सफल भी रही हैं। एक तो राजस्थान, दूसरे प्रशासनिक सेवा जैसा शुष्क विभाग, जहां पानी रूपी संवेदनाओं को तलाशने के लिए दूर-दूर तक भटकना पड़ता है। ऐसे वातावरण में रहकर भी कविता ने अपनी कविताओं में मौजूद तरलता से इस कमी को न केवल पूरा किया है, बल्कि एक चुनौती भी पेश की है। अपनी इस कोशिश के लिए वे बधाई के पात्र हैं।

'मैट्रो : एक मृगतृष्णा' दरअसल मैट्रो संस्कृति का आईना है। इस संस्कृति ने न केवल महानगरों तथा शहरों को बल्कि कस्बों और गांवों को भी अपनी चपेट में ले लिया है। इसी संस्कृति का परिणाम है परस्पर संबंधों में अविश्वास की भावना और अकेलापन। व्यक्ति हम से ज्यादा मैं को अहमियत देने लगा है। आत्मकेंद्रित व्यक्ति समाज से अधिक स्वयं को केंद्र में रखकर हर काम करता है। अकेलेपन के इस अहसास को कवयित्री की इन पंक्तियों में सहज ही महसूस किया जा सकता है–

''हम प्यार कहां करते हैं
हम सिर्फ सोचते हैं कि हम प्यार करते हैं
और फिर जब रिश्तों के नकाब गिरते हैं
प्यार के कड़वे रंग उभरते हैं।''
–(हकीकत-1)

या फिर

''झूठ, मक्कारी और स्वार्थ
से भरी है दुनिया
सच पूछो तो
शून्य से बदतर है दुनिया
शून्य तो है खाली–
पर झूठ, मक्कारी और
स्वार्थ से भरी है दुनिया।'' –(हकीकत-2)

दरअसल इस समाज में रहने और जीने के बावजूद कवयित्री इन परिस्थितियों से दुखी होती है। समाज का यह चलन उसे रास नहीं आता और उसके भीतर की बेचैनी इन शब्दों के माध्यम से रिसने लगती है। यही नहीं जब परस्पर इतना अविश्वास हो तो एक-दूसरे पर भरोसा करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन यह भी मानवीय स्वभाव है कि तमाम विसंगतियों के बावजूद इनसान एक-दूसरे पर विश्वास करना नहीं छोड़ता। इनसानियत और संबंधों के प्रति अपनी इन तमाम आस्था के बावजूद जब वह छला जाता है तो उसका टूटना स्वाभाविक है। भरोसा टूटने की इस पीड़ा को इन पंक्तियों में महसूस किया जा सकता है–

''तुमने तोड़ा है
भरोसा मेरा
××× ××× ×××
ढका है मेरी आस का झरोखा
तुम्हारे मिथ्या वादों से
सरलता से दिया था
तुम्हारे हाथ में हाथ
पर विडंबना में
डूब गया है अब संसार।'' –(भरोसा)

टूटते संबंधों और भरोसे का यह मायाजाल किसी पहेली से कम नहीं है। और कवयित्री इस पहेली को सुलझाने में बड़ी शिद्दत से लगी हुई हैं। लेकिन अपनी तमाम कोशिशों के बाद भी उनके हाथ कोई सिरा नहीं लगता–

''कुछ सवलों के जवाब नहीं होते
कुछ जवाब
खुद एक सवाल होते हैं
गर यह पहेली ही समझ ली होती
तो फिर
जिंदगी में अधूरे ख्वाब न होते।''–(पहेली)

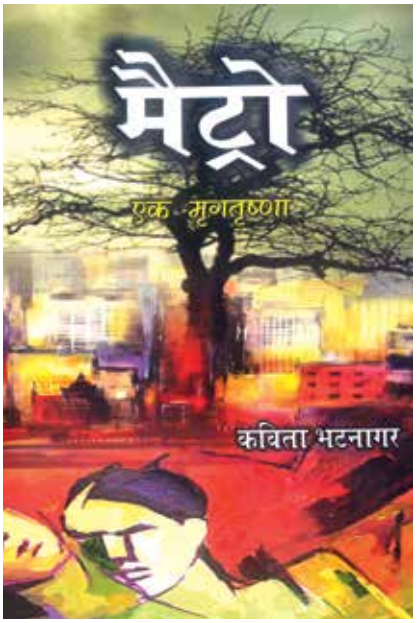

पुस्तक : मैट्रो : एक मृगतृष्णा
कवयित्री : कविता भटनागर
प्रकाशक : पारीक पब्लिकेशंस, जयपुर
मूल्य : 450 रुपए

कुल मिलाकर कहा जाए तो इस संग्रह की कविताओं में मुख्य रूप से प्रेम का स्वर है। लेकिन इन कविताओं में प्रेम दैहिक स्तर पर न होकर आत्मिक स्तर पर है। यहां इस संग्रह की कविताओं में प्रेम कई रूपों में कई बार आता है लेकिन हर बार उसका अर्थ सिर्फ और सिर्फ प्रेम होता है। एक बात और कि इन प्रेम कविताओं में किसी तरह की मिलावट नहीं है और आज के इस मिलावटी दौर में यह एक बड़ी बात है। इसके लिए कवयित्री दाद की हकदार तो बनती ही हैं।

डॉ. एम.एस.स्वामीनाथन 28वें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार से सम्मानित

के. सरीन

पिछले दिनों 28वें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार समारोह का आयोजन नई दिल्ली स्थित जवाहर भवन के सभागार में किया गया। वर्ष 2012 के लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन को उनके द्वारा देश भर में राष्ट्रीय एकता के उन्नयन एवं परिरक्षण हेतु किए गए अतुलनीय योगदान के लिए दिया गया।

समारोह की अध्यक्षता सोनिया गांधी ने की। इस अवसर पर विभिन्न विद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा भजन एवं राष्ट्रगान प्रस्तुत किया गया। अध्यक्ष द्वारा स्वागत भाषण के पश्चात् प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भाषण दिया। प्रशस्ति पत्र पठन के बाद अध्यक्ष द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया एवं स्वीकृति भाषण दिया गया। धन्यवाद प्रस्ताव के पश्चात् राष्ट्रगान प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर मोतीलाल वोरा भी उपस्थित थे।

पुरस्कार प्राप्ति के अवसर पर डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने कहा कि देश की एकता के लिए कृषि एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। मानसून एवं बाजार ही हमारे किसानों का भाग्य निर्धारित करते हैं और हमें उनकी सहायता के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने हेतु नेशनल कमीशन ऑन फार्मर्स द्वारा एक रिपोर्ट सन् 2004-06 में प्रस्तुत की गई है।

जब भारत 10 करोड़ टन अनाज आयात करता था तब इंदिरा गांधी ने योजनानुसार उतना ही अनाज भारत के कोष में रख दिया। उन्होंने कहा खाद्य सुरक्षा द्वारा भारत एक स्वतंत्र विदेश नीति प्राप्त कर सकता है।

डॉ. स्वामीनाथन ने 'वसुधैव कुटुंबकम्' का आधार अपनाने पर जोर दिया। कृषि की गुणवत्ता बढ़ाने एवं जनमानस को वैज्ञानिक पद्धति से अवगत कराने हेतु भारत सरकार के डिपार्टमेंट ऑफ बायोटैक्नोलॉजी द्वारा प्रत्येक विद्यालयों में डीएनए क्लबों की शुरुआत करने की सहमति दी ताकि हमारे विद्यार्थी प्राथमिक स्तर पर बॉयो-डायवर्सिटी को समझ सकें।

45वां जवाहरलाल नेहरू स्मृति व्याख्यान

के. सरीन

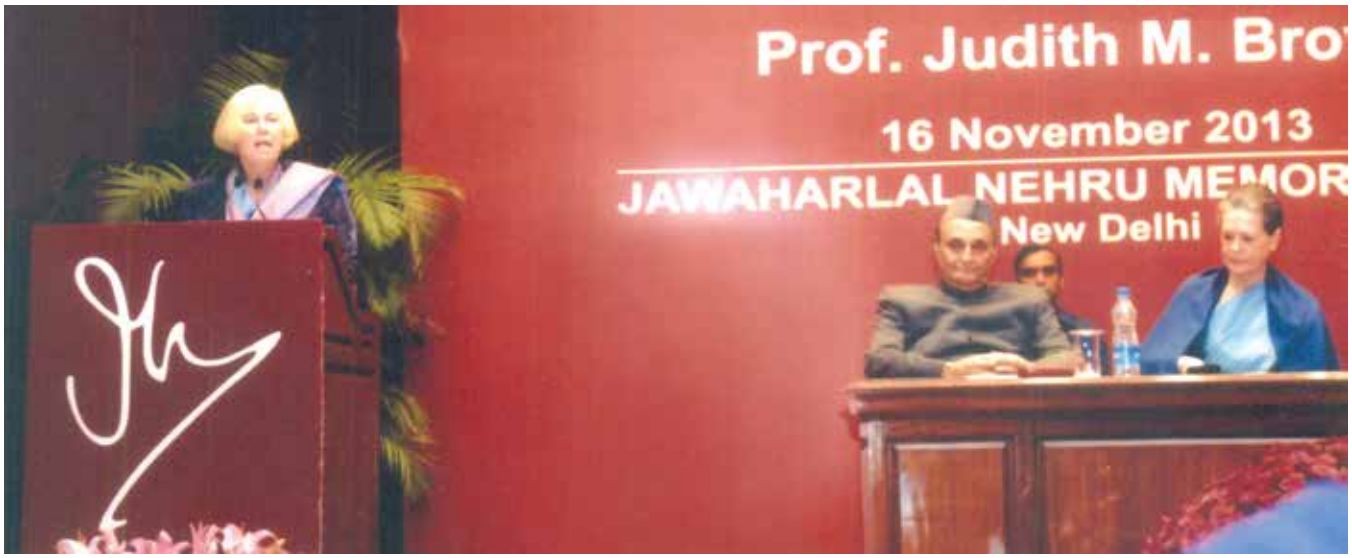

जवाहरलाल नेहरू मैमोरियल फंड द्वारा 45वें जवाहरलाल नेहरू स्मृति व्याख्यान का आयोजन जवाहर भवन, दिल्ली में आयोजित किया गया। समारोह की मुख्य वक्ता प्रो. जुदित एम. ब्राउन, पूर्व प्रवक्ता (इतिहास), इतिहास विभाग गिरटन कॉलेज एवं मानचेस्टर यूनिवर्सिटी थीं। व्याख्यान का मुख्य विषय 'फ्रॉम प्रिजन टू तीन मूर्ति : द मेकिंग ऑफ ए प्राइम मिनिस्टर' था।

अपने व्याख्यान में प्रो. ब्राउन ने जवाहरलाल नेहरू से निकट संबंध के बारे में बताया तथा श्री नेहरू द्वारा की गई राजनीतिक यात्रा का वर्णन किया। व्याख्यान के शीर्षक के अनुसार नेहरू जी का संपूर्ण जीवन वृत्त दिया गया कि किस प्रकार नेहरू जी ने जेल जाकर अपनी राजनीतिक यात्रा की शुरुआत की और तीन मूर्ति भवन से उनके प्रधानमंत्री कार्यालय तक पहुंचने व स्वतंत्र भारत की उन्नति व विकास के लिए किए गए कार्यों पर प्रकाश डाला। नेहरू जी की दूरदर्शिता व देश के प्रति उनके समर्पण व विश्व एकता हेतु पंचशील सिद्धांत का अनुकरण, देश की उन्नति के लिए औद्योगिक एवं कृषि के विकास के लिए नेहरू द्वारा तैयार किए गए अनेक मॉडलों व पेपरों का ब्यौरा भी व्याख्यान में दिया गया। विश्व के साथ मिलकर चलने की नेहरू जी की सोच व उसे साकार करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पर भी व्याख्यान में प्रकाश डाला गया।

अपने शोध अध्ययनों में प्रो. ब्राउन ने भारत के विषय में अनेक पुस्तकें और आलेख लिखे हैं। अपने व्याख्यान के समापन में उन्होंने नेहरू जी को एक दूरदर्शी नेता बताते हुए कहा—''नेहरू जी विश्व व देश के एक ऐसे दूरदर्शी नेता थे, जो वैश्विक परिवर्तन की दिशा को जानते थे एवं आशा करते थे की राजनीतिक परिदृश्य में वे किस प्रकार देश व विश्व की उन्नति कर सकते हैं। ''

समारोह में सोनिया गांधी, ट्रस्टी, जवाहरलाल नेहरू मैमोरियल फंड उपस्थित थीं। समारोह की अध्यक्षता डॉ. कर्ण सिंह, उप-सभापति, जवाहरलाल नेहरू मैमोरियल फंड ने की। इस अवसर पर सुमन दूबे, सचिव, जवाहरलाल नेहरू मैमोरियल फंड एवं अन्य गणमान्य अतिथि एवं सांसद उपस्थित थे।

आराध्या सम्मान समारोह का आयोजन

अश्विनी कुमार

पिछले दिनों अक्स चंदना अकादमी के तत्त्वावधान में आराध्या सम्मान समारोह-2013 का आयोजन किया गया। समारोह रवींद्र मंडप, भुवनेश्वर (उड़ीसा) में आयोजित किया गया। इस अवसर पर संस्था की अध्यक्ष प्रसिद्ध ओडिसी डांसर डॉ. चंदना राउल ने बताया कि यह सम्मान ऐसी प्रमुख हस्तियों को प्रदान किया जाता है, जिन्होंने महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। यही नहीं उन्होंने कहा कि अगर हम स्त्री शक्ति का यथोचित सम्मान नहीं करेंगे तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पाएंगे। एक स्त्री ही है, जो घर और बाहर दोनों जगहों पर तालमेल बिठाते हुए समाज को न केवल शक्ति प्रदान करती है, बल्कि सही राह भी दिखाती है। इसलिए हमारा यह कर्तत्व बनता है कि हम उनके द्वारा किए गए अभूतपूर्व कार्यों का सम्मान कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करें। इसी दिशा में यह सम्मान समारोह हमारा विनम्र प्रयास है। इस वर्ष यह सम्मान पद्मश्री तुलसी मुंडा (सामाजिक कार्यकर्ती), सुप्रवा रॉय (लेखन) और प्रो. मालबिका रॉय, श्यामामनी देवी (उड़िया संगीत) को प्रदान किया गया।

उद्‌भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह

डॉ. विवेक गौतम

विगत दिनों दिल्ली स्थित भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के आजाद भवन सभागार में 'उद्‌भव' तथा 'कवितायन' सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्था द्वारा साहित्य, कला, संस्कृति, शिक्षा, पत्रकारिता, कानून तथा चिकित्सा आदि विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति में योगदान देने वाले प्रखर व्यक्तित्वों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु 'उद्‌भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह 2013' का भव्य आयोजन किया गया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए सुप्रसिद्ध विचारक, चिंतक एवं वरिष्ठ पत्रकार पद्‌मश्री आलोक मेहता ने कहा कि यह समारोह कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण है। देश के विभिन्न भागों से पधारे व्यक्तित्वों की सफलताओं को उत्सव रूप में मनाना एक अच्छी परंपरा है, इससे समाज में सकारात्मक तथा रचनात्मक ऊर्जा का संचार होता है। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ राजनीतिज्ञ एवं समाजसेवी हारून युसूफ ने की। समारोह में विशिष्ट अतिथि थे कवि-पत्रकार बी.एल. गौड़, सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के उपाध्यक्ष वरिष्ठ अधिवक्ता वी. शेखर, सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् अशोक पांडेय, बालभवन पब्लिक स्कूल मयूर विहार फेज-2 के प्राचार्य बी.बी. गुप्ता तथा 'सजग' समाचार के संपादक शिव सचदेवा। सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कवि एवं उद्‌भव संस्था के महासचिव डॉ. विवेक गौतम के संयोजन-संचालन में संपन्न हुए इस आयोजन में आए हुए सभी अतिथियों का स्वागत आंचलिक कथाकार डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल ने किया।

समारोह में उद्‌भव शिखर सम्मान से सम्मानित हुए व्यक्तित्व थे साइबर लॉ के वरिष्ठ अधिवक्ता पवन दुग्गल, दूरदर्शन के सहायक केंद्र निदेशक एस.के. त्रिपाठी, महादेव जगन्नाथ जानकर (मुंबई), डॉ. एल. तोमर (अस्थि रोग विशेषज्ञ) तथा आबा साहेब बाबा साहेब कोकाटे (महाराष्ट्र)। इस अवसर पर उद्‌भव विशिष्ट सम्मान मो. आसेफोद्दीन खतीबजी (महाराष्ट्र), अशोज जाजोरिया (उप-संपादक गगनांचल), आचार्य यादकुमार वर्मा (दिल्ली), अल्ताफ अहमद (चेन्नई), जगदीश राज मल्होत्रा (दिल्ली) तथा डॉ. कार्तिकेय भार्गव (गुड़गांव)।

समारोह में उद्‌भव मान सेवा सम्मान से जिन्हें अलंकृत किया गया उनमें शांति प्रसाद जैन (दिल्ली), राजन पाराशर (हरियाणा), डॉ. करुणा पांडेय (बरेली), राम प्रसाद बाबू राव घोडके (महाराष्ट्र), डॉ. भवानी सिंह (शिमला) , शिवी रस्तोगी (दिल्ली), हरीश वत्स (दिल्ली), जी.एस. कपूर (दिल्ली), शिवचरण सिंह 'पिपिल' (उत्तर प्रदेश), अमित शर्मा (दिल्ली) और कुणाल गुप्ता (दिल्ली) थे। धन्यवाद ज्ञापन पं. हरिराम द्विवेदी ने किया।

इस अवसर पर गणमान्य लोगों में साहित्यकार-कलाकार संगीता गुप्ता, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, कवितायन के महासचिव अधिवक्ता चंद्रशेखर आश्री, प्रो. लल्लन प्रसाद, राकेश पांडेय, ममता किरण, डॉ. बी.एन. सिंह, पत्रकार एस.के. शर्मा, सी.पी.एस. वर्मा, आभा चौधरी, रवि कुमार शर्मा, शोभना मित्तल, आलोक उनियाल, दिनेश सोनी मंजर, अनंत प्रचेता, एस.के. दीक्षित, वी.के. शर्मा, श्रीप्रकाश आचार्य, सी.ए. अनिल गुप्ता तथा विविध गुप्ता प्रमुख थे।

21वां अ.भा. हिंदी साहित्य सम्मेलन संपन्न

विकास मिश्र

(मंचासीन (बाएं से) आचार्य भगवत दुबे, केंद्रीय कोयला मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रो. के.एल. वर्मा तथा आर.बी.एल. गोस्वामी। संबोधित करते हुए संयोजक उमाशंकर मिश्र तथा साथ में हैं पूर्व सांसद सुरेंद्र गोयल)

विगत दिनों गाजियाबाद में आयोजित '21वें अ.भा. हिंदी साहित्य सम्मेलन' का आयोजन हुआ। सम्मेलन के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. भीष्मनारायण सिंह थे। सम्मेलन में डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल', डॉ. नरेश कुमार, डॉ. भगवान सिंह भास्कर, डॉ. हीरालाल सहनी, माहे तिलत सिद्दीकी, रमेश कटारिया पारस, एन.एल. गोसाईं, महापौर तेलूराम कांबोज, राजकुमार सचान 'होरी', डॉ. हरिसिंह पाल, उमाशंकर मिश्र सहित अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए।

सम्मेलन में सांस्कृतिक संध्या और सम्मान समारोह का भी आयोजन किया गया। सम्मेलन का संचालन मुख्य संयोजक उमाशंकर मिश्र ने किया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.....
दिनांक.....
रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (प्रकाशन)
कमरा संख्या-34
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379158, 23370229

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

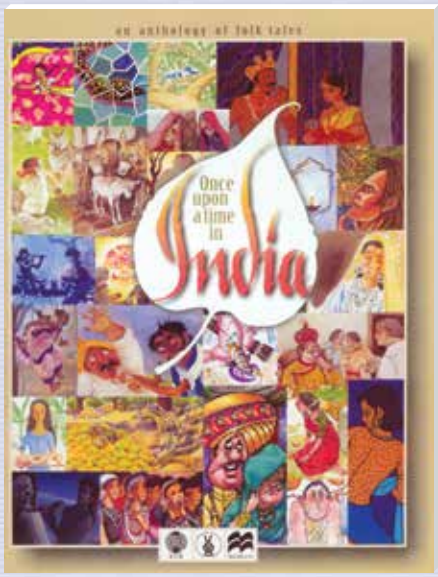
an anthology of folk tales
Once upon a time in India

ध्वनिवक्रोक्तिपद्धत्योः
तारतम्यसमीक्षा
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

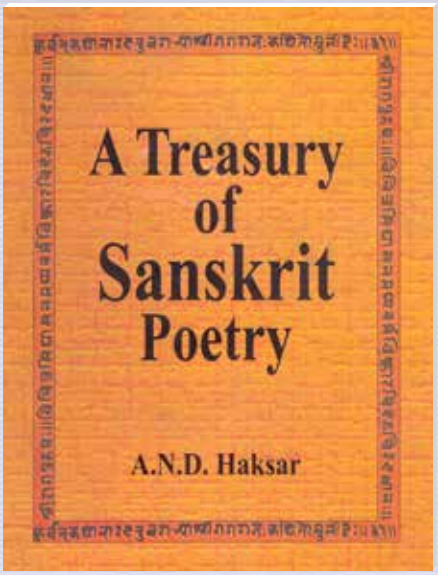
A Treasury of Sanskrit Poetry
A.N.D. Haksar

বাংলা লিখ্য চলিতভাষার
গঠনগত বিকাশ ঃ
ইতিহাস নির্ভর অনুসন্ধান
সুগত দাস

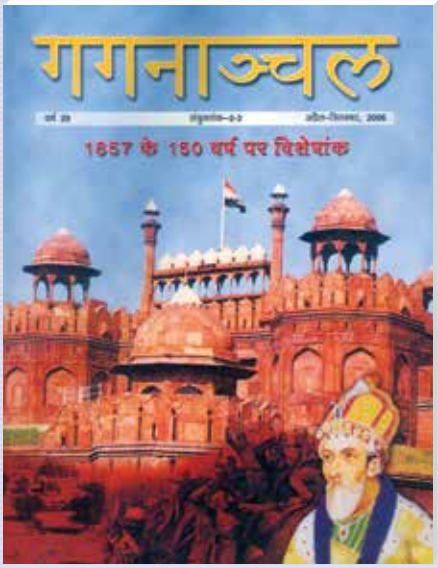
गगनाञ्चल
1857 के 150 वर्ष पर विशेषांक

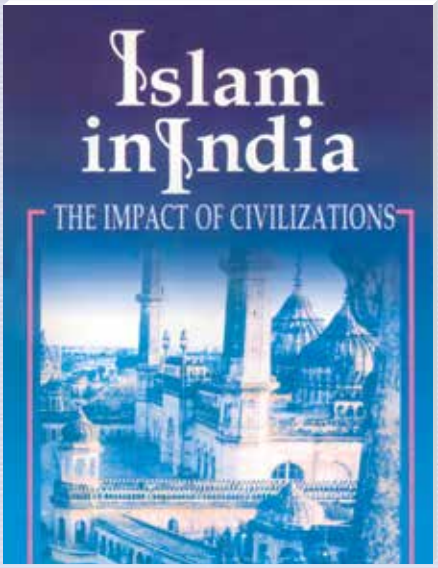
Islam in India
THE IMPACT OF CIVILIZATIONS

मुंशी प्रेमचंद
Munshi Premchand
London, 2005
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
INDIAN COUNCIL FOR CULTURAL RELATIONS

व्यक्तित्व निर्माण में
शास्त्रीय संगीत की भूमिका
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

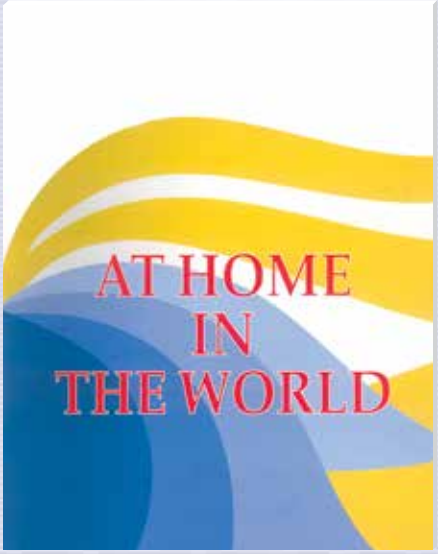
AT HOME IN THE WORLD